देवार्चन

विश्व-वन्द्य गोस्वामी तुलसीदासजी के चरित्र पर
लिखा गया राष्ट्रभाषा का एक महाकाव्य

श्री 'करील'

प्रकाशक
साहित्य-रत्न-भण्डार, आगरा।

साहित्य-प्रेस, आगरा में मुद्रित

प्रथम संस्करण   सं० २००६ वि०   मूल्य ५)

अभिलाषा

वात्सल्यपूर्ण हृदयस्थित भावभोग्यः
प्रत्यक्ष मोक्ष शुभमूर्ति यशोधिराजः
दुर्गाप्रसाद करुणार्णव पितृदेवः
देवार्चने ममस्थापयितुप्रवृत्तिः

—'करील'



ग्रन्थकार के पिता

श्री पण्डित दुर्गाप्रसादजी अवस्थी

लेखक का निवेदन

देवार्चन राष्ट्रभाषा के विश्ववन्द्य उन्नायक गोस्वामी तुलसीदासजी की पवित्र जीवनगाथा के आधार पर भारतीयता की पुनर्प्रतिष्ठा-स्थापन के लिये लिखा गया सत्रह सर्गों का एक काव्य ग्रन्थ है। इस ग्रन्थ के परिचय देने के पहिले इस संकेत की धृष्टता अक्षम्य न होगी कि तुलसीदास जी के ग्रन्थों में बर्णित सिद्धान्तों, तथा उनके अन्तर्साक्ष्य के आधार पर एकत्रित उनके जीवन वृत्त में सामञ्जस्य बनाये रखने के लिये घटनाओं और पात्रों की नव कल्पना काव्य की दृष्टि से आवश्यक एवं अनिवार्य थी।

इस काव्य कल्पना के अनुसार मुग़लों के शासनकाल में गोस्वामी तुलसीदासजी का जन्म गंगा-यमुना के मध्य भाग के किसी विद्वान व्यक्ति के घर में हुआ था। इनके जन्म के कुछ दिनों बाद इनकी माता का स्वर्गवास हो गया, और दुर्भाग्य वश थोड़े दिनों के उपरान्त इनके पिता भी इनको छोड़ कर चल बसे। मातृ-पितृ हीन इस बालक को उसके पिता के एक अभिन्न मित्र और उनकी पत्नी ने अपने पुत्र की तरह पाला पोसा।

तुलसीदासजी के इन काल्पनिक धर्म पिता और माता का नाम चिन्तामणि और कमला था। चिन्तामणि अपने समय

में अपनी विद्वत्ता के लिए अत्यन्त प्रसिद्ध थे। सात वर्ष की अवस्था तक तुलसीदासजी जिनका मूल नाम रामबचन था इन्हीं के संरक्षण में रहे। ब्राह्मण दम्पति सन्तान रहित थे; वे अपने मित्र के बच्चे को अपने ही बच्चे की तरह लाड़ प्यार से रखते थे। रामबचन चिन्तामणि को चाचा और कमला को चाची कहता था।

रामबचन को शैशव में ही अनेक आपत्तियाँ झेलनी थीं। अचानक धर्म माता कमला वातव्याधि से अत्यन्त पीड़ित हो गयीं। लगातार छः महीने तक वे बीमार पड़ी रहीं। बीमारी की दशा में वे उठ बैठ भी नहीं सकती थीं। ऐसी दशा में सात वर्ष के अबोध बालक को कष्ट होने लगा। चिन्तामणि यथा साध्य उसको सुखी रखने का प्रयास करते थे किन्तु माता की स्थान पूर्ति करने में वे अपने को असमथ पाते थे। अन्त में उन्होंने गङ्गा के दूसरे किनारे के किसी एक गाँव में बसने वाले अपने एक अनन्य मित्र को पत्र लिखकर अपने घर बुलाया और उन्हें कुछ दिनों के लिए अपने धर्मपुत्र को सौंप दिया। रुग्ण शय्या पर पड़ी हुई धर्म माता कमला ने अपने धर्म पुत्र को करुणार्द्र होकर बिदा कर दिया।

रामबचन अब यमुना किनारे से गङ्गापार के गाँव में आगया। अपने नये संरक्षक को वह काका और उनकी पत्नी भारती को काकी कहता था।

दुर्भाग्य बड़ा प्रबल होता है। उसने अनाथ बालक का पिण्ड यहाँ भी न छोड़ा। वर्षा काल और इन्द्रदेव प्रलयङ्कर स्वरूप धारण करके धरती पर उतरे। बड़ी जबर्दस्त बाढ़ आयी। रामबचन के काका सहृदय व्यक्ति थे। ब्राह्मण होने के नाते वे अनेक छात्रों के गुरु थे। उनसे यह लोक संहार चुप-

चाप नहीं देखा गया। उन्होंने नावों का एक बेड़ा तैयार किया और अपने अनेक शिष्यों को साथ लेकर बाढ़ पीड़ित लोगों की सहायता में जुट गये। बाढ़ बड़ा दुर्द्धर्षरूप धारण करती जा रही थी। एक दिन गङ्गा की उद्दाम लहरों ने इस जनोद्धारक विद्वान का भी अन्त कर डाला।

रात में पानी मूसलाधार बरस रहा था। रामबचन अपनी नव संरक्षिका काकी भारती के साथ लेटा हुआ था। उसके नव संरक्षक काका ने संध्या के पहिले अपना कुशल संवाद अपने एक युवक शिष्य माधव द्वारा अपने घर भेजा था। माधव अपनी गुरु पत्नी से बड़ी रात तक बाढ़ की दुर्द्धर्षता की बातें करता रहा पर रामबचन बालक होने के कारण शीघ्र ही सो गया। आधीरात के लगभग बाढ़ का पानी इस गाँव में घुस आया। हलचल मच गयी। लोग अब तक गाँव की भौगोलिक स्थिति के कारण उसे बाढ़ से पूर्ण सुरक्षित समझते थे। अचानक आयी हुयी अवांछनीय आपत्ति से तहलका मच गया। भारती के पड़ोस से किसी ने पुकार कर कहा कि पानी गाँव में घुसता चला आ रहा है। जल्दी घरों से निकलो! गर्भवती भारती घबड़ा उठी। उसके शिष्य माधव ने उससे कहा कि मैं बाहर जाकर यह देखे आ रहा हूँ कि लोग क्या करने जा रहे हैं। माधव बाहर गया किन्तु लौटकर न आ सका।

भारती ने साहस बटोर कर भगवान का स्मरण किया। उसने रामबचन को उठाकर अपनी पीठ पर बाँधा और बाहर निकली। वह अपने आँगन के बीच ही में थी कि बादल गरजा और बिजली फट पड़ी। दोनों माँ बेटे मूर्छित होकर गिर पड़े। गङ्गा की बढ़ती हुई लहरों ने उन्हें बहाकर अलग-अलग स्थानों पर पहुँचा दिया। गर्भवती भारती किनारे लगकर किन्हीं उद्धारकों द्वारा अपने मायके पहुँचा दी गयी। जहाँ उसे पता चला

कि वह अपने धर्म पुत्र के साथ-साथ अपने प्राणपति से भी सर्वदा के लिये हाथ धो चुकी है।

कमला और चिन्तामणि को जब यह दारुण समाचार मिला तो वे इस दैवी आपत्ति से बड़े व्यथित हुये। वे कई बार अपने मित्र तथा उनकी पत्नी और रामवचन का पता लगाने को गंगा पार के उस गाँव गये; और उन्हें यह मान लेना पड़ा कि ये तीनों के तीनों अब इस लोक में नहीं रह गये।

कुछ दिनों बाद उन्हें समाचार मिला कि उनके मित्र की गर्भवती पत्नी भारती दैव गति से बच गयी हैं और अपने मायके में हैं। चिन्तामणि अपनी पत्नी कमला तथा एक परिचारिका के साथ बैल गाड़ी द्वारा उस गाँव को चले और तीसरे दिन संध्या काल में वहाँ पहुँचे।

कमला और भारती मिलीं। कई महीने दोनों दुखी महिलायें साथ रहीं। अन्त में चिन्तामणि पत्नी सहित फिर अपने गाँव वापस आये और खिन्न होकर जीवन यापन करने लगे। इस बीच भारती को एक पुत्र उत्पन्न हुआ जिसका नाम देवार्चन की कल्पना के अनुसार श्री हर्ष था। कमला को भी इसी बीच एक कन्या रत्न की प्राप्ति हुयी जिसका नाम पड़ा 'विधुलेखा'। विधुलेखा को पांचवें ग्यारहवें और पन्द्रहवें सर्गों में चन्द्रलेखा भी कहा गया है।

१३ वर्षों के उपरान्त एक बार चिन्तामणि एक शास्त्रार्थ में भाग लेने के लिये बनारस गये। यहां उन्हें राम वचन मिल गया। अब वह पूर्ण युवक था। बनारस के प्रसिद्ध सन्यासी श्री शेष सनातन के आश्रम में अध्ययन करके वह महान प्रतिभा युक्त शास्त्रवेत्ता होगया था। चिन्तामणि उसे बड़े प्यार के साथ अपने घर ले आये।

रामवचन का नया घर बसा। चिन्तामणि और कमला दोनों के मन में उसके विवाह की कामना थी जो अब सफल हो चुकी थी। रामवचन की धर्मपत्नी थी महा सती रत्ना जिस उदात्त जीवन का आशीर्वाद है हमारा "रामचरित मानस"। अब भारती भी अपने पुत्र श्रीहर्ष के साथ इसी गांव में बस गयी।

रामवचन को देवार्चन में केवल चौदहवें सर्ग के एक स्थल पर उनके गुरु के मुख से रामवचन कहलवाया गया है; शेष सभी स्थलों में उन्हें श्रीपण्डित नामक उपनाम से ही सम्बोधित किया गया है। पाठकों से अनुरोध है कि देवार्चन में वे 'श्रीपण्डित' शब्द को तुलसीदास जी का गार्हस्थिक उपनाम समझें।

देवार्चन की कथा के अनुसार रामवचन का उद्धार साधुओं के एक दल ने किया। मातृ पितृ हीन बालक साधुओं के इस दल के साथ जहां जहां वे भटकते थे भटकता फिरता था। सम्भवतः उसको यह बन्धन पसन्द नहीं आया और वह एक दिन साधुओं के इस दल से चुपचाप खिसक निकला। बालक को यह आशा थी कि वह साधुओं के दल से भागकर शीघ्र अपने धर्म पिता और धर्म माता के पास पहुँच जायगा पर उसका मूल निवास स्थान तो सैकड़ों मील दूर था!

बालक की पीड़ा सीमा से ऊपर पहुँच गयी! वह भीख मांग कर पेट पालने लगा। मांगते खाते वह एक दिन तत्कालीन विद्वान सन्यासी शेष सनातन महाराज के आश्रम में पहुँच गया जहां उसके सम्पूर्ण वात्सल्य के साथ लालन पालन हुआ। यहीं उसने विद्याध्ययन किया और अपने समय का सर्वोत्कृष्ट महान विद्वान बन गया।

भारत में शास्त्रार्थों की परम्परा बहुत पुराने समय से चली आ रही है। तेरह वर्षों के बाद में आचार्य चिन्तामणि एक शास्त्रार्थ मे भाग लेने के लिए काशी गये। वहाँ शेष सनातन महाराज के आश्रम में उन्हें रामवचन मिला। रामवचन की वर्चस्विता से प्रभावित होकर आचार्य ने उसका सम्पूर्ण परिचय जाना। पिता और पुत्र प्रसन्नता पूर्वक एक दूसरे से मिले। रामवचन अपने धर्म पिता के साथ अपने गाँव वापस आगया। कमला ने उससे मिलकर समझा कि वह आज वस्तुतः पुत्रवती है। इस समय तक भारती भी अपने पुत्र श्रीहर्ष के साथ आकर इसी गांव में आचार्य चिन्तामणि की संरक्षकता में बस गयी थी।

ऊपर का सारा वृत्तान्त देवार्चन के पाँचवें और चौदहवें सर्ग में उपयुक्त अवसरों पर क्रमशः कमला और तुलसीदास जी द्वारा अन्तर्कथा की भाँति बताया गया है। देवार्चन की मूल कथा को हृदयङ्गम करने के लिए यह आवश्यक है कि उसके कृपालु पाठक उसकी इस अन्तर्कथा से भी परिचित होजायँ।

मैंने ऊपर निवेदन कर दिया है कि देवार्चन भारतीयता की पुनर्प्रतिष्ठा के लिये लिखा गया है। भारतीय जीवन उसके सात लाख गाँवों में छाया हुआ है। देवार्चन में स्थान स्थान पर भारतीय ग्राम्य जीवन का चित्रण कुछ अधिक विस्तार से किया गया है। नागपञ्चमी, विजयादशमी तथा होली के पर्वों में देवार्चन की कविता प्रकृति और जन जीवन में समाकर अपने को सत्ता रहित सा करती भी दिखेगी। यह प्रवृत्ति पाठकों को अखर सकती है, पर प्रकृति और जन जीवन में समाविष्ट होने के मोह की इस महिमा के आगे सिर झुकाकर मैं निवेदन करूँगा कि मेरे कृपालु पाठक कष्ट उठाकर भी इसमें मेरा साथ दें।

देवार्चन का प्रथम सर्ग चैत्र मास की पूर्णिमा के दिन की ग्राम विहारिणी संध्या का दृश्य उपस्थित करता हुआ, रत्ना और श्रीपण्डित (तुलसीदास) के दिव्य दर्शन करता है। पति-पत्नी 'नारी' की सत्ता पर इस सर्ग में अपने विभिन्न दृष्टिकोण उपस्थित करते हैं।

द्वितीय सर्ग का प्रारम्भ वर्षाऋतु में होता है। श्रीपण्डित (तुलसीदास) के विद्या गुरु श्री शेषसनातन महाराज नाग-पञ्चमी के अवसर पर उनके गाँव पधारे हुये हैं। ठीक नागपञ्चमी के दिन उनका एक प्रवचन होता है। इस प्रवचन का विषय है— भारतीय जीवन और यौवन की मर्यादा की स्थापना।

इसी सर्ग में रक्षाबन्धन का पर्व आ जाता है। चिन्तामणि की नव यौवना पुत्री विधुलेखा रत्ना के घर आती है; और अपने धर्म के भाई श्रीपण्डित (तुलसीदास) के हाथों में राखी बाँधती है।

तृतीय सर्ग का प्रारम्भ शरदऋतु के वर्णन से होता है। विजयादशमी के दिन विधुलेखा अपनी भाभी रत्ना के घर जाती है। उसके आग्रह पर रत्ना दुर्गा का प्रसाद ग्रहण करने उसके घर जाती है। इसी दिन कमला चिन्तामणि को बताती है कि बहू (रत्ना) गर्भवती है। चिन्तामणि उसे प्रसाद एवं विभूति देते हैं। प्रसाद लेकर रत्ना विधुलेखा को साथ लेकर अपने घर लौट आती है। विधुलेखा अब रत्ना से जीवन की परिभाषा पूछती है। रत्ना राम के जीवन की श्रेष्ठता का प्रतिपादन करती है। कुछ तर्क वितर्क के बाद विधुलेखा उसे मान लेती है। राम की श्रेष्ठता की इस पुनर्स्थापना में सारे भारत की प्रकृति उनका साथ देती है।

चतुर्थ सर्ग में होली के पर्व का वर्णन है। काश्मीर और उत्तर पश्चिम सीमाप्रान्त से लेकर कन्याकुमारी तक होली मची हुयी

है। इस अवसर पर श्रीहर्ष रत्ना पर रँग डालने आता है। रत्ना इस समय पूर्णगर्भा थी। अपने गर्भभार को छिपाने के उद्देश्य से उसने काली साड़ी पहिन रखी थी। श्रीहर्ष को देवर मानती थी। देवर ने काली साड़ी पर आपत्ति की। रत्ना ने सफेद साड़ियों का ढेर उसके सामने रख दिया और कहा कि इस बार इन्हीं से होली खेलिये। होली खेली गयी। श्रीपण्डित (तुलसी-दास) भी आगये। देश की दारुण अवस्था की बात छिड़ गयी। दोनों के दृष्टिकोण अलग-अलग थे। रत्ना श्रीहर्ष के साथ थी। नारी की समस्या फिर सामने आयी और पत्नी ने देवर की सहायता से पति को लगभग पराजित कर दिया।

पञ्चम सर्ग में रत्ना के गर्भ से एक पुत्र उत्पन्न होता है। कमला और भारती घर की बड़ी बूढ़ी हैं। बड़े उल्लास से पुत्र जन्मोत्सव मनाया जाता है। गाँव की स्त्रियाँ सोहर गाने आती हैं। गाना समाप्त होने पर कमला आज के दिन को सौभाग्य का दिन कहती हुयी आयी हुयी ग्राम बधुओं के सामने सारी पुरानी विपत्ति की कथा कह जाती है। इस अन्तर्कथा का परिचय ऊपर की पंक्तियों में पाठकों को दिया जा चुका है।

षष्ठ सर्ग में कार्तिकी पूर्णिमा के पर्व का स्नान है। इस अवसर पर श्रीहर्ष अपनी भाभी को कमलों की एक माला का उपहार देता है। रत्ना बड़ी प्रसन्नता से उसे स्वीकार करती हुयी श्रीहर्ष से अनुरोध करती है कि वह विधुलेखा से विवाह करले। श्रीहर्ष के लिए यह प्रस्ताव नया नहीं था। वह उसे टालना चाहता है। उसकी इच्छा अविवाहित रह कर जीवन बिताने की जान कर रत्ना उसका विरोध करती है।

इस समय श्रीपण्डित (तुलसीदास) घर की छत पर बैठ-कर अपनी कविता पूरी कर रहे थे। जब कविता पूरी होगयी तो उन्होंने नीचे देखा और श्रीहर्ष तथा रत्ना को कविता सुनाने

के लिये ऊपर बुलाया। दोनों ऊपर गये। रत्ना का पुत्र तारक भी उस समय उसकी गोद में था। कविता श्रीहर्ष ने पढ़ी। कविता में जीवन और यौवन के संवर्द्धन का आह्वान भरा था। रत्ना की बात मान कर श्रीहर्ष उसके घर से सीधे कमला के घर गया। कमला और चिन्तामणि दोनों गाँव की यज्ञभूमि में गये हुये थे। विधुलेखा अपनी फुलवारी में पौधों को पानी देकर अब फूल तोड़ रही थी। श्रीहर्ष घर में किसी को न देखकर ज्योंही वाटिका में प्रविष्ट हुआ तो उसे अकेली विधुलेखा दिखी। श्रीहर्ष अपने आप कहने लगा। मैं चाची के बुलाने पर आया था पर वे हैं नहीं। अच्छा, मैं चलता हूँ। तुम उनसे मेरे आने की बात बता देना। मुझे माँ की पूजा के लिए अभी कहीं से फूल लाने हैं। विधुलेखा ने यह सुनकर उसे अपने तोड़े हुये फूल दे दिये। दोनों में एक दूसरे के प्रति एक ममत्व जाग्रत हो गया।

सप्तम सर्ग में रत्ना और श्रीपण्डित (तुलसीदास) के गार्हस्थ्य जीवन का चित्रण है। पति पत्नी आँगन में बैठे हैं। तारक की बाल लीला चल रही है। वह अब घुटनों के बल सरकने लगा है। श्रीपण्डित (तुलसीदास) के मन में उनके बचपन की स्मृति जाग्रत हो उठी। वे अपनी माता की बात सोचने लगे। उनकी आँखें सजल हो उठीं। अब तक बच्चा सो चुका था रत्ना ने कहा कि देखो यह तारक अपनी पितामही का आशीर्वाद है। उसको कवि की दृष्टि से देखो। पति ने यह सुन कर पत्नी को अपने बाहुपाश में जकड़ लिया।

जब वे स्वस्थ होकर बैठे तो फिर वही बात छिड़ी। पत्नी बुद्धिवाद का पक्ष ग्रहण कर रही थी और पति भावना के ऐश्वर्य का मण्डन। इतने में श्रीहर्ष आगए। वे मध्यस्थ बने।

उन्होंने बुद्धि और भावना को विवेकाश्रित बताया। पति पत्नी दोनों अपने को विजयी सिद्ध करने लगे।

इसी अवसर पर एक शिष्य द्वारा श्रीपण्डित (तुलसीदास) को बनारस से अपने गुरू श्री शेषसनातनजी महाराज का भारतीय पण्डित परिषद् के अधिवेशन के प्रबन्ध के लिए तुरन्त बनारस आने का आदेश पत्र प्राप्त हुआ। वे तुरन्त तैयार हुये। छोटा बालक तारक अब सो कर उठ चुका था। उसे ज्वर चढ़ आया था। ज्वरग्रस्त बालक को तथा उसकी विह्वला माता रत्ना को श्रीहर्ष, चिन्तामणि, कमला, भारती और विधुलेखा के मत्थे छोड़कर श्री पण्डित (तुलसीदास) अपने कुछ शिष्यों के साथ नाव द्वारा बनारस रवाना हो गये।

आठवें सर्ग में शीतला की व्याधि से दुध मुँह बच्चे तारक की मृत्यु हो जाती है। रत्ना का वह दारुण विलाप यहीं से प्रारम्भ होता है। जिसका अन्त उसके जीवन में कभी नहीं हुआ। शोक सन्तप्त रत्ना इस दुःख में मायके चली जाती है।

नवम सर्ग में शोक सन्तप्त काव्य सरस्वती फिर से स्मरण करता है। गङ्गा और काशी की पुण्यभूमि सामने आती है। पण्डित परिषद् का अधिवेशन होता है। श्री शेषसनातन और उनके शिष्य श्री पण्डित (तुलसीदास) देश की दुर्दशा पर अपने मौलिक और ओजस्वी विचार व्यक्त करते हैं। रामचरित मानस, कवितावली और विनयपत्रिका के विभिन्न सन्दर्भों के आधार पर इन व्याख्यानों का रूप तैयार किया गया है। इस समय तक श्रीपण्डित (तुलसीदास) को अपने पुत्र की मृत्यु का समाचार मिल जाता है। परिषद् के अधिवेशन की समाप्ति पर वे गुरू के आदेशानुसार नाव द्वारा अपने घर चल देते हैं।

दशम सर्ग में वे घर पहुँच कर अपने धर्मपिता चिन्तामणि को अपने गुरू के आह्वान की सूचना देते हैं। श्री शेषसनातन महाराज धार्मिक सङ्गठन के लिये देश के सात विद्वानों से परामर्श करना चाहते थे। इनमें चिन्तामणि भी एक थे। कार्य की योजना पर दुखी पिता पुत्र में आधी रात तक परामर्श चलता रहा। सबेरे नाव द्वारा चिन्तामणि बनारस रवाना हो गये। चलते समय उपस्थित लोगों के समक्ष उनका एक प्रवचन हुआ जिसका प्रारूप भी तुलसीदासजी के ग्रन्थों के आधार पर तैयार किया गया है।

विधुलेखा को यह सब अच्छा नहीं लगा। उसे लगा कि पुत्रहीना माता की सब उपेक्षा कर रहे हैं। उसने श्रीहर्ष को इस हृदय हीनता के लिये बहुत बुरा भला कहा।

एकादश सर्ग में श्रीपण्डित (तुलसीदास) रथ में बैठकर अपनी पत्नी के घर जाते हैं। पत्नी का मायका गंगा के उस पार था। अर्धरात्रि में गंगा पार करके वे ससुराल पहुँचते हैं। परिवार के दुखी लोग करुणार्द्र हृदय से मिलते हैं। शयन कक्ष में रत्ना और श्रीपण्डित (तुलसीदास) की भेंट होती है। माँ अपने पुत्र के वियोग में बिलखने लगती है। श्रीपण्डित (तुलसीदास) समझाते बुझाते हैं। रत्ना प्रसंग वश हृदयावेगों से व्यथित होकर खड़ी होजाती है। खड़े होते ही वह पति की गोद में चौंधिया कर गिर पड़ती है। पति उसे अपनी गोद में सम्हाल लेता है।

इसी स्थिति में पति का मन चञ्चल हो उठता है। उसकी वृत्तियाँ डोल उठती हैं। उसकी चेष्टायें पत्नी को उद्वेग भरी मालूम पड़ीं। पत्नी ने उत्तेजित होकर पति से कड़ी और चुभने वाली बातें कह डालीं। पति भावप्रवण था ही। उसके मन में

ग्लानि हुयी। उसकी आत्मा अपने आपको धिक्कार उठी। पति तत्क्षण उठकर खड़ा होगया और शयन कक्ष से शीघ्रता के साथ बाहर निकल आया। उसका यह बाहर निकलना बुद्ध के महाभिनिष्क्रमण की तरह महत्वपूर्ण था।

द्वादश सर्ग में श्रीपण्डित (तुलसीदास) देश को दूसरी ही दृष्टि से देखने लगते हैं। उन्हें परमात्मा की सृष्टि में समायी हुयी मनुष्य समाज की स्वार्जित आपत्ति दिखाई पड़ने लगी। इस आपत्ति से संसार की मुक्ति कैसे हो सकती है यह वे सोचने लगे। उन्हें अचानक रामचरित्र के आदर्श का बोध हुआ और मानस का पहिला श्लोक अपने आप ही उनकी वाणी में प्रस्फुटित हो उठा। देशभर में घूमते घामते वे फिर अपने गुरुदेव के पास काशी आये जहाँ प्रतिवर्ष पंडित परिषद् का अधिवेशन हुआ करता था। गुरुदेव से उन्होंने सन्यास लेने की इच्छा प्रकट की। एक वर्ष बाद गुरुदेव ने उन्हें परिषद् के अधिवेशन के समक्ष दीक्षा दी और उनका नाम रामवचन (श्रीपण्डित) के स्थान पर तुलसीदास रक्खा।

तेरहवें सर्ग में रत्ना विधुलेखा साथ साथ बैठी हैं। पुत्र और पति के विरह में दग्ध हृदया रत्ना रोती है। यह सारा का सारा सर्ग रत्ना के विलाप से ओतप्रोत है।

चौदहवें सर्ग में गंगा के तट पर एक कुटिया में तुलसीदासजी और अब्दुर्रहीम खानखाना की भेंट होती है। रहीम तुलसीदासजी से उनकी गार्हस्थिकता के त्याग का वृत्तान्त जानना चाहते हैं। तुलसीदास उनके आग्रह पर अपना जीवन वृत्तान्त बताते हैं और अपने उन सिद्धान्तों की व्याख्या करते हैं जिनके अनुसार भारत में भावनात्मक रामराज्य की स्थापना करने के वे इच्छुक थे। रहीम उनकी इस व्याख्या को स्वीकार करते हैं और तदनुसार जीवन यापन की प्रतिज्ञा करते हैं।

पन्द्रहवें सर्ग में श्रीहर्ष रत्ना को अब्दुर्रहीम खानखाना द्वारा भेजा गया एक पत्र देता है जिसमें तुलसीदासजी की स्थिति और उनका महत्व समझकर श्रीहर्ष से अनुरोध किया था कि वे उस महाप्राण सती को धैर्य दिलावें जिसकी तपस्या ही लोक कल्याण का आधार बन सकती है।

सोलहवें सर्ग में तुलसीदास आसेतु हिमालय भारत की फर से यात्रा करते हैं और राम चरित मानस की रचना पूर्ण करते हैं।

सत्रहवें सर्ग में वे पचीस वर्षों बाद रत्ना को देखने के उद्देश्य से अपने गाँव पहुँच जाते हैं। आगत साधु की भिक्षा का थाल लेकर रत्ना भिक्षा देने दरवाजे पर आती है। साधु नारायण! नारायण! नारायण! कह उठता है। आवाज से पत्नी पति को पहिचान लेती है। भिक्षा का सुसज्जित थाल हाथों से छूटकर गिर पड़ता है।

रत्ना सन्यासी के सम्मुख अपनी करुणा उँड़ेल देती है। सन्यासी बिना किसी उद्वेग के केवल 'रघुपति राघव राजा राम, पतित पावन सीताराम' कहकर लौट पड़ता है और मानो सदा के लिये अन्तर्द्धान हो जाता है।

देवार्चन की प्रेरणा—

देवार्चन की रचना की प्रेरणा मुझे तुलसीदास जी के ग्रन्थों के अध्ययन द्वारा प्राप्त हुई। ज्यों-ज्यों मैं अपने महान चरित्र-नायक की रचनाओं का अध्ययन करता गया त्यों-त्यों मेरे हृदय में उनका महत्व स्थापित होता गया। उनके महत्व को घटा कर बताने वाले अथवा उसे स्वीकार न करने वाली राष्ट्र-भाषा की सारी प्रवृत्तियाँ भी मेरे अध्ययन का विषय बनीं। अपने इस लगातार अध्ययन के बल मैं इस निष्कर्ष पर पहुँचा

कि तुलसीदासजी न प्रतिक्रियावादी थे, न ब्राह्मणों के मिथ्या महत्व के व्याख्याता। स्त्रियों और शूद्रों के वे विरोधी न होकर उनके सम्पूर्ण रूप के प्रशंसक थे। मैं अपने कृपालु पाठकों से फिर से यह निवेदन करना चाहता हूँ कि तुलसीदासजी ने ब्राह्मणों की दुष्प्रवृत्तियों की कड़ी निन्दा की है। तुलसीदासजी ने सदाचारी और भक्त शूद्रों को राम के भक्तों के बराबर का स्थान दिया है। तुलसीदासजी ने सैकड़ों स्थलों पर साधारण नारी के शील सौन्दर्य का बड़ा दिव्य दर्शन उपस्थित किया है। नारी निन्दा के जो प्रसंग उनकी रचनाओं में मिलते हैं वे अपने अध्ययन की कमी के कारण हमें चुभते हैं। यदि हम तुलसीदासजी की रचनाओं का गम्भीर अध्ययन करें तो हमें यह स्पष्ट प्रतीत होगा कि इस नारी निन्दा के लिये तुलसीदास जी को बुरा भला कह कर हम कैसा पाप करते चले आते हैं।

तुलसीदासजी के आदर्श—

तुलसीदासजी की समस्त रचनाओं के आधार पर यह निस्सङ्कोच स्वीकार किया जा सकता है कि सङ्कट के उस युग में तुलसीदासजी ने रामराज की उदात्त कल्पना देकर भारतवर्ष में जो उत्साह भर दिया था वह हमारे इतिहास में स्वार्णाक्षरों में लिखा जायगा। तुलसीदासजी तत्कालीन साम्राज्य के बदले ऐसा रामराज्य चाहते थे जिसमें न कोई दुःखी रहे न दरिद्र न कोई बुरे लक्षणों वाला। तुलसीदासजी के शब्दों में उनकी महान अभिलाषाओं का पूरक था उनका रामराज्य। इस रामराज्य की स्थापना करके उन्होंने हमारे भावनात्मक क्षेत्र में जो नवजीवन भर दिया उसका हम उनके करोड़ों देशवासी आज भी कृतज्ञता पूर्वक उपभोग कर रहे हैं। तुलसीदास के इस रामराज्य में न बीमारियों का त्रास था न बिजली, बाढ़

तथा अग्निकांडों की पीड़ा, और न हिंसक प्रवृत्तियों का कष्ट। रामराज्य तो जनता के प्रेम का साम्राज्य है। उसमें सब धर्मानुसार आचरण करते हैं। धर्म अपने चारों चरणों से फैल रहा है। पाप का कहीं पता नहीं है। रामभक्ति से युक्त समस्त नर-नारियों में अर्थात् ब्राह्मणों, क्षत्रियों, वैश्यों, शूद्रों, स्त्रियों और अन्त्यजों को भी परम गति का अधिकार व्याप्त है। अल्पावस्था में मृत्यु नहीं होती। सारे मनुष्य सुन्दर और नीरोग हैं। न कोई दरिद्र है न कोई दुखी है और न कहीं दीनता दिखती है। सभी दम्भ रहित है। सभी धर्म में रत हैं। सभी पुण्यात्मा हैं। सभी गुणज्ञ हैं। सभी पण्डित हैं। सभी ज्ञानी हैं। सभी कृतज्ञता सम्पन्न हैं। छल कपट का कहीं पता भी नहीं है।

राम की कृपा से तुलसीदासजी द्वारा जनता को बताये हुए इस रामराज्य का वर्णन उन्हीं के शब्दों में सुनकर आत्मचेतना प्राप्त कीजिये।

दैहिक दैविक भौतिक तापा। रामराजि काहुहिं नहिं व्यापा॥
सब नर करहिं परस्पर प्रीती। चलहिं स्वधर्म निरत श्रुति रीती॥
चारिहु चरन धरम जग माहीं। पूरि रहा सपनेहुँ अघ नाहीं॥
राम भगति रत सब नर नारी। सकल परम गति के अधिकारी॥
अल्प मृत्यु नहिं कवनिउ पीरा। सब सुन्दर सब बिरुज शरीरा॥
नहिं दरिद्र कोउ दुःखी न दीना। नहिं कोउ अबुध न लच्छन हीना॥
सब निर्दम्भ धर्मरत पुनी। नर अरु नारि चतुर सब गुनी॥
सब गुनज्ञ पंडित सब ज्ञानी। सब कृतज्ञ नहिं कपट सयानी॥

इस प्रकार के मनोराज्य की स्थापना द्वारा हमारे देश को गौरवान्वित करने वाले इस पुण्यश्लोक महापुरुष का यशगान करना सचमुच ही परम सौभाग्य का विषय है। अपने इस सौभाग्य को अपने कृपालु पाठकों को समर्पित करता हुआ मैं

निवेदन करता हूँ कि देवार्चन की रचना के सारे के सारे दोषों के लिए मुझे उत्तरदायी मान कर उनके सुधारने में वे मेरी सहायता करें। यदि तुलसीदासजी के पुण्य-चरित्र की वन्दना के नाते उसमें कुछ भी अच्छाई आई हो तो पाठक यह समझें कि वह अच्छाई मेरी न होकर उस वरेण्य महापुरुष की है जिसका सुयश हमारी कुटियों और झोंपड़ियों में आज भी व्याप्त है।

देवार्चन की रचना, उसका छन्द प्रबन्ध, उसका कथानक, उसकी भाषा और उसके सारे के सारे काव्यत्व के लिए मैं हिन्दी और संस्कृत के अपने सभी पूर्व कवियों और लेखकों का ऋणी हूँ। मैं उन सबों को श्रद्धाभक्ति पूर्वक प्रणाम करता हुआ उनसे यह निवेदन करता हूँ कि तुलसीदासजी की यशोगाथा के नाते वे देवार्चन को आशीर्वाद प्रदान करें।

विनीत—

'करील'

———

❀ मंगलाचरण ❀

विश्रुता विश्वविख्याता सर्वदा रागरञ्जिता।
मङ्गला स्नेहसम्पन्ना महामाया महेश्वरी ।।
कविता काञ्चना दिव्या गुणग्रामा सरस्वती।
कीर्तिदा पुष्पिता विद्या मञ्जुला हृदयास्पदा ।।
अनन्ता शक्तिसंयुक्ता रीतिमुक्ता अलौकिका।
स्वच्छन्दा छन्दरिक्ता वा छन्दबद्धा सुभाषिता ।।
ज्ञान कर्मरता पूर्णा विद्यमाना उपासना।
अभिधा व्यञ्जनायुक्ता लक्षणा लोकलालिता ।।
गीतिका वन्दिता नित्या भक्तिदा देवभारती।
गिरा ग्राम्यवती गाथा रञ्जना भाग्यवर्द्धना ।।
तपस्तेज समुत्पन्ना अद्भुता भावसम्भवा।
धर्मार्थ मोक्षदा काम्या पुण्यारण्य विहारिणी ।।
सुन्दरी शारदा गौरी पद्मजा पङ्कजानना।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमोनमः ।।

प्रथम सर्ग

(१)

अपनी नव कञ्चन काया में त्रिभुवन की सम्पत्ति समेटे।
रवि की राग भरी किरणों में सुन्दरता का सार लपेटे॥
बन बागों की रूप राशि में अपना अञ्चल पट फैलाती।
उतरी सन्ध्या नील गगन से मङ्गलमय अनुराग लुटाती॥

(२)

उड़ते विहगों के दल के दल मञ्जुल सुख सङ्गीत जगाते।
कविता के रस गीत उमड़ कर सारी धरती पर लहराते॥
जीवन में यौवन में छायी सुन्दरतम बन कर हरियाली।
बसुधा भर में आज समायी मनमोहक सन्ध्या की लाली॥

(३)

बहती थी आनन्दित होकर कालिन्दी की नीली धारा।
रवि की कल किरणों ने उसमें अपनी छवि का सार पसारा॥
सारे भारत में भर भर कर भव की वत्सलता मनभायी।
अपने पावन पुण्य जगाती गङ्गा की धारा लहरायी॥

(४)

शीतल मन्द सुगन्धित होकर प्राणों में उल्लास जगाती।
जन जन के जीवन यौवन में मङ्गलमूल विकास बसाती॥
धरती की गौरव गाथा सी चञ्चल मुक्त पवन लहराती।
जिसकी पावन मादकता थी अन्तर का आनन्द बढ़ाती॥

(५)

वर बसन्त की लेकर लीला लता द्रुमों की काया डोली।
आमों पर काली कोयल भी बन कर मङ्गल माया बोली॥
गूँजी रति की नव गति पाकर भृङ्गों की लीला मतवाली।
सन्ध्या ने अपने वैभव में आज बसायी प्रीति प्रणाली॥

(६)

चञ्चल हरिण चौकड़ी भरते मोर हुलस कर शोर मचाते।
अपनी मंजुल वाणी द्वारा धरती का आनन्द जगाते॥
फूलों पर थी हास लुटाती अब गाढ़ी होकर जो लाली।
उसका आलिङ्गन करती थी गुरु गिरि शिखरों की हरियाली॥

(७)

हे सन्ध्या के वैभव! झुककर इनके भी चरणों को छू जा।
जिनकी है यश गाथा बनती घर घर में गोवर्धन पूजा॥
बड़ी बड़ी वे भोली भाली मूर्तिमती वे ममता माया।
जिनके दिव्य थनों के भीतर जीवन का भण्डार समाया॥

(८)

कामधेनु सी सरल सवत्सा तन मन धन से जो अभिरामा।
उन गायों की मन्थर गति से बनती पथ की धूल ललामा॥
घर जाती थीं काली काली भैंसें तन की भारी भारी।
लम्बे शृङ्गों के भैंसे भी साथ चले बल विक्रम धारी॥

(९)

उनसे हिलमिल कर चलते थे जीवन का पुरुषार्थ उठाये।
अपने उन ऊँचे कन्धों पर यह सारा संसार बसाये॥
उजले उजले भारी भरकम जिनकी थी हाथी सी काया।
बैल बड़े बल विक्रमधारी इस सारी धरती की माया॥

(१०)

पौरुष के अवतार अनोखे मन के कोमल बल के सागर।
ऊँची चौड़ी छाती वाले लम्बे भुजदण्डों के आगर॥
जिनकी लाठी के पोरों ने गुण अपने अनुरूप निबाहे।
अपने स्वर से मुक्त दिशायें भर देते थे वे चरवाहे॥

(११)

वहीं जहाँ सीता ने अपने वन के दिन हँस खेल बिताये।
वहीं जहाँ उन्मुक्त प्रेम के सारे स्वर साधन लहराये॥
वहीं जहाँ पर बही राम की जीवन धारा लोक ललामा।
वहीं जहाँ करुणा बन गूँजी कविता की वीणा अभिरामा॥

(१२)

जहाँ प्रकृति की रूप राशि ने वसुधा में नवजीवन डाला।
मुक्त मेखला सी फैली थी जहाँ विन्ध्य की नीली माला॥
चित्रकूट के उसी देश में जहाँ भानुजा गयी सवाँरी।
चैत्र पूर्णिमा का आलिङ्गन करती थी सन्ध्या सुकुमारी॥

(१३)

दिखे छात्र जो गुरु सेवा का गौरव लेकर थे घर आये।
ग्रन्थों के पत्रों के भीतर अपनी चञ्चल वृत्ति बसाये॥
चन्दन चर्चित मस्तक जिनके शिखा सूत्र के जो अधिकारी।
मन के दर्पण से जिनके तन जो पावन व्रत के पथचारी॥

(१४)

मार्ग जनित श्रम की शोभा से जिनके मुखमण्डल छविशाली ।
जिनके चरणों को करती थी निर्मलतम सन्ध्या की लाली ॥
ज्ञान राशि के दिव्य कोश से ग्रन्थों का सम्भार दबाये ।
जिनके संवर्द्धन के पथ में धरती ने फल फूल बिछाये ॥

(१५)

पड़ी जन्म से जिनके ऊपर सीता सावित्री की छाया ।
जिनके पावन व्रत पर निर्भर यह मानव जीवन की माया ॥
पनघट पर वे ही सुन्दरियाँ हिलमिल कर भरती थीं पानी ।
जिनसे रस पाकर विकसी है राम कृष्ण की अमर कहानी ॥

(१६)

भर भर वे अपनी गागर में स्नेह सुधा के सातों सागर ।
पुण्य कल्पना की प्रतिमा सी करती थीं संसार उजागर ॥
उनकी हलचल पाकर फूटे मधुरामृत के मञ्जु फुहारे ।
स्नेहमयी सन्ध्या ने जिनसे अपने कोमल प्राण सवाँरे ॥

(१७)

फूलों ने उनके जीवन में मङ्गलमूल विकास बसाया ।
सन्ध्या की लाली ने उन पर किरणों का नव रस ढरकाया ॥
उड़ उड़ कर नभ में लहरायी उनकी मञ्जुल कीर्ति कहानी ।
उनके मृदु अञ्चल को छूकर धन्य हुआ मलयानिल मानी ॥

(१८)

जिनके मन की परिभाषा में वृद्ध पिता का प्यार समाया ।
जिनकी कोमल अभिलाषा में भाई का संसार समाया ॥
जिनके हृदयों में धरती के सरल स्नेह का सार समाया ।
चलीं घरों को वे माँ बहिनें सारे भव की ममता माया ॥

(१९)

अपनी माँ का अञ्चल थामे बोल रही थीं तुतली वाणी ।
सुघर सलोनी बिटिया रानी जीवन की निधि सी कल्याणी ॥
उनके कोमल कमल मुखों ने जैसी दिव्य सुधा बरसायी ।
अन्तरतल की रस की सरिता उससे भर भर कर लहरायी ॥

(२०)

सुन्दर धूलि धूसरित चञ्चल माता के नयनों के तारे ।
मानवता की मङ्गल आशा और पिता के हृदय दुलारे ॥
घर से बाहर मञ्जुल गति से जो बालक थे खेल मचाते ।
सन्ध्या की आभा ने हँसकर अब उनको देखा घर आते ॥

(२१)

जिनके जीवन में जागे थे मुक्तिमार्ग के तीनों साधन ।
भूतल का सम्बल बन फैला जिनका दैनिक लोकाराधन ॥
परम सत्य सुन्दर बन गाता जिनकी मञ्जुल मङ्गल गाथा ।
मानवता के गुरु गौरव से जिनका हरदम ऊँचा माथा ॥

(२२)

अपने उन उजले बालों में गर्व भरा इतिहास लपेटे ।
अपने ज्ञानवृद्ध जीवन में सारे भव का भार समेटे ॥
पूजा पर जो घर घर बैठे देवलोक के बनकर प्राणी ।
गूँज रही थी सन्ध्या बनकर उन सब वृद्धों की वर वाणी ॥

(२३)

जिनके पौरुष की महिमा ने घर घर था कञ्चन बरसाया ।
जिनके लौकिक बल से फैली इस धरती पर ममता माया ॥
जिनकी शीतल छाया पाकर तृप्त हुयी यौवन की काया ।
शिशुओं के शैशव में जिनका मञ्जुल हास विलास समाया ॥

(२४)

वे गृहस्थ जिनकी उज्ज्वलता भूतल में कविता बन छायी।
जिनके आँगन की आभा में जीवन की सम्पत्ति समायी॥
जिनके हाथों में मण्डित थी बहिनों की लौकिक मर्यादा।
गौरव का गुरु भार जिन्होंने अपने वक्षस्थल पर लादा॥

(२५)

अपने दिन भर के कामों का पा मधुरामृत फल मनचीता।
शिशुओं के घेरे में जिनकी सिमटी थी गार्हस्थिक गीता॥
प्राणसखी के सस्मित मुख के दर्शन की लेकर अभिलाषा॥
अम्बर की लाली सी बदली उनके भावों की परिभाषा॥

(२६)

लहराती थी सन्धिकाल में जिन मङ्गल मन्त्रों की वाणी।
हहराती थी सुधा वृष्टि सी वह धरती भर में कल्याणी॥
फहराती थी कीर्ति ध्वजा सी जिस संस्कृति की सुन्दर भाषा।
घहरानी थी उसके गौरव में भारत भर की अभिलाषा॥

(२७)

अब सन्ध्या ने गिरि शिखरों को थी कञ्चन माला पहिनाई।
विधु मण्डल ने फिर खुलकर दी प्रकृति वधू को विलस बधाई॥
नीले नभ में फिर कुछ रहकर झिलमिल झिलमिल झलके तारे।
भव पर मृदुगाता रजनी ने अपने पङ्कज पाणि पसारे॥

(२८)

सुन्दर बनकर सुन्दरता का भूतल में आमंत्रण आया।
रजनी के वैभव का भव में मङ्गलमूल नियंत्रण छाया॥
कटे चैत के सूने खेतों में भर भर कर ममता माया।
खेल रही थी खलिहानों में चारु चन्द्रिका निर्मल काया॥

(२६)

अपने दिव्य हृदय मन्दिर में भाव भरा संसार बसाये।
यौवन की अनुपम आभा में मञ्जु मधुर उल्लास जगाये॥
कौन खड़ी यह कञ्चन काया दुग्ध धवल वसना सुकुमारी ?
जिसकी भावुकता के बल से धन्य हुयी यह धरती सारी॥

(३०)

मृदुल कल्पना के वैभव से लेकर करुणा की कोमलता।
अनुपमता पाकर जागी थी जिसके जीवन की उज्ज्वलता॥
फूलों की मञ्जुल माया में जिसकी सुन्दरता लहराती।
जिसके यश की धारा अब भी धरती पर वैभव बरसाती॥

(३१)

जिसकी छवि में थी लहराती प्रेम पयोनिधि की सब माया।
सरस सुगन्धित स्वर्ण बनी थी जिसकी महिमा मण्डित काया॥
जिसके पावन पुण्योदय से सारे भव ने वैभव पाया।
जिसकी रस धारा से घर-घर जीवन का सागर लहराया॥

(३२)

जिसकी कञ्चन काया पाकर निखरी पड़ती थी तरुणायी।
जिसकी अनुपम सुन्दरता में बिखरी पड़ती थी अरुणायी॥
जिसकी आभा से लज्जित हो रति रम्भा भरती थीं पानी।
जिसकी घर घर में फैली है ले जीवन का सार कहानी॥

(३३)

जिसकी करुणा की छाया में रामचरित मानस लहराया।
जिससे गौरव मिला नरों को अमरों ने नवजीवन पाया॥
जिसने पति को पण्डित से कवि कवि से दुर्लभ भक्त बनाया।
यह थी रत्ना तुलसी जैसे कवि की अनुपम सुन्दर जाया॥

(३४)

घर से सम्बन्धित मन्दिर में देवार्चन के हेतु पधारे।
अपने प्रियतम के चिन्तन में जीवन की सब साध बिसारे ॥
स्नेह भरी यह गङ्गा जैसी पावन पुण्यमयी कल्याणी।
हुयी तरङ्गित सुनकर पति के अन्तिम मन्त्रों की वर वाणी ॥

(३५)

दुग्ध धवल उपवस्त्र समुन्नत अपने दृढ़ कन्धों पर डाले।
अपने कमलोपम अङ्गों में यौवन का संसार सम्हाले ॥
सामवेद के मृदु मंत्रों को फिर जो थे सस्वर दुहराते।
रत्ना ने अपने उन पति को देखा मङ्गल गति से आते ॥

(३६)

किसी मधुर आशा से उसने नीले नभ की ओर निहारा।
मानों छवि ने रूपराशि के मृदु बन्धन का जाल पसारा ॥
अपने चञ्चल अञ्चल पट को कमल करों का दे अनुशासन।
उसने पति के हेतु बिछाया अपने मृदु हाथों से आसन ॥

(३७)

उसने अपने प्रिय में देखा वैभव का विस्तार समाया।
धरती की माया का सम्बल विद्या का भण्डार समाया ॥
अपने प्रिय में उसने देखा मानव का अवतार समाया।
जिसके बल से मानवता ने एक नया संसार बसाया ॥

(३८)

सेवा के सम्बल ने जिनको कोमल और विनम्र बनाया।
जिनके पथ में फूल बिछाती गार्हस्थिक गुरुता की माया ॥
जिनमें मृदु बनकर झलकी थी जीवन के पौरुष की काया।
जिनकी प्रतिभा के सागर में अखिल लोक का ज्ञान समाया ॥

(३९)

जिनकी वाणी का वैभव है भारत में घर घर लहराता।
जिनकी मृदु मङ्गलमय गाथा विश्व अकुण्ठित स्वर से गाता॥
तुलसीदास यही श्रीपण्डित जिनसे भव ने जोड़ा नाता।
जिनको अपना दूध पिलाकर सफल बनी है भारत माता॥

(४०)

वे पति पत्नी दोनों बैठे छोड़ी सुखसागर ने सीमा।
उनके जीवन यौवन से था लगता विधुमण्डल भी धीमा॥
सत्यवान जैसे श्रीपण्डित सावित्री रत्ना कल्याणी।
यथा अर्थ संयुक्त सुशोभित इस वसुधा की मङ्गल वाणी॥

(४१)

चारु चन्द्र की रस धारा ने दम्पति में आनन्द जगाया।
उनकी मञ्जुल सहृदयता ने उनका नव सौन्दर्य बढ़ाया॥
इस क्षण की कविता से उनमें जो सुन्दर शृङ्गार समाया।
वाणी का पावन वैभव सा वह उस आँगन में लहराया॥

(४२)

उस वैभव से प्रेरित होकर बहती थी जो रस की धारा।
उसकी लहरों में लहरा कर जीवन ने ऐश्वर्य पसारा॥
उसकी छवि से छवि पाती थी राका रजनी अञ्चल खोले।
कविता के सुन्दर संवर्द्धन रत्ना से श्रीपण्डित बोले॥

(४३)

धरती की इस दिव्य ज्योति में पाकर पुण्य प्रसाद तुम्हारा।
मेरे इस जीवन यौवन ने जो अनुपम शृङ्गार पसारा॥
उसकी महिमा से बनती है भव की कविता लोक ललामा।
जिसके मङ्गलमय बन्धन में शक्ति नियंत्रित है अभिरामा॥

(४४)

अपने प्रियतम से यह सुनकर मुसकायी रत्ना कल्याणी।
भावों की मङ्गल गाथा सी इस धरती की मञ्जुल वाणी॥
प्रियतम के उन्नत कन्धों पर अपने कोमल हाथ लगाती।
सुकृति और सुख की सीमा सी बोली वह यह रस बरसाती॥

(४५)

किन्तु शक्ति की जैसी पूजा इस भारत में घर घर होती।
नारी की मर्यादा उसकी ठोकर खाकर दूर दूर रोती॥
घर के अन्दर माँ बहिनें हैं आदर से अबला कहलाती।
प्रियतम! पौरुष की मर्यादा उनके जीवन से इठलाती॥

(४६)

सबल शक्ति का आज नियन्त्रण इससे ढीला पड़ता जाता।
नारी का मङ्गलमय वैभव देखो आज पिछड़ता जाता॥
जीवन की मर्यादा खोकर यौवन भी आपत्ति जगाता।
अपनी इस दारुण बाधा से व्याकुल होती भारत माता॥

(४७)

अपनी रत्ना की वाणी से मानस का उल्लास बढ़ाते।
सुख से भर श्रीपण्डित बोले कविता के नव प्राण जगाते॥
नारी जीवन का संवर्द्धन नारी भव की मङ्गल गाथा।
उसकी मृदु कञ्चन काया से ऊँचा है पौरुष का माथा॥

(४८)

उसे तिरस्कृत कौन करेगा? वह है अपने घर की रानी।
वसुधा भर में घर घर छायी उसकी परिभाषा सुखदानी॥
वह बेटी बन घर भर देती गृहलक्ष्मी बन रस बरसाती।
बहिनों की वह मञ्जुल गाथा वह सबकी माता कहलाती॥

(४९)

वह जीवन की माया उसका आदर और अनादर कैसा ?
वह यौवन की काया उसका स्वागत और समादर कैसा ?
उसने मङ्गल गाया उसमें यह सारा आडम्बर कैसा ?
उसने रस बरसाया उसको क्षौमाम्बर पाटाम्बर कैसा ?

(५०)

माता हरदम माँ कहलाती बहिन सदा ही स्नेह बढ़ाती।
बेटी सब सुख साधन शीला बस रस की सम्पत्ति जगाती ॥
अपनी माँ बहिनों के यश में पौरुष है संवर्द्धन पाता।
बेटी के रस के रागों में मानवता का मन लहराता ॥

(५१)

प्रियतम की ये बातें सुन कर फिर रत्ना कल्याणी बोली।
नारी की मर्यादा जैसी भव से आज भवानी बोली ॥
पर माँ बहिनों पर पुरुषों ने हरदम है पीड़ा बरसाई।
नारी की आँखों से बरसी व्याकुल होकर स्नेह सगाई ॥

(५२)

यह सुन प्रिय ने बिहस प्रिया के मञ्जुल पङ्कज पाणि उठाये।
उनमें अपने कर कमलों से रुक रुक रेखाचित्र बनाये ॥
जीवन की इस परिभाषा से रस की मृदु भाषा खुल खेली।
कवि की इस मङ्गल आशा में सुख की अभिलाषा खुल खेली ॥

(५३)

दम्पति के स्नेहाराधन से राका रजनी थी छवि पाती।
जीवन की इस मङ्गल गति में यौवन की कविता लहराती ॥
उन सस्मित आँखों में छायी धरती दिव्य रजत परिधाना।
उस दिन सारे भव ने पायी मञ्जुल सुख सम्पत्ति महाना ॥

(५४)

बैठी थी रमा सुखशीला प्रियतम का सम्मान बढ़ाती
अपनी मञ्जुल रूप सुधा से भव के मङ्गल गान जमाती ॥
नारी की मृदु मर्यादा ने बल जीवन में पुण्य बिखेरा।
जिससे कविता के वैभव को वाणी के बन्धन ने घेरा ॥

(५५)

आज इसी बन्धन के बल से रक्षित जीवन की मर्यादा।
आज इसी बन्धन के बल से भव का जीवन यौवन सादा ॥
आज इसी बन्धन के बल से सरस काव्य की मङ्गल गाथा।
आज इसी बन्धन के बल से ऊँचा मानवता का माथा ॥

द्वितीय सर्ग

(१)

पाकर नव यौवन धरती का धन उतर पड़ी वरुणानी।
छायी हरियाली होकर काली पा पावस का पानी॥
गज गिरि से भारी व्योम विहारी उमड़ घुमड़ घन छाये।
सुख के सब साधन सुन्दर बन बन जीवन में घिर आये॥

(२)

विकसी लतिकायें तरु शाखायें थीं झुक-झुक छवि पाती।
बन उपवन भारी मङ्गलकारी सुख सम्पत्ति सुहाती॥
धरती के आँगन में नव यौवन ने अमोद बहाया।
बस रस बरसाने हृदय लुभाने घर घर सावन आया॥

(३)

आँखों में छायी शुभ्र सुहायी बक अवली अभिरामा।
पाकर तरुणायी अब मुसकायी प्रकृति सुन्दरी श्यामा॥
गरजे मतवाले बादल काले ले काजल सी काया।
दिन की मृदु माया भव की काया में सौन्दर्य समाया॥

(४)

बस शोर मचाते रस बरसाते नाचे मोर सलोने।
दादुर ध्वनि छायी बन सुखदायी आयी स्नेह सँजोने॥
भव में रस झरता सुख सुन्दरता स्वर सरिता सी फूटी।
धरती की माया कोमल काया फैली बीरबहूटी॥

(५)

बस सज धज करके अम्बर भर में दौड़े बादल काले।
जीवन के रस से यौवन यश से युवक हुये मतवाले॥
उठकर लहरायी स्नेह सगाई लेकर के पुरवाई।
चपला चमकीली रङ्ग रँगीली चमकी और समाई॥

(६)

नभ में सुरपति की मङ्गल गति सी होती थी अगवानी।
महिमामय बरसा रुक झुक बरसा बस धरती पर पानी॥
मृदु मन्जुल गाता धरती माता ने शृङ्गार सजाया।
रस यश की काया मङ्गल माया लेकर सावन आया॥

(७

पहले थम थम कर फिर झम झम कर बरसी रस की धारा।
खेतों बन बागों और तड़ागों ने अब मान बिसारा॥
जल में भी पानी थल में पानी अम्बर में भी पानी।
बस लेकर पानी भरी जवानी सी विकसी वरुणानी॥

(८)

सब सर सरितायें जल भरितायें छोड़ रही थीं सीमा।
प्रियतम के पथ में यौवन रथ में स्वर कैसे हो धीमा?
उनकी रस धारों कूल कगारों से जो द्रुत गति छूटी।
वह सुखद सुशीला र व की लीला पुण्य प्रगति पा फूटी॥

(९)

धरती को धन दे नवजीवन दे बिछा बिछाकर दरियाँ।
तन मन की सुन्दर बैठीं घर घर स्नेह भरी सुन्दरियाँ॥
बस गा गा करके मङ्गल स्वर से सूत उन्होंने काता।
धरती के यश से अभिनव रस से सस्मित भारत माता॥

(१०)

अपने इस भव पर जीवन दे कर जो कपास दुख भूली।
वह इन सतियों के कर कमलों के सुखस्पर्श से फूली॥
आँखों पर छायी वह सुखदायी कर कमलों की माया।
जिसके आकर्षण से इस वर्षण ने वैभव बरसाया॥

(११)

अपनी कोमलता की अनुपमता में सम्पत्ति बसाती।
सखियाँ वरणीया आदरणीया थीं मङ्गल सब गाती॥
भव के वैभव में गुरु गौरव में उनके गीत समाये।
पतले तागों में मृदु रागों में बस जो घर घर छाये॥

(१२)

पाकर कुछ आशा कुछ अभिलाषा स्नेह भरी अभिरामा।
ले सूत सुशीला जीवन लीला बहिन मिली सुखधामा॥
भाभी ने देवर को मुसकाकर अपनी सुकृति दिखाई।
बेटे की जाकर माँ ने झुक कर देखी जीर्ण रजाई॥

(१३)

इस स्नेहाकर्षण का कर दर्शन तृप्त हुयी वरुणानी।
जिसके अनुशासन का कर पालन बन्द हुआ अब पानी॥
रवि ने बन्धन से विचलित मन से मुक्ति तनिक सी पाई।
लतिका द्रुम डोले पंछी बोले छायी नवल निकाई।

(१४)

बस रङ्ग बिरङ्गा बन सतरङ्गा इन्द्रधनुष उग आया ॥
जिसकी सुन्दरता से रस झरता धरती पर मनभाया ॥
विह्वल बन नभ ने सस्मित मन से सुख की राशि बिछायी ।
भव में जीवन की नव यौवन की सुख सम्पत्ति सुहायी ॥

(१५)

"चाचा" बस इतना कहकर सुमना बेटी चुप हो जाती ।
बस बन अलबेली वायु अकेली उसकी बात बताती ॥
पर जिसके घर में वैभव वर से अग्रज तन मन भूले ।
वह लोक ललामा मङ्गलकामा क्यों न हुलस कर भूले ?

(१६)

बहिनें सीता सी शुभ गीता सी और भरत से भाई ।
जब हिल मिल भूले तन मन भूले जागी स्नेह सगाई ॥
तब मङ्गल गाता भारत माता की आँखों में छाई ।
यश रस बरसाती रस वश गाती प्रीति घटा घिर आई ॥

(१७)

तृण तरु लतिकाओं ने घर गाँवों से नवजीवन पाया ।
उल्लसित दिशायें स्मित आशायें धरती में धन छाया ॥
सब सुखित चराचर भव ने निर्झर बन कर रस बरसाया ।
जब मुक्त स्वरों में सुन्दरियों ने गाया सावन आया ॥

(१८)

वीरों के स्वर सा बादल गरजा फिर से अब सुखशाली ।
धरती पर छायी जन-मन भायी सुन्दर प्रीति प्रणाली ॥
अग्रज उठ बोले निज अनुजों से दूध पियो तुम सारा ।
पञ्चमी पधारी तात तुम्हारी शक्ति साधना द्वारा ॥

(१६)

फिर जन्मभूमि की पुण्यपूर्ति सी सिर पर धूलि चढ़ाये।
उन वीर व्रतों ने सिंह सुतों ने भव के भाग्य जगाये॥
नव शक्ति जगाते हर्ष बढ़ाते बजने लगे नगाड़े।
शुभ शौर्य गुणों के उन तरुणों से अब भर उठे अखाड़े॥

(२०)

जिनकी व्याकुल सी जननी ने लीं भर भर अङ्क बलायें।
पूजी बहिनों ने मुक्त मनों से जिनकी दीर्घ भुजायें॥
जिनका यश गाती, थीं बलि जाती जिन पर मल्ल कलायें।
गौरव गरिमा की वन्य विभा सी जिनकी पुण्य कथायें॥

(२१)

जिनसे छवि पाती मङ्गलमाती सुन्दरता सुखदानी।
जिनमें नव काया की मृदु माया सी देदीप्य जवानी॥
उन दिव्य मनों के नव तरुणों के कृष्णार्जुन से जोड़े।
उतरे मुसकाते नव बल पाते सब भय विस्मय छोड़े॥

(२२)

नव गज शुण्डों से भुजदण्डों में पौरुष पुण्य सकेले।
बल से यौवन से सञ्चित धन से जब वे खुल खुल खेले॥
तब पुलक प्रकृति ने उनकी गति में कुछ मादक स्वर गाये।
जीवन के धन ने वन उपवन में अपने वर बरसाये॥

(२३)

बीते यौवन की बल विक्रम की ले उजली स्मृति रेखा।
सब वृद्ध जनों ने मुक्त मनों से आँखों का सुख देखा॥
उल्लसित हृदय में स्नेह निलय में साध लिए सब जी की।
सबकी जय हो ले सब जन बोले जय बजरङ्ग बली की॥

(२४)

अपने यौवन के संवर्द्धन में नूतन ज्योति जगाये।
जब उन तरुणों ने मुग्ध मनों से सबको शीश झुकाये॥
तब प्रेम पुलक से मङ्गल यश से गज भर की कर छाती।
सब ज्येष्ठ जनों ने मृदु बचनों से दी आशीश सुहाती॥

(२५)

अपने जीवन में बल विक्रम से निर्भयता बरसाते।
निज भाव भक्ति से स्नेह शक्ति में नव आवेश जगाते॥
नव हर्षोद्भासित प्रेम प्रकाशित अन्तर्ज्योतिर्मय हो।
बोले फिर फिर सब सीतापति भगवान राम की जय हो॥

(२६)

जिनमें अकुलाती माँ बलि जाती व्यञ्जन थाल परोसे।
जिनमें बहिनों के मृदु हृदयों के भाव गये सब पोसे॥
जिनमें बधुओं ने सुघर करों से सुख सम्पत्ति सकेली।
उन वर अजिरों के वरद घरों में प्रीति पुलक कर खेली॥

(२७)

उनमें जब आये स्नेह जगाये लोग परम हितकारी।
फैली नवनीता गौरव गीता बनकर मङ्गलकारी॥
तब घर घर छाया ले मृदुमाया यह संवाद सुहाया।
जिसने भोजन में बस हर घर में सुख सन्तोष जगाया॥

(२८)

जो भव के पूषण वाणी भूषण शेषसनातन आये।
वे महिमा मण्डित थे श्रीपण्डित के गुरुदेव सुहाये॥
उनके अभिभाषण के मधु सिञ्चन से नवजीवन पाने।
सन्ध्या प्रवचन में वेद भवन में लोग लगे सब जाने॥

(२९)

मृदुता सञ्चालक सारे बालक दौड़े नयन रँजाये।
लेती मातायें पुलक बलायें मङ्गल घर घर छाये॥
भावुक तरुणों ने मिल आपस में गलबाहें थीं डाली।
वृद्धों में छायी भव्य सुखदायी सुन्दर प्रीति प्रणाली॥

(३०)

तब के श्रीपण्डित अब भव वन्दित कवि के वेद भवन में।
नव निर्मित सुन्दर शिव के मन्दिर के विस्तृत प्राङ्गण में॥
दल के दल सारे लोग पधारे गाँव हुए सुख शाली।
उल्लसित उमङ्गित परम प्रफुल्लित चाह लिये मतवाली॥

(३१)

उस धर्म सभा में पुण्य प्रभा से काषायाम्बर धारी।
श्री शेषसनातन पुण्य पुरातन से सबके हितकारी॥
जब महिमा मण्डित वे श्रीपण्डित से संयुक्त पधारे।
तब सबने जाना और बखाना भव ने भाग्य सवाँरे॥

(३२)

जन जन ने देखी विद्या वय की तपस्तेजमय काया।
जिसके अन्तर में जीवन रस से परमानन्द समाया॥
जो जन जीवन की पुण्यार्जन की मञ्जुल प्रीति प्रणाली।
जिसमें थी छायी यह सुखदायी काव्य कला बलशाली॥

(३३)

बस धर्म विजय की जय जय जय की छायी मङ्गल गीता।
जीवन यौवन में बस जन जन में प्रीति बसी परिणीता॥
सावन की काया की मृदु माया ने आलोक जगाया।
बन कर उपकारी भव भयहारी भव में पुण्य समाया॥

(३४)

दिखते लड़कों को पुलकित हो हो पूज्य पितृव्य उठाये।
तरुणों ने निस्वर सुख से भर भर अपने भाग्य जगाये॥
उस वृद्ध तपोधन पर तज कम्पन ठहरीं आँखें प्यासी।
जीवन यौवन से बल विक्रम से छूटी आज उदासी॥

(३५)

फिर कुछ विप्रों ने विबुध जनों ने मङ्गल मन्त्रों द्वारा।
उस पुण्योत्सव के वर वैभव में नव अभिषेक पसारा॥
अतिशय अभिरामा जन मन कामा पुण्य प्रभा कल्याणी।
छायी मृदु लीला परम सुशीला बन वेदों की वाणी॥

(३६)

फिर अन्तस्तल में बल सम्बल के मृदु उद्गार समेटे।
अपने जीवन में भव बन्धन के दुस्तर भार लपेटे॥
गुरु का कर स्वागत सादर विधिवत अपने भाषण द्वारा।
भारत के कवि ने श्रीपण्डित ने जो आलोक पसारा॥

(३७)

उसने जनता की प्रथित सभा की श्रद्धा भक्ति जगायी।
उसने उत्सुकता की सुरसरिता की रसधार बहायी॥
सब व्याकुल मन में कब किस क्षण में श्रवण सुखद फल पावें।
कब अपना भाषण नव सञ्जीवन सा गुरुदेव सुनावें॥

(३८)

उस पुण्य पुरुष ने उठकर अपने श्वेतश्मश्रु सम्हाले।
फिर सीधे तनकर दर्शक दल पर अपने लोचन डाले॥
पहले मृदु स्वर सी फिर निर्झर सी बरसी उनकी वाणी।
बोले मुनि नायक बन सुखदायक ले यह गति कल्याणी॥

(३९)

बन कर संसारी आज हमारी यह प्रिय पर्व पधारी।
जो जन अनुकूला मङ्गलमूला निखिल भुवन हितकारी॥
उसने सुखधामा लोक ललामा वह नव ज्योति पसारी।
जो सङ्कट काटे कण्टक छाँटे बनकर भव भय हारी॥

(४०)

आने दो आयें विघ्न बलायें उनसे दूर न भागो।
बल की यौवन की नव जीवन की भव में भीख न माँगो॥
इस नव विक्रम के संवर्द्धन से निर्भय हो भय त्यागो।
विकसित गौरव के वन्द्य विभव से जन जन जीवो जागो॥

(४१)

इस मुक्त पवन के प्रति कम्पन में जो जीवन लहराता।
वह इन मेघों के सजग स्वरों में यौवन बन घहराता॥
जब यौवन बल से सर्वार्पण के अपने राग जगाता।
तब सत्य निरन्तर हो शिव सुन्दर भव में रस बरसाता॥

(४२)

जिस स्नेह सुधा ने इस वसुधा में जीवन ज्योति जगायी।
उसके नव वर्षण में आकर्षण लेकर यह तिथि आयी॥
इस आकर्षण के संवर्द्धन में जो शुभ शक्ति समायी।
उसकी यश गाथा भारत माता के वैभव में छायी॥

(४३)

इस जीवन रस के अनुपम यश से भव ने निज निधि खोली।
इसने घर-घर में भूतल भर में दिव्य सुधा बस घोली॥
इसकी मृदु माया कञ्चन काया इन तरुणों की टोली।
जिनके यौवन के भव्य भवन में आज विजय उठ बोली॥

(४४)

बस इनके यश से मधुरामृत से सिञ्चित सर्व दिशायें।
विकसीं कण-कण में निखिल भुवन में इनकी काव्य कलायें॥
आओ! जीवन में अपने धन के पुण्य-प्रदीप जगायें।
इस त्रस्त विभव से भूले भव के पन्थ प्रशस्त बनायें॥

(४५)

जलती प्राणों की बलिदानों की यह ज्योतिर्मय ज्वाला।
इसमें बल यौवन विकसित जीवन सहज जिन्होंने डाला॥
भव पर मर मिट कर तिल तिल कट कर सत्य जिन्होंने पाला।
अपने प्रिय प्रण के अर्जित धन से प्राप्त जिन्हें जयमाला॥

(४६)

जिनके सम्बल से निखिल भुवन ने अपने प्राण पसारे।
जीवन के जीवन यश के भी धन बन जो स्वर्ग सिधारे॥
उन अमर नरों के वरद करों से रक्षित भाल हमारे।
जिनकी आहुति से पुण्य प्रगति से भव ने भाग्य सुधारे॥

(४७)

बस भव भय नाशक भाग्य विकाशक निज सम्मान बढ़ाना।
इस वृद्ध देश के धर्म वेष के सब परिताप मिटाना॥
यौवन के धन से विकसित मन से अपने पुण्य जगाना।
जीवन की काया की मृदुमाया पर हँस-हँस बलि जाना॥

(४८)

बस जिसने निर्भय विन्ध्य हिमालय के गुरु भार उठाये।
जिसने सरिताओं में मृदु भावों के द्रव रूप बहाये॥
जिसके अञ्चल में वैभव बल के पुष्कल पुण्य समाये।
विकसें त्रिभुवन में नव जीवन से उस जननी के जाये॥

(४६)

नव शक्ति प्रदाता भारतमाता तुमको आज उठाती।
जन जन में सोये स्नेह सँजोये शुभ सङ्कल्प जगाती॥
बस तुम मत हारो जन्म सुधारो तुमको शक्ति बुलाती।
अब स्नेह जगाओ मङ्गल गाओ विजय तुम्हारी थाती॥

(५०)

सबने विस्मित हो इस भाषण को अश्रुतपूर्व बताया।
पुलकित जन जन ने वेद भवन में मधुरामृत फल पाया॥
यह इस जीवन की भव बन्धन की व्याख्या ओज जगाती।
बल वीर्य विजय ले हृदय हृदय में फैली आदर पाती॥

(५१)

बस हुयी विजय से जय जय जय से पूरित ध्वनित दिशायें।
था सबके मन से पूज्य पुरुष के चरणों में झुक जायें॥
प्रमुदित कर सबको श्रीपण्डित को गुरु ने लगा कलेजे।
रत्ना रानी को कल्याणी को सुख सुहाग वर भेजे॥

(५२)

उस सुख सुहाग के पुण्य भाग से है यमुना लहराती।
अब भी बन बन में उसकी ध्वनि में कोयल कूक मचाती॥
छायी सतियों में सुन्दरियों में उसकी छवि कमनीया।
अविराम उसी के पुलकित जी से गाता गीत पपीहा॥

(५३)

जिसके यौवन ने भाव भवन में मृदु माधुर्य बिखेरा।
जिसकी सुन्दरता में सहृदयता का था सुखद बसेरा॥
वह श्रीपण्डित की रत्ना रति सी हृदय देश की रानी।
पति से हँस बोली रुचि रस घोली यह वाणी रस सानी॥

(५४)

गुरु के भाषण के प्रति स्वर स्वर में जिसका सुयश सुहाता ।
जो मङ्गलकामा लोक ललामा भव की भारतमाता ॥
उसने सीता की गुण गीता सी छवि में प्राण पसारे ।
पर बन बन डोले केवल भोले बनकर राम हमारे ॥

(५५)

"बस बुद्धि विभव से तर्क्य विषय के घेरे तो मत तोड़ो
अपने मृदु मन के इस बन्धन में तुम न राम को जोड़ो
सब सृष्टि उचित ही धरती पर ही अपने लक्ष्य लगाती
पर तुम्हें सङ्गिनी वन बिहङ्गिनी की चञ्चल गति भाती ।"

(५६)

यह कह कर प्रिय ने हुलस प्रिया के पङ्कज पाणि सम्हाले ।
फिर उनकी छवि में भव के कवि के मञ्जुल बन्धन डाले ॥
बोले "कल्याणी रस की रानी यों उड़ना मत सीखो
तुम मङ्गल भरिता मञ्जुल सरिता सी मुड़ना मत सीखो"

(५७)

बोली "तुम मेरे स्वर्ण बसेरे मैं सारिका तुम्हारी
तुम सूत्र प्राण, मैं मुक्त गान मय कल कारिका तुम्हारी
मैंने उड़ उड़ कर फिर मुड़ मुड़ कर यह ध्वनि मात्र पसारी
मैं विश्व विभव के गुरु गौरव के पुण्य पुरुष की नारी"

(५८)

वह तरुण उषा की अरुण प्रभा सी मञ्जुल मङ्गल कामा ।
अपने वचनों के मृदु सुमनों से पाती छवि अभिरामा ॥
कवि ने सुख पाकर रीझ रिझाकर सभा भवन में पाये ।
अपनी रत्ना को सुमनमना को पुष्पहार पहिनाये ॥

(५९)

"सच प्राण बता दो तुमने ये क्यों हार मुझे पहिनाये ?"
इस प्रेम प्रश्न ने जो उस क्षण में सुख के स्रोत बहाये ॥
खेली कल्याणी बन कर वाणी उनसे तरल तरङ्गा ।
उमड़ी बस उनके उज्ज्वल रस से सुजला बनकर गङ्गा ॥

(६०)

जो देव दुर्लभा भारत वसुधा की विभूतिमय माया ।
जिसकी यश काया की मृदु छाया ने शुभ योग जगाया ॥
वह कवि दम्पति की पुण्य प्रगति सी शुचि रुचि मङ्गल कामा ।
जन जन के मन में सुख साधन ले फैली जब अभिरामा ॥

(६१)

तब पा सुख साधन जीवन का धन रक्षा बन्धन आया ।
भव की गुरुता ने कोमलता ने नूतन रूप जगाया ॥
उस दिन रस सानी सब सुखदानी मृदुता घर घर खेली ।
उस दिन मुसकायी जन मनभायी मादकता अलबेली ॥

(६२)

उस दिन विहगों ने कल कण्ठों से एक नयी ध्वनि गायी ।
उस दिन मतवाली प्रीति प्रणाली वायु लिये लहरायी ॥
उस दिन मेघों ने उड़ उड़ नभ में नूतन रङ्ग समेटे ।
उस दिन जीवन में मानव मन ने भार व्यथा के मेटे ॥

(६३)

"भइय्या" कह कह कर सुख से भर भर दे दे दूध बतासे ।
उस दिन बहिनों ने मणिबन्धों में अपने बन्धन फाँसे ॥
भाभियाँ उभरकर कुछ ढीली कर मृग नयनों की बागें ।
फूलों सी फूलीं हँस हँस बोलीं "दम्पति जीवें जागें ॥"

(६४)

पा पुण्य प्रकृति का श्रीपण्डित सा महिमा मण्डित भाई।
जो पङ्कज वसना मङ्गल रसना राखी लेकर आई॥
वह थी चिन्तामणि विद्या वारिधि की इकलौती बेटी।
जिसने तन मन के संवर्द्धन से हिल मिल सुछवि समेटी॥

(६५)

जिसके नयनों से चपल मनों के मृग शावक सकुचाये।
जिसकी कल्याणी सुन मृदु वाणी मत्त मयूर लजाये॥
जिसने जीवन के प्रथम चरण से बस सुख ही सुख देखा।
यह वह मृदु गाता सरल सुजाता चन्द्रमुखी विधुलेखा॥

(६६)

जिस पर यौवन के अभिनन्दन ने मृदु माधुर्य लुटाया।
जिस पर वसुधा की रूप सुधा की बरसी मञ्जुल माया॥
जिस पर जीवन के सरस सृजन ने सुख की राशि चढ़ायी।
जिस पर रस राती बलि-बलि जाती भव की ललित लुनायी॥

(६७)

भाई ने उसको पुलकित हो हो आज सगर्व निहारा।
भाभी ने उसके मधुर मिलन में नव उल्लास पसारा॥
बस उस क्षण उसके मुखमण्डल ने जो शृङ्गार जगाया।
वह उस आँगन के मुक्त पवन में जीवन बन बन छाया॥

(६८)

जब प्रकट कला-सी उसने बाँधी भाई को प्रिय राखी।
भाभी तब बोली "मैं अनबोली प्रीति रीति की साखी"
इस रास रङ्ग के रङ्ग ढङ्ग में स्नेह भरे सब जी का।
जब पुलक बहिन ने वरद बन्धु के हुलस लगाया टीका॥

(६९)

तब बल सकेल कर रेल ठेल कर नवल नील घनमाला ।
उन नव कमलों से युगल मुखों में रवि ने रस भर डाला ॥
उनके मृदु तन की मन्द पवन भी लेने लगी बलायें ।
बिखरीं सुमनों के मृदुल दलों में लोनी ललित कलायें ॥

(७०)

वह बहिन बन्धु की उमा विष्णु सी देख अलौकिक जोड़ी ।
निज मुखर नूपुरों को निज चरणों से गति दे कुछ थोड़ी ॥
रत्ना कल्याणी कोमल वाणी से नव मधु बरसाती ।
बोली "न छिपाओ, सत्य बताओ" तब पति से मुसकाती ॥

(७१)

"जो मृग मदमोचन कमल विलोचन इनके रस बरसाते ।
उनकी मादकता की मधु में क्या तुम वह सुछवि न पाते ?
जो अति अभिरामा सब सुख-धामा केवल मङ्गल मूला ।
जिसकी प्रतिपाली प्रीति प्रणाली से यौवन वन फूला ॥"

(७२)

तब उठीं प्रिया पर प्रिय की निरवर भेद भरी दो आँखें ।
थीं रस वश होती स्नेह सँजोती जिनकी कोमल पाँखें ॥
अब हार तुम्हारी जीत हमारी कह बिहँसी सुकुमारी ।
बस मङ्गल-कामा लोक ललामा खिली कल्पना सारी ॥

(७३)

इस हार जीत ने प्रीति रीति के जो संयोग सजाये ।
वे काव्य कथा की पुण्य प्रथा की लहरों में लहराये ॥
ओ ! जाग-जाग री ! स्नेह राग सी अब तो कवि की वाणी ।
आयी उकसाने तुझे जगाने यह कविता कल्याणी ॥

तृतीय सर्ग

(१)

अयि ! काव्य कल्पने रुक न, चली चल आगे ।
तेरे तो हैं सौभाग्य भुवन में जागे ॥
पी ले भर भर कर सुकृति सुधा तू पी ले ।
जिससे तन्त्री के तार न होवें ढीले ॥

(२)

अब तक भावुकता भरे मधुर मनभाये ।
जीवन के तूने गीत रसीले गाये ॥
सिर ऊँचा कर ओ ! दिव्य देश की वाणी ।
विजया की भी तो देख कृपा कल्याणी ॥

(३)

अब पुलक प्रकृति ने मणि मञ्जूषा खोली ।
भव में सज धज कर सुघर स्वच्छता डोली ॥
अम्बर से मेघों की माया भी भागी ।
जागी जागी री ! शरद सुन्दरी जागी ॥

(४)

प्राची में फैली देख उषा की लाली।
जागृति ने छवि की वरद गोद भर डाली॥
धरती पर भव ने अपनी सुकृति पसारी।
जीवन में यौवन लेकर प्रगति पधारी॥

(५)

अपनी मृदु ध्वनि में कोमल राग सम्हाले।
निष्पङ्क सरों में हिले हंस मतवाले॥
थिरके खञ्जन खिल पड़े कास शुक बोले।
पा दिव्य जागरण आज लता द्रुम डोले॥

(६)

ले शारदीय उल्लास भुवन की माया।
फैली जल थल में पा प्रभात की काया॥
फूटीं रवि किरणें बन बन कर अलबेली।
भव के वैभव ने हिलमिल सुछवि सकेली॥

(७)

विकसीं सुन्दरियाँ ले सुख साज घरों में।
फूले मतवाले पङ्कज स्वच्छ सरों में॥
उनके भ्रमरों ने झूम झूम गुण गाये।
इनमें छवि ने अपने शृङ्गार चढ़ाये॥

(८)

कोमल किरणों की गति पाकर मनमानी।
अब निखर पड़ा जिनमें मोती सा पानी॥
कुल वधुओं सी वे लाज भरी सरितायें।
विलसीं झरनों की लेकर दिव्य कलायें॥

(९)

सुन्दर जीवन सुन्दर भावों की भाषा।
छायी सुन्दरता की सुन्दर अभिलाषा॥
सुन्दर जल थल सुन्दर निरभ्र नभ नीला।
उतरी सुन्दरता लेकर शरद सुशीला॥

(१०)

उस दिन चाहा सबने वैभव वर लेना।
उस दिन सीखा बलिदान जगत ने देना॥
उस दिन कायरता यम का हुयी चबेना।
उस दिन हारी असुरों की दुर्दम सेना॥

(११)

विकसी विकसी गङ्गा यमुना की धारा।
पावन सलिला सरयू ने पुण्य पसारा॥
बस उस दिन घर घर भर सुख साधन सारे।
उतरे भव भर के रक्षक राम हमारे॥

(१२)

अब जन जागृति ने विजय भरी ध्वनि गायी।
बल की विक्रम की रस धारा लहरायी॥
अब जीवन में यौवन ने क्रान्ति मचायी।
आयी! आयी! बिजयादशमी यह आयी!

(१३)

डोली गौरव से भरी वायु फिर डोली।
बोली फूलों की राशि खोल मुँह बोली॥
खोली प्राची ने पुण्य प्रभा फिर खोली।
घोली वसुधा ने मधुर सुधा फिर घोली॥

(१४)

खुल कर सीता का स्नेह लगा लहराने।
लक्ष्मण, रिपुसूदन का तप त्याग जगाने॥
जागी उस दिन तो राम भरत की माया।
घर घर में मङ्गलमय साकेत समाया॥

(१५)

पाकर भक्तों की गीताञ्जलि अनुरूपा।
राजी भव भर में दुर्गा शक्ति स्वरूपा॥
अपने प्रसाद का वर वैभव बरसाती।
मानवता की नव शक्ति भक्ति बन आती॥

(१६)

जिसके पुलिनों पर मधुर मुरलिका गूँजी।
राधा माधव की जो मिलापमय पूँजी॥
जिसके गीतों से गुथी सूर की वाणी।
वह हुयी सुशोभित कालिन्दी कल्याणी॥

(१७)

गङ्गा भर भर कर अङ्क जिसे है लेती।
धरती जिसको सम्मान सदा से देती॥
जिससे मिल मिल कर सरस्वती मुसकाती।
उस यमुना की महिमा कविता है गाती॥

(१८)

जिनमें अपना गौरव विकास बन गूँजा।
जिनमें होती थी निज संस्कृति की पूजा॥
जो आर्य सभ्यता के संयुक्त विलासी।
थे दया मया मय जिनके सब अधिवासी॥

(१६)

उन गाँवों की थी आज सुशोभित काया।
हलचल का उनमें ज्वार उमड़ था आया॥
पा स्नान, दान, सम्मान, सुकवि ने गाया।
भव भर ने अपना जीवन-जन्म बनाया॥

(२०)

विकसी रवि की किरणें ले गोद प्रतीची।
सौन्दर्य सुधा से गयी मेदिनी सींची॥
शीतल सुगन्ध ले मन्द पवन लहराया।
हुलसी पाकर तारुण्य प्रकृति की काया॥

(२१)

विकसी पौरुष की गति जिनमें मतवाली।
उन खेतों की थी आभा आज निराली॥
जो वरद कला कृति उनमें बन ठन छायी।
उसने जीवन में नूतन ज्योति जगायी॥

(२२)

पा नीलकण्ठ के दर्शन की अभिलाषा।
मचली शिशुओं की भाव भरी परिभाषा॥
वे लता द्रुमों के तले दौड़ कर जाते।
बैठे विहगों को कर कर शोर उड़ाते॥

(२३)

भर कर जङ्गल में मङ्गल गति मनमानी।
सरसी शङ्कर की जीवन ज्योति भवानी॥
जिसका जल थल में विकसित यश न समाया।
वह आज सुखी थी सुख से भव की माया॥

(२४)

वह धन्य ! कि जिसने विश्ववन्द्य सुत जाये।
वह धन्य ! कि तिसने गुरुतम भार उठाये ॥
वह धन्य ! चराचर जिसके गुण गण गाता।
वह धन्य ! मही की महिमा भारत माता ॥

(२५)

उस दिन के किसने गीत न सुख से गाये।
मिट्टी के ढेले जिस दिन स्वर्ण कहाये ॥
पुलके उस दिन अपनी कृति देख विधाता।
बस धन्य हुयी उस दिन यह धरती माता ॥

(२६)

उस दिन जीवन ने उठ निकृष्टता त्यागी।
उस दिन वैभव को सुकृति मिली मुँह माँगी ॥
झलकी उस दिन घर घर स्वदेश की माया।
उस दिन अक्षय पुरुषार्थ भुवन में छाया ॥

(२७)

उस दिन जीवन की जागी सुन्दर लीला।
बस सारा भव था स्नेह सुधा से गीला ॥
उस दिन छवि की पा परम प्रफुल्लित रेखा।
अपनी भाभी के घर आयी विधुलेखा ॥

(२८)

बोली रत्ना जागे क्या भाग्य हमारे ?
किस ओर सूर्य ने अपने नयन पसारे ?
इतने दिन तक कैसे नीरस व्रत साधा ?
जपती थीं हरि का नाम कहाँ पर राधा ?

(२६)

कहती यह सरस विनोद भरी मृदु वाणी।
विधु से मिलकर विकसी रत्ना कल्याणी ॥
फिर दे जब आदर मान उसे बैठाया ।
तब सुख ने भी नूतन विन्यास जगाया ॥

(३०)

बोली विधु बातें बचकर और बढ़ाना ।
है सहज नहीं मुझ पर आरोप लगाना ॥
देखो दुर्लभ पाना मुझसे छुटकारा ।
होगा कुछ तो भी इसमें दोष तुम्हारा ॥

(३१)

तुम जान बूझकर छेड़ रही हो मुझको ।
तुम घिर-घिर कर भी घेर रही हो मुझको ॥
मैं व्यस्त पिताजी के कारण थी रहती ।
तुम कौन आपदा बैठ यहाँ थीं सहती ?

(३२)

पर सचमुच जागे थे अपराध हमारे ।
जिनके घर कमलोपम पग ये न पधारे ॥
छोड़ो सीने बुनने का आज झमेला ।
लो चलो आ रही है प्रसाद की वेला ॥

(३३)

थे आज पिताजी करते याद तुम्हारी।
माँ का मन तो हो उठा आज कुछ भारी ॥
बस अभी अभी मैं तनिक साँस ले पायी।
मैं आज बैठने नहीं, बुलाने आयी ॥

(३४)

चल दीं बस वे प्रत्यक्ष कला कविता सी।
यौवन की दो सरितायें रस भरिता सी॥
वे पीत रक्त परिधानवती कल्याणी।
धरती की गीता तथा स्वर्ग की वाणी॥

(३५)

पहुँचीं वे उस घर जहाँ सम्पदा जागी।
जिसके गृहपति होकर गृहस्थ, थे त्यागी॥
बोले चिन्तामणि वृद्ध देवगुरु जैसे।
अब तक प्रसाद को बहू रुकी थी कैसे?

(३६)

हाँ, बहू तुम्हारी अब उदास सी रहती।
क्या करे अकेली कुछ न किसी से कहती॥
बोलीं घर की गृहिणी बन ममता माया।
उनके मन में माँ का वात्सल्य समाया॥

(३७)

फिर बोलीं श्रीपण्डित से तुम यह कहना।
इसमें भी कर सङ्कोच मौन मत रहना॥
है गर्भ भार से बहू कष्ट कुछ पाती।
इसकी चिन्ता मुझको दिन रात सताती॥

(३८)

है प्रथम गर्भ की व्यथा कष्टमय होती।
यद्यपि उसमें सुख शान्ति विश्व की सोती॥
इसलिए अपेक्षित अधिक सावधानी है।
कोमल काया मृदु प्राण बहूरानी है॥

(३९)

तब वृद्ध तनिक गम्भीर अधिक हो बोले।
वाणी ने अपने द्वार हुलस कर खोले॥
तुमने अब तक तो भेद मुझे न बताया।
सचमुच लगती है बहू अधिक कृशकाया॥

(४०)

फिर भोजपत्र पर चपल लेखनी नाची।
वैदिक मन्त्रों ने सिद्धि उमड़कर बाँची॥
खुल पड़ी साधना सिद्ध कवच की काया।
मानों उसमें सारा तप तेज समाया॥

(४१)

बोले चिन्तामणि लो इसको ले जाओ।
यह रक्षा का नव कवच उसे पहिनाओ॥
फिर बोले देखो यह विभूति भी लेना।
गङ्गाजल का कर योग इसे दे देना॥

(४२)

वृद्धा जैसी वत्सला यशोदा माता।
ललिता राधा सी विधु रत्ना मृदु गाता॥
अथवा सुलझाने को सौन्दर्य समस्या।
बैठी अपनी मृदु माया खोल तपस्या॥

(४३)

उमड़ी बातों की बस रसधार त्रिवेणी।
विकसे सब सरस प्रसङ्ग बाँध कर श्रेणी॥
पाकर सुन्दरता और कला की छाया।
उस दिन सन्ध्या ने अपना योग जगाया॥

(४४)

पहिना कर फिर नव कवच विभूति पिलाकर।
गर्भानुकूल आचार विचार सिखाकर॥
वे माँ कमला प्रत्यक्ष स्वयं कमला सी।
बोलीं विधु से कोमलतम पुण्य प्रभा सी॥

(४५)

बेटी कर लूँगी मैं सब यह अब जा तू।
अपनी भाभी को उसके घर पहुँचा तू॥
आते होंगे बाहर से तेरे भइय्या।
जा देर न कर लेती माँ हुलस बलइय्या॥

(४६)

विधु बोली मैं तो आज न जाने दूँगी।
इतने दिन का बदला इनसे ले लूँगी॥
बोलीं वृद्धा बदले के दिन आयेंगे।
सुख के हम सुन्दर गीत सरस गायेंगे॥

(४७)

जा, रूठ न उठ, अब छोड़ इसे घर आ तू।
अपनी हठ बेटी आज न यों दुहरा तू॥
तेरी इच्छा हो तो तू भी रह जाना।
बस इसीलिए करती थी क्यों न! बहाना?

(४८)

निकलीं हिल मिल कर जब रत्ना विधुलेखा।
सन्ध्या ने उनको नव नयनों से देखा॥
रवि ने दी उन पर ढाल राग की रोली।
उनके अञ्चल को चूम पवन भी डोली॥

(४९)

फूलों ने उन पर अपना हास लुटाया।
भ्रमरों ने उनका सुखद सुयश फैलाया॥
बस उन्हें देखकर नव सरोज सकुचाये।
प्रिय गीत उन्हीं के शरद वधू ने गाये॥

(५०)

अब तक जो था उनके विलास से सूना।
वह कवि का घर हो गया प्रफुल्लित दूना॥
शुक ने मीठी मधु राम नाम की घोली।
आगयीं! आगयीं! आप सारिका बोली॥

(५१)

कुछ सूने पन का भाव भरे वे दोनों।
सकुचायीं कहते भेद परस्पर दोनों॥
फिर आँगन के वे बिछे तल्प पर दोनों।
बैठीं सुन्दरता को सुन्दर कर दोनों॥

(५२)

अपने मृदु मन में भर विनोद की रेखा।
भाभी से बोली नव नयना विधुलेखा॥
तुमने अपना सम्मान सदैव निबाहा।
फिर भी तुमने क्यों है यह रोग बिसाहा?

(५३)

तुम सी नारी जो सब रुग्णा हो जावें।
धरती के सब परिताप पाप खोजावें॥
भाभी! तुम तो अब भी जैसी की तैसी।
माँ को चिन्ता फिर व्यर्थ कहो क्यों ऐसी?

(५४)

बोली रत्ना तुम यों ही बहती जाओ।
दिन आज तुम्हारे हैं तुम कहती जाओ ॥
जब चाहूँगी तब मैं उत्तर दे लूँगी।
इसका बदला मैं भी तुमसे ले लूँगी ॥

(५५)

तुम भी ऐसे दिन देखोगी कल्याणी !
जब जागेगी मेरी भी पुलकित वाणी ॥
तब मैं भी पूछूँगी वह रोग तुम्हारा।
देखूँगी मैं भी सुख संयोग तुम्हारा ॥

(५६)

झुक पड़ी चपल नयनों में लाज लुनाई।
मानों कमलों में शरच्छटा हो छाई ॥
तुम बड़ी चञ्चला जान गयी मैं तुमको !
बोलो विधु हाँ, पहिचान गयो मैं तुमको !

(५७)

फिर बरस पड़ी उन पर मयङ्क की माया।
रजनी ने भव में नव शृङ्गार जगाया ॥
चटकीं आँगन में पारिजात की कलियाँ।
खिल पड़ीं सुधा से सनी हुई रँगरलियाँ ॥

(५८)

हिल पड़ीं तनिक कुछ झुक अनार की शाखें।
खिल पड़ी तुलसिका डोल खोल कर पाँखें ॥
जल-जल कपूर ने मृदु सुगन्ध फैलाई।
पायी सुन्दरियों ने आमोद बधाई ॥

(५९)

लज्जाशीला विधु को कर प्यार मनाती।
मन में कोमलता का सम्मान जगाती॥
सस्मित सुन्दरता का श्रृङ्गार सजाती।
रत्ना बोली यों स्नेह सुधा बरसाती॥

(६०)

रानी जी! यों मत आप रूठना सीखें।
हो मौन न तीखी समालोचना सीखें॥
देखें अब कितना कौन मौन रह लेगा।
जो जीतेगा बस हार वही सह लेगा॥

(६१)

फूटे सुहास के दो दो सरस फुहारे।
सचमुच विनोद ने अपने प्राण पसारे॥
कुछ अधिक शुभ्र बन विमल चाँदनी छायी।
धरती पर महिमा आज खेलने आयी॥

(६२)

मैं मौन तोड़ कर जीत चुकी हूँ बाजी।
भाभी तुम तो अब हुयीं हार कर राजी॥
हम लोग सोचतीं सदा कातना सीना।
आनन्द मना कर हमें सुहाता जीना॥

(६३)

पर भाभी! भव में भरे प्रपञ्च अनोखे।
जीवन के व्यापक भाव इन्हींमें सोखे॥
थी कल तक जो आनन्द मेघ की माला।
बनती वह भव की आज भयङ्कर ज्वाला॥

(६४)

फिर जीवन का मङ्गल आनन्द कहाँ है?
वह निर्भर अमृतोपम स्वच्छन्द कहाँ है?
वह हृदय देश का चन्द्र अमन्द कहाँ है?
बोलो अपना वह वैभव बन्द कहाँ है?

(६५)

फिर अपने युग की वे सीता सावित्री।
वे वेद भवन की शक्ति तथा गायत्री॥
कुछ अधिक दीप्त हो उठीं पुण्य पा भारी।
नर को नारायण कर देती है नारी॥

(६६)

भाई से पढ़ पढ़ जी भरता न तुम्हारा।
मन मधुर सुधा भी पी भरता न तुम्हारा॥
बोली रत्ना सन्तोष तुम्हें हो कैसे?
तुम तर्क करोगी विकट न ऐसे वैसे॥

(६७)

मैं तर्क करूँगी नहीं, कहे तुम जाओ।
मैं सदा तुम्हारे साथ बहे तुम जाओ॥
भाभी! मुझको सन्तोष न सचमुच आता।
भव को तो बस अनुराग विराग सुहाता॥

(६८)

बोली रत्ना मैंने विचार कर देखा।
जीवन में है सन्निहित विश्व की रेखा॥
पर जीवन की है अति व्यापक परिभाषा।
उसमें रक्षित अमरत्वमयी अभिलाषा॥

(६६)

जीने मरने का भेद विकट है भारी।
इस पर होती है मोहित मति संसारी॥
कब और कहाँ तक उचित विश्व में जीना ?
कब उचित मृत्यु का तिक्त हलाहल पीना॥

(७०)

जो जान चुका वह महाप्राण कहलाता।
वह पुरुष श्रेष्ठ है निखिल भुवन का त्राता॥
वह विश्ववन्द्य वह देव रूप नर मानी।
जिसने जीने मरने की गति पहिचानी॥

(७१)

बस यही ज्ञान ही परमानन्द कहाता।
बस यही विश्व की सुकृति कला मृदुगाता॥
बस इस सुख में सारी सम्पत्ति समायी।
इसमें मानवता की महिमा सब छायी॥

(७२)

जिनके जीवन में जागी जय की गीता।
वे भव के वैभव राम, भगवती साता॥
वे गुण गौरव मर्यादा धाम हमारे।
वे रघुपति राघव राजा राम हमारे॥

(७३)

सुन सरस राम का नाम श्रवण सुखदायी।
अधरों में मृदु मुसकान उमड़कर छायी॥
फिर भाभी के कन्धों पर भार लगाती।
बोली विधु मृदु माधुर्य सुधा बरसाती॥

(७४)

बस एक राम का राग सभी हैं गाते ।
उन पर सारा संसार भूल हैं जाते ॥
भाभी अब तो यह केवल राग पुराना ।
यह सृष्टि भुवन की यौवन घन परिधाना ॥

(७५)

बोली रत्ना तुम बही कहाँ जाती हो ?
किन स्वप्नों के तुम गीत यहाँ गाती हो ?
ये स्वप्न स्वप्न ही सदा रहेंगे सारे ।
बस भव भर के रक्षक हैं राम हमारे ॥

(७६)

धरती धारण करती प्रसाद है जिसका ।
नव शक्ति प्रदाता सिंहनाद है जिसका ॥
भारत की भागीरथी सुधा रस धारा ।
जिसके बल से पावन करती भव सारा ॥

(७७)

घर घर में है आलोक राम का जागा ।
यश पावन पुण्यश्लोक राम का जागा ॥
उनसे है वातावरण धन्य ! यह सारा ।
मानवता का अवतरण धन्य ! यह सारा ॥

(७८)

सन्निहित राम में सर्व राष्ट्र का जीवन ।
जन जन का जीवन ही उनका नव दर्शन ॥
अपनी अपगति है भूल राम को जाना ।
अपना गुरु गौरव अपने हाथ मिटाना ॥

(७९)

किसको नवीनता जीवन में न सुहाती ?
किसको न प्रगति की पुण्य प्रभा है भाती ?
किसको नव यौवन युक्त विकास न प्यारा ?
किसको न चाहिये मधुर सुधा की धारा ?

(८०)

विधु ! इस नवीनता के विकास की काया ।
विकसित होती है पा जीवन की माया ॥
फिर जीवन का तप तेज अतीत हमारा ।
जिस पर निर्भर यौवन सङ्गीत हमारा ॥

(८१)

देखो वसन्त प्रतिवर्ष नया बन आता ।
वह प्रगति प्रेम की दिव्य सुधा बरसाता ॥
उससे जड़ चेतन सभी नयी गति पाते ।
उससे यश के सब गीत सुखी हो गाते ॥

(८२)

सुन्दर बन बन फल फूल लता द्रुम सारे ।
उससे सब होते सुखी नयी धज धारे ॥
पर जिसकी है जड़ मूल नष्ट हो जाती ।
उसमें न वसन्त बहार लौट कर आती ॥

(८३)

बस जीवन का सम्बल साहित्य हमारा ।
राष्ट्रियता के नभ का आदित्य हमारा ॥
जो गौरव है साहित्य राम से पाता ।
उससे सगर्विता भव में भारत माता ॥

(८४)

जिसके आँगन में प्रथम साम रव गूँजा।
जिसमें प्रभात की प्रथम पधारी पूजा॥
जिस वन्द्य भूमि की प्रबल पुण्यमय गाथा।
उन्नत जिसका है स्वाभिमान से माथा॥

(८५)

क्या आज उसे प्राचीन बता हम भूलें!
अपनी महिमा को आप सता हम भूलें!
अपनी ही प्यारी कीर्त्ति लता हम भूलें!
भव में अपना ही आप पता हम भूलें!

(८६)

जिस परम सत्य में है अविचल सुन्दरता।
उसको न काल भी जराजीर्ण कर सकता॥
बस वही सत्य चरितार्थ राम में सारा।
बहती जिसमें कल्याणमयी रस धारा॥

(८७)

फिर कहो राम का राग पुराना कैसे?
वह दिव्य समुज्वल त्याग पुराना कैसे?
वह प्रबल कर्म का याग पुराना कैसे?
वह पावन पुण्य पराग पुराना कैसे?

(८८)

सुन हृदय मधुर सम्वाद परम सरसीला।
गौरव गरिमा से जो भर उठी सुशीला॥
विकसी जिससे यह काव्य कल्पना सारी।
बोली रत्ना से विधुलेखा सुकुमारी॥

(८९)

भाभी ! क्या सचमुच तुम मेरी ही भाभी ।
भगवान सभी को दें मेरी सी भाभी ॥
बस जायें मन मर्यादाधाम हमारे ।
वे रघुपति राघव राजा राम हमारे ॥

(९०)

शशि में ऊँची उठ लसी राम की माया !
रजनी के मन में धँसी राम की माया !
रस की लहरों में हँसी राम की माया !
जल थल अम्बर में बसी राम की माया !

(९१)

यह सुयश राम का परम विशद मनभाया ।
फल फूल विन्ध्य के शिखरों पर लहराया ॥
चल चित्रकूट से दण्डक वन सुखशाली ।
विकसी भारत माता की प्रीति प्रणाली ॥

(९२)

सारी वसुधा में वायु सुगन्धित डोली ।
भव ने अपनी नव स्नेह सम्पदा खोली ॥
नव ज्योतिमती हो चारु चन्द्रिका छायी ।
रघुपति की गौरव गाथा जब लहरायी ॥

(९३)

निकली हिमगिरि से गिरा राम की जय हो !
सागर से भी स्वर फिरा राम की जय हो !
जन बल यौवन से घिरा राम की जय हो !
बोले अगस्त्य, अङ्गिरा राम की जय हो !

(९४)

इस विजय भूति से उमड़ सिन्धु लहराई।
गङ्गा यमुना की इससे हुयी बड़ाई॥
मिल ब्रह्मपुत्र की इसने प्रीति जगाई।
जागी इस जय की सुन्दर स्नेह सगाई॥

(९५)

खिल पड़ी विजय की वरद गोद में रेवा।
विकसी उसमें भारत माता की सेवा॥
थी सुजला गोदावरी उसी की चेरी।
बलि बलि जातीं उस पर कृष्णा कावेरी॥

(९६)

बीतीं सुख से इस भाँति कभी जो रातें।
करतीं मन परम प्रसन्न कभी जो बातें॥
वे ही रातें वे ही बातें सरसीली।
जब हुयीं व्यथा के विपुल भार से ढीली॥

(९७)

तब बहे उन्हीं से दुख के आँसू खारे।
बरसे वियोग के उनसे लाल अँगारे॥
बस अकथ विश्व की वह अटपटी कहानी।
जिसमें जीवन भर जूझी रत्ना रानी॥



चतुर्थ सर्ग

(१)

ऋतुराज के आगम की निधियाँ वसुधा में सुधा बरसाने लगीं।
नव यौवन की छवि से भरी चारु दिशायें सभी मुसकाने लगीं॥
मधु की रुचि रञ्जिनी माधुरी पा मधुपावलियाँ मड़राने लगीं।
अनुराग की बावली हूक लिये पगली पिकें कूक मचाने लगीं॥

(२)

निज स्नेह सुधा का प्रसाद लिये रुकती झुकती जरठाई चली।
नवजीवन की रस राशि लिये महिमावती हो तरुणाई चली॥
यह आज किशोर किशोरियों की छवि की रुचि-सी सुघराई चली।
मनमाने विकास के स्वागत को शिशुओं की सलोनी लुनाई चली॥

(३)

प्रेम का पुण्य प्रदर्शन सा हिलती विटपावलियाँ करने लगीं।
चाह की राह की भावुकता गति पाकर वल्लरियाँ वरने लगीं॥
रोग, वियोग, विराग, व्यथा बढ़ती विहगावलियाँ हरने लगीं।
मञ्जु सुगन्ध की माधुरी से कुसुमावलियाँ गलियाँ भरने लगीं॥

(४)

खेल रहीं रवि की किरणें सरि से, सरसीरुह से, सर नीर से।
मोह रही मनमोहन का मन सुन्दरता रस, रङ्ग, अबीर से॥
स्नेह बिखेर रही ललिता कविता निज मञ्जुल-कुञ्ज कुटीर से।
मादकता मृदुता विकसी इस शीतल मन्द सुगन्ध समीर से॥

(५)

अपनी गुरुता की महानता से कुछ गौरव पाकर विस्तृता हो।
कुछ मञ्जु विकास के वैभव के अनुरूप स्वरूप से संस्कृता हो॥
ऋतुराज के मोद भरे अभिषेक में सुन्दरता से पुरस्कृता हो।
अनुराग भरी कवि की प्रतिभा रस ढालती आज अलंकृता हो॥

(६)

भ्रमरों के लिये सुमनों ने लुटा अपना मधु और पराग दिया।
नदियों ने पयोधि के मङ्गल में ममता का अलौकिक त्याग किया॥
कमनीय विकास से पूर्ण वनों में अतीत ने आज विराग लिया।
अपने प्रिय के चरणों में चढ़ा कवि ने अपना अनुराग दिया॥

(७)

कवि प्रसन्न हो! कवि प्रसन्न हो! तू अनन्त सुख शाली।
तेरे प्रियतम को अङ्गीकृत तेरी प्रीति प्रणाली॥
उठ अब तो आगे बढ़ अपने चिर परिचित स्वर गा दे।
खुल खुल कर जीवन यौवन के अर्जित भाव जगा दे॥

(८)

यह वसन्त का सस्मित यौवन यह विकास की माया।
सरस प्रगति की यह सुन्दर गति जिसमें प्यार समाया॥
मधुर प्रेम का यह आकर्षण यह जीवन मतवाला।
यह रस रङ्ग अलौकिक सुन्दर मेल मिलाप निराला॥

(९)

आज विश्व ने इसके पथ पर अपने नयन बिछाये।
आज विभव ने उमड़ उमड़ कर इसके गुण गण गाये॥
सबके हृदयों में सुन्दर बन सरसी शान्ति ललामा।
आज विश्व के मन मन्दिर में बरसी छवि अभिरामा॥

(१०)

पुरुषसिंह मय आज जनार्दन को जनता ने पाया।
आज विश्व ने सत्याग्रह का विजय केतु फहराया॥
सरस सत्य की भक्ति भावना आज किलक कर खेली।
पौरुष ने अनुपम साहस की माया आज सकेली॥

(११)

मिटा आज जड़ता का शासन मिटी दम्भ की लीला।
नष्ट हुआ अविवेक ज्ञान का जागा भानु रसीला॥
आज दुराग्रह की आँधी से सारी मुक्त दिशायें।
जीवन की माया में जागीं अलबेली आशायें॥

(१२)

बही आज माँ के अञ्चल से मधुर दूध की धारा।
आज स्नेह की वरद राशि ने स्वर्ण सुहास पसारा॥
सरसा शैशव भव में लेकर अपनी राम कहानी।
बरसी अब प्रह्लाद कथा की कीर्ति मधुर मनमानी॥

(१३)

आज आत्मबल के वैभव से प्रबल बाहुबल हारा।
निखिल विश्व में बही प्रेम के पुण्योदक की धारा॥
आज कर्म पर दृढ़ होने की जागी वृत्ति निराली।
स्वावलम्ब की सुख से डोली घर घर प्रीति प्रणाली॥

(१४)

विकसित आज परिश्रम भव में कीर्ति लिये मनमानी।
खेतों में छायी सुखदायी मङ्गलमूल किसानी॥
कर्मयोग के पुण्यभोग का वसुधा मे सुख छाया।
जीवन जागृति का बलवर्द्धक गीत विश्व ने गाया॥

(१५)

पके खेत अपनी महिमा की माया आज लुटाते।
आज कृषक धरती माता के गीत हुलसकर गाते॥
मीठे रस की भरी भरायी घर में गागर आयी।
गोरस की गोधन की घर घर छायी कीर्ति सुहायी॥

(१६)

उत्सुक होकर आज बेटियाँ करतीं घर घर चोटी।
मचल मचल कर माँगी हरि ने घर घर माखन रोटी॥
आज जनक जननी ने घर घर अपने भाग्य सवाँरे।
आज भुवन में मानव मन ने अपने पुण्य पसारे॥

(१७)

पुण्य पर्व की वर विभूति सी वायु हुलसकर डोली।
बन बागों के भाग्य जगाती विहग वाहिनी बोली॥
कोमल नव पल्लव प्राणों में मृदु माधुर्य जगाते।
जड़ चेतन सब दया मया के सरस गीत हैं गाते॥

(१८)

कहीं मृदुल फूलों ने अपना स्वर्ण सुहास बिखेरा।
कहीं फलों ने सुख से खोला अपना वरद बसेरा॥
पाकर स्वर्ण सुयोग सुशोभित गिरि कानन छवि शाली।
यौवन ने भव के वैभव में मधुर मोहिनी डाली॥

(१६)

फूलों का मुख चूम चूम कर चञ्चरीक मड़राते।
ललित लताओं को झुक झुक कर द्रुम दल कण्ठ लगाते॥
प्रकृति सुन्दरी रति रानी से आज मिली मुसकाती।
उतरी छवि कवि के जीवन में मञ्जुल मङ्गल गाती॥

(२०)

आज प्रभाकर ने प्राची में विलस विकास बिखेरा।
आज अनोखी गति से आया सुन्दर सुखद सबेरा॥
आज परम अद्भुत रागों से थीं रमणीय दिशायें।
आज अनोखी मादकता से डोलीं तरु लतिकायें॥

(२१)

आज विकास वरद बन आया मधुर मिलाप जगाने।
पहुँचा आज अतीत अलौकिक निज इतिहास लिखाने॥
आज कला की कञ्चन काया घर घर गयी सवाँरी।
आज भुवन में वैभव छाया सुखी हुये नर नारी॥

(२२)

आज उसी माधव ने मधुवन में फिर वेणु बजायी।
बजीं मृदङ्ग झाँझ ढफ ढोलें घर घर में मनभायी॥
प्रीति रीति की मधुर भावना ने अपनी छवि खोली।
जन जन की छवि से ध्वनि बरसी होली! होली! होली!

(२३)

आज षोडशी होकर उतरी भव में प्रकृति प्रवीणा।
गूँज उठी जल थल अम्बर में कुसुमाकर की वीणा॥
मृदु विकास की मञ्जुल माया फूट पड़ी अलबेली।
वसुधा के प्रति पुण्य भाग में सुन्दरता खुल खेली॥

(२४)

जिसके बल ने अलक्षेन्द्र की दुर्दम गति को रोका।
तक्षशिला का वैभव जिसने भर भर नयन विलोका॥
उस उत्तर पश्चिम सीमा के महा प्रबल नर नारी।
जीवन के इस पुण्य पर्व के कारण हुये सुखारी॥

(२५)

जहाँ उड़ी थी सूर्य वंश की मञ्जुल कीर्ति पताका।
जिसके यौवन के वैभव से दूध सफल था माँ का॥
झेलम, व्यास, चिनाब जहाँ पर जिसमें सतलज, रावी।
उस वसुधा की मङ्गल गति से झूम उठे पञ्जाबी॥

(२६)

वह काश्मीर विमोहित जिस पर कला और सुन्दरता।
धरती का नन्दन वन पावन जिसमें चारु रुचिरता॥
जब उसमें भर ली सुन्दरियों ने अबीर की झोली।
रति रानी तब रस बस नाची होली! होली! होली!

(२७)

जहाँ क्षत्रियों के गौरव से तृप्त हुयी रण-चण्डी।
जिसकी मर्यादा के रक्षक शक्ति समेत त्रिदण्डी॥
जिसकी रज में खेली सुख से सती पद्मिनी रानी।
आज सुरक्षित वह प्रताप की पुण्य-भूमि सुखदानी॥

(२८)

कला कर्म की जुड़ी जहाँ पर हिल मिल सुन्दर जोड़ी।
जहाँ हृदय ने नीरसता की हीन वासना छोड़ी॥
उस गुर्जर में जागी सुन्दरियों की मृदु अभिलाषा।
जिसमें रक्षित मानवता की मर्म भरी परिभाषा॥

(२९)

गर्व भरे जिसके गिरि कानन निर्मल सर सरितायें।
जिसमें रक्षित हैं पौरुष की पुण्यमयी गाथायें॥
महाराष्ट्र की वन्द्य भूमि की आज सुछवि अभिरामा।
खोल रही थी स्नेह सँजोती सुख की राशि ललामा॥

(३०)

जिस धरती ने सीतापति के यश में प्राण पसारे।
जहाँ सिन्धु ने भारत माता के पद पद्म पखारे॥
जिस केरल में परशुराम की गौरव गाथा जागी।
उसको ऋतुपति ने दे डाली सुन्दरता मुँह माँगी॥

(३१)

जिसकी मङ्गल गाथा बनकर मलयानिल लहराता।
जिसके सुरभित चन्दन बन से भूषित भारत माता॥
जो मति की गति की सङ्गति सी पावन लोक ललामा।
उस कर्नाटक की वसुधा थी आज महा सुखधामा॥

(३२)

जहाँ आज भी सुख से रक्षित वाणी की मर्यादा।
जहाँ आज भी ज्ञान ध्यान से जीवन यौवन सादा॥
उस तामिल की पुण्य-भूमि में वरद विकास जगाती।
डोली कुसुमाकर की माया हास विलास लुटाती॥

(३३)

गाती गोदावरी जहाँ पर सुख की सुन्दर गाथा।
जिसके कारण भारत माता का ऊँचा है माथा॥
आज आन्ध्र के दिव्य देश में वही मधुर रसधारा।
जीवन के आनन्द विभव ने पुण्यालोक पसारा॥

(३४)

जिस उत्कल में वासुदेव की पुण्यपुरी की माया।
मानवता के महामन्त्र का जिसने योग जगाया॥
उसमें आज सुरञ्जित प्रभु के श्रीमस्तक का हीरा।
नाची जिस पर हृदयवार कर सती शिरोमणि मीरा॥

(३५)

देवों ने भी जिसके सुख से वैभव के बर माँगे।
जहाँ भारती की माया के भोग भरे सुख जागे॥
आज वहाँ राधा माधव का छायी कीर्ति सुहायी।
बङ्गभूमि ने देखो घर घर होली आज मचायी॥

(३६)

रमे जहाँ के गहन वनों में बनकर परम उदासी।
परम सुन्दरी पाञ्चाली के प्रिय पाण्डव वनवासी॥
कामरूप के उसी देश में आज नयी गति डोली।
जागी कामाख्या की माया होली! होली! होली!

(३७)

सीता के कोमल चरणों ने जिसके मान बढ़ाये।
अतिथि राम सा पाकर जिसने अपने भाग्य जगाये॥
उस बिहार में जहाँ बुद्ध की कीर्ति बसी सुकुमारी।
ऋतुपति ने होली की माया घर घर आज पसारी॥

(३८)

जहाँ बिन्ध्य ने अपने यश के वर वरदान बिखेरे।
जिसके अञ्चल में फैले थे ऋषि अगस्त्य के डेरे॥
जिसमें अङ्कित वैदेही के चारु चरित्र सुहाये।
मध्यदेश के महाभाग ने राग रसीले गाये॥

(३६)

जिसमें अब तक दमयन्ती की सुन्दरता लहराती।
जिसके कारण भारत माता पुण्यमयी कहलाती॥
जो कपास की रजत राशि से धरती पर परिधाना।
उस विदर्भ में होली छायी बनकर स्नेह निधाना॥

(४०)

जहाँ राम की घर घर छायी शैशव की मृदु लीला।
जहाँ कृष्ण की भाव भूमि से जीवन योग रसीला॥
वहाँ सूर की सुघर भारती बन जन जीवन बोली।
राम कृष्ण की पुण्यभूमि में होली! होली! होली!

(४१)

आज स्नेह की दिव्य ज्योति से द्वेष दुखी हो ऊबा।
प्रेम पयोनिधि की लहरों में भेदभाव भी डूबा॥
भव के परम प्रसन्न विभव में निधि वसन्त की डोली।
मुक्तकण्ठ हो जन जन बोले होली! होली! होली!

(४२)

सबको मनभाये ब्रजवल्लभ गोवर्द्धन गिरिधारी।
सबको भायीं परम सुशीला सुन्दर कीर्तिकुमारी॥
आज अबीर गुलाल उड़ाती वायु हुलस कर डोली।
गली गली घर घर रँग बरसा होली! होली! होली!

(४३

धूलि धूसरित धूल उड़ाती थी शिशुता सुकुमारी।
तरुणों के हाथों में सोही रङ्ग भरी पिचकारी॥
बूढ़ों ने भी अब रँग रञ्जित मुँह से पान चबाये।
रास रङ्ग के भाव उमड़कर सारे भव में छाये।

(४४)

माँ ने अपने मनमोहन को आँखों भर भर देखा।
आज पिता ने अपनी बेटी का रस निर्भर देखा॥
भाई बहिनों ने मिल जुल कर रस की गागर घोली।
आयी घर घर लिये बधायी होली! होली! होली!

(४५)

आज स्नेह की महा लग्न में विकसी सजग विकलता।
उमड़ी आज सुछवि अभिरामा छायी नव कोमलता॥
माँ बहिनों ने आज सजायी घर घर अक्षत रोली।
दशों दिशायें मङ्गल गातीं होली! होली! होली!

(४६)

पनप उठी तरु लतिकाओं में नूतनता की माया।
नयी बान से नये गान ले मन मानस लहराया॥
धरती ने अपनी सुन्दरता परम मुग्ध हो खोली।
कण कण से मीठी ध्वनि फूटी होली! होली! होली!

(४७)

नाचे विहग वनों में घर घर नाचे लाल छबीले।
मधुर आम की मञ्जरियों से बरसे राग रसीले॥
डाल डाल पर जब मतवाली काली कोयल बोली।
दशों दिशायें रस में डूबीं होली! होली! होली!

(४८)

देवर के कुरते की काया रँग कर गयी सवाँरी।
भींग गयी प्यारी भाभी की धुली धुलायी सारी॥
ननँद भावजें मिलीं परस्पर ले गुलाल की झोली।
घर के आँगन में रस ढरका होली! होली! होली!

(४६)

निकली फाग रङ्ग रस माती बरस पड़ी छवि सारी।
साथी ने साथी से पूछा कहाँ गयी पिचकारी?
उमड़ी द्वार द्वार पर झुककर सुख की सुन्दर धारा।
सखी सखी से बोली देखें कैसा रङ्ग तुम्हारा?

(५०)

देश, वेष, आवेश गुलाबी सुख विस्तार गुलाबी।
हास, विलास, निवास, पवन का पुण्य प्रसार गुलाबी॥
हाव, भाव, रस, रास गुलाबी बही बहार गुलाबी।
आज गुलाबी मादकता से सब संसार गुलाबी॥

(५१)

गमकीं ढोलें झमकीं झम-झम-झम झाँझें करतालें।
जगीं अबीर गुलाल उड़ाती रास रङ्ग की चालें॥
हृदय हृदय में खुले स्नेह के सुन्दर सुखद बसेरे।
जब लोगों ने गाया मधुवन तुम कस रहत हरे! रे!

(५२)

गूँज उठी घर घर स्वागत पा सदानन्द की वाणी।
घर घर छायी राधा हरि की पुण्य प्रभा कल्याणी॥
रँग गुलाल की चहल पहल में फैली घर घर लाली।
घर घर में केसर चन्दन की महक उठी मतवाली॥

(५३)

तन भी महके, मन भी महके महके भाव रँगीले।
जीवन को अनुरञ्जित करके सरसे राग रसीले॥
लौह लेखनी कैसे लिख ले इस सुयोग की माया?
जिसका नव यश सारे भव ने कोटि स्वरों से गाया॥

(५४)

इस जीवन के पुण्य पर्व से अपना मान बढ़ाती।
अपने घर का परम स्वच्छ जो अन्तर्कक्ष जगाती॥
जिसकी सुन्दरता ने कवि के लोचन सफल बनाये।
जिसकी इस मङ्गल गाथा से भव ने भाग्य जगाये॥

(५५)

जिसके यौवन के अञ्चल की पाकर मञ्जुल माया।
नारी के गौरव ने भव में मधुरामृत बरसाया॥
अपने सरस हृदय में मङ्गलमय मातृत्व जगाये।
सर्व सिद्धि की पुण्य पूर्ति सी सुख की सृष्टि बसाये।

(५६)

सुमन संकुलित नव लतिका सी भार भरी छविशीला।
बिगत निशा के पूर्ण इन्दु सी जिसकी मञ्जुल लीला॥
मधुर काव्य की मृदुल सिद्धि सी जिसकी कञ्चन काया।
जिसका वैभव पाकर मोही वर विकास की माया॥

(५७)

विकसी निराभरण सुन्दरता पा गुरुता रस राती।
काजल सी काली सारी थी जिसका मान बढ़ाती॥
अन्धकार में दीप शिखा सी जागी आज गुराई।
बन्द वरुण के जलद कोश में मानों ललित लुनाई॥

(५८)

पुण्य पराग भरे पङ्कज से लोचन लोल रसीले।
गर्भ भार की पूर्ण वृद्धि से उलझ हुये कुछ ढीले॥
मुख मयङ्क में पीली बनकर सुख की आशा छायी।
अलस भाव से विलस रही थी मूर्तिमती सुघरायी॥

(५६)

उमड़ा उर का रक्त दूध बन लिये स्नेह की माया।
यौवन के पावन वैभव ने अपना पुण्य जगाया॥
कञ्चन कलश सुधा से भर भर सरसी आज जवानी।
बरसी मृदु मातृत्व समेटे सुन्दरता सुखदानी॥

(६०)

किसी ग्रन्थ के शुभ प्रसङ्ग में अपना ध्यान लगाये।
बिछे कुशासन की तोशक पर अपना भार झुकाये॥
यह रत्ना अपने प्रियतम के पुण्य पाठ की गीता।
भाव भूमि के नन्दन बन की विकसित छवि परिणीता॥

(६१)

किसी सुपरिचित ध्वनि से चौंकी सम्भ्रम सती सुशीला।
उसके मुख पङ्कज में छायी सरस राग की लीला॥
तनिक सम्हलकर उसने अपने लोचन चपल उठाये।
मानों सुन्दरता ने सुन्दर सुख संयोग बिछाये॥

(६२)

मिले रेवती से जैसे हरि सुन्दर सरल सनेही।
चित्रकूट में यथा भरत को पा पुलकी बैदेही॥
त्यों रत्ना श्रीहर्ष -परस्पर कोमल भाव जगाते।
मिले फाग की पुण्य पर्व में स्नेह सुधा बरसाते॥

(६३)

"इस सुपर्व ने मेरे जीवन में नव प्राण पसारे
धन्य भाग्य जो कष्ट उठाकर इतना आप पधारे"
यह कह रत्ना उठ देवर का स्वागत करती बोली।
धन्य होगयी आज आपको पाकर मेरी होली॥

(६४)

बैठें मैं भी खड़ी हर्ष में अपना भाग बटाने।
लगें न कृपया आप इसे भी कहीं निषिद्ध बताने॥
परम मङ्गला रत्ना सारा सुख सकेल कर जी का।
देवर के मस्तक पर झुककर लगी लगाने टीका॥

(६५)

तब बोले श्रीहर्ष गयी जब घर घर फाग सवाँरी।
क्या ली थी बस इसी सुदिन को तुमने ऐसी सारी ?
भव में आज प्रकृति ने पहिना रङ्ग बिरङ्गा बाना।
पर भाभी ! तुम आज खड़ी हो परम कृष्ण परिधाना !

(६६)

बोली रत्ना सदा आपकी मैंने सुरुचि निबाही।
देवर ! कर कर लेने दो मुझको आज तनिक मन चाही॥
हँस बोले श्रीहर्ष नहीं यह केवल पर्व तुम्हारी।
भाभी ! तुमने इस सारी से वात बिगाड़ी सारी॥

(६७)

अजी ! आपको उजली सारी मुझसे अधिक सुहाती !
एक नहीं मैं कई तनिक बस ठहरें लेकर आती॥
यह कह रत्ना कई दुग्ध सी धवल सारियाँ लायी।
अपने प्रियमम की परिणीता गीता फिर मुसकायी॥

(६८)

बोली अपने इन हाथों की सरस साधना द्वारा।
मैंने रँग ही नहीं अपका यह घर बार सवाँरा॥
ये मेरे तन से भी सुन्दर धुली सारियाँ सारी।
आयीं अपना हृदय रँगाने उठें आपकी बारी॥

(६९)

आज आपका यह सारा घर एक रसानशाला।
पुण्यपर्व के यश को मैंने आज सरस कर डाला ॥
मेरे मन की बात बताते भरे पात्र ये सारे।
मुझे सुहाते नहीं तनिक भी वे गोरे! बनजारे!

(७०)

इसीलिये क्या आज निकाली इतनी काली सारी?
"यही सही" कह कर मुसकायी फिर रत्ना सुकुमारी ॥
इसी सुरुचि की मुझे चाहिये तो फिर शीतल छाया।
यह कह देवर ने भाभी पर जैसा रँग ढरकाया ॥

(७१)

उसी रङ्ग में रँगी विश्व की स्नेह भरी परिभाषा।
उसी रङ्ग में रँगी विश्व की कोमलतम अभिलाषा ॥
उसी रङ्ग में हँसी भुवन में ऋतु वन्सत सुखशीला।
उसी रङ्ग में बसी विश्व की पावन यौवन लीला ॥

(७२)

इस सुयोग से बिखरी जिनके सरल हृदय की वाणी।
इस सुपर्व की छवि सी जिनकी पुण्य प्रभा कल्याणी ॥
वे जीवन के मङ्गल गायक यौवन के वरदानी।
जिनका उठकर आदर करते सादर शम्भु भवानी ॥

(७३)

काव्य कला के सरल अर्थ सी जिनकी मङ्गल गीता।
जिनकी गुरु गौरव गाथा थी घर घर में परिणीता ॥
बाहर से बस अपने घर में वे श्रीपण्डित आये।
देवर भाभी की रस-धारा ने नव प्राण जगाये ॥

(७४)

रत्ना बोली "मुझे भिगोने तुमने इनको भेजा"
तुरत प्रिया से "हाँ" कह प्रिय ने जो शृङ्गार सहेजा ॥
हँसती अब भी उसकी रुचि में रुचिर रास रसशीला।
बसती अब भी उसमें भव की पुण्यमयी नव लीला ॥

(७५)

"मेरे मन से इनकी रुचि में भीग जाय भव सारा"
यह कह कवि ने युवक बन्धु को पुलक सगर्व निहारा ॥
वे स्वदेश के तरुण त्याग तप यह जननी की माया।
बल यौवन में कला सुशोभित मानों कञ्चन काया ॥

(७६)

जिनके यौवन में बल भरती थी स्वदेश की लीला।
राम-कृष्ण के जीवन-रस से जिनका हृदय रसीला ॥
जिनके मन में भरी बुद्ध की मञ्जुल मङ्गल वाणी।
जिनके बल से भारत माता कीर्तिमयी कल्याणी ॥

(७७)

जिनकी सुन्दर रुचि में गङ्गा का गौरव लहराता।
जिनका अन्तर सामवेद के स्वर सङ्गीत जगाता ॥
जिनके मन में नव जीवन के भाव हुलसकर डोले।
वे श्रीहर्ष विनम्र सरल निज वरद बन्धु से बोले ॥

(७८)

भइय्या केवल सबल आपकी यह है ममता माया।
जिसने जीवन का रस देकर मुझको सुखी बनाया ॥
किन्तु टिके कुछ सरस भावनामय यह सृष्टि हमारी।
सजग भाव से कभी आपने क्या यह बात विचारी ?

(७६)

बोले श्रीपण्डित, न बुद्धि का मैं वञ्चक व्यवसायी।
प्रबल भावना सञ्चित मेरी जीवन ज्योति कमायी॥
मुझे सदा ही प्राणों से भी प्यारी आर्ष प्रणाली।
मैंने उसके ही बल अपनी कोमलता प्रतिपाली॥

(८०)

बोले यह श्रीहर्ष, किन्तु यह बात न आप बिसारें।
झूल रही हैं आज गलों पर रक्त सनी तलवारें॥
आज हमारी पुण्य-भूमि पर जैसा सङ्कट छाया।
उसने हमसी सजग जाति को भी निस्तेज बनाया॥

(८१)

आज राज्य का लोभ भुवन में भीषण बनकर छाया।
मानव को मानव ने दानव बनकर आज सताया॥
आज विश्व में धधक रही हैं रौरव रक्त चितायें।
जिनकी आहुति परम प्रताड़ित बाल वृद्ध बनितायें॥

(८२)

आज प्रबल दुर्दान्त दमन से शासन सत्ताशाली।
मूक व्यथा ही दीन प्रजा में भरती बोध प्रणाली॥
भव में पाती काक वृत्ति ही सादर प्राण प्रतिष्ठा।
क्यों कर जागे आर्ष वृत्ति की फिर घर घर में निष्ठा!

(८३)

धन धरती पर धर्म बेचते लोग न आज अघाते।
आज सहज सब तपस्तेज का गुण गौरव ठुकराते॥
बस उमड़ा पाखण्ड फूलकर फली फूट की माया।
कायरता ने बस प्राणों का केवल लोभ जगाया॥

(८९)

वही प्रेरणा हमें चाहिये जिसमें हार न होवे।
वही हमारा ध्येय कि जो फिर सिर का भार न होवे॥
वह जीवन हो जहाँ स्वार्थ का बस सञ्चार न होवे।
फैले वह सुख जिसमें कष्टों का संसार न होवे॥

(९०)

यदि हम अपनी आँखें खोलें अपनी ओर निहारें।
यदि हम अपनी मानवता में नव उल्लास पसारें॥
यदि हम जीवन में बरसा दें सुखद स्नेह की धारा।
तो निश्चय ही आज मिटेगा यह दुख दोष हमारा॥

(९१)

तो क्या भारत में जागेगा फिर पुरुषों का पानी?
बोली सरस प्रसङ्ग जगाती सस्मित रत्ना रानी॥
उस पौरुष की सफल बनेगी क्योंकर गौरव गाथा।
जिसके कारण हर दम झुकता है जननी का माथा॥

(९२)

एकाङ्गी पौरुष की कैसे सफल बने अभिलाषा!
आज ज्ञान की व्यर्थ विश्व में पाठ भ्रष्ट परिभाषा॥
यदि हम कभी न आँखें खोलें तो क्यों जीवन जागे?
केवल औषधि के दर्शन से क्यों विषमज्वर भागे?

(९३)

तुम पुरुषों ने ही तो भव का जीवन भार बनाया।
तुम पुरुषों ने ही तो जीवन को व्यापार बनाया॥
तुम पुरुषों ने ही भव भर में भोग बिहार जगाये।
तुम पुरुषों ने ही मनमाने सुख संसार बसाये॥

(६४)

जब तक जागी इस भारत की स्नेह सम्पदा नारी।
तब तक जागी शक्ति स्वरूपा जीवन-ज्योति हमारी॥
जब से तुम पुरुषों ने अपना मन सङ्कीर्ण बनाया।
तब से बस मानव जीवन ने यह दुर्भाग्य जगाया॥

(६५)

जिस वैदिक युग के गुण गाते आज न लोग अघाते।
जिस वर्णाश्रम की महिमा सब अब तक जपते जाते॥
बोलो, क्या उसकी नारी थी ऐसी ही कृशकाया?
जिसको आज असूर्यम्पश्या भव ने रीम बनाया॥

(६६)

आज हमारे हाड़ माँस से सबल खेलते खेल।
आज हमें घर के आँगन में रखते सबल सकेल॥
जिसमें बन्दी अपना आधा परम तरुण आवेश।
कैसे भव का भार सम्हाले दर्प दलित वह देश!

(६७)

बोले सुन श्रीहर्ष कि भइय्या! कहें आप जो चाहें।
पर यह सब तो हैं भारत की दारुण कष्ट कराहें॥
हमने अपने ही पैरों में तीखे शूल चुभोये।
हमने अपने ही हाथों से ये काँटे हैं बोये॥

(६८)

भइय्या! कितनी हृदय वेधिनी यह माता की पीड़ा!
भस्म हुई हरदम बहिनों की इस भव में रस क्रीड़ा॥
बहू बेटियों के यौवन का घर-घर में वध होता।
बन्धनमय संसार हमारा तड़प-तड़प कर रोता॥

(९९)

बन्द पड़ी गूँगे ग्रन्थों में आज हमारी वाणी।
आज वन्दिनी शक्ति स्वरूपा गर्व भरी क्षत्राणी॥
भारत लक्ष्मी की मुरझायी मञ्जुल कञ्चन काया।
महिमामय मातृत्व गया है बस दूर दूर ठुकराया॥

(१००)

श्रीपण्डित बोले फिर, तुमने व्याधि न यह पहिचानी।
किन्तु तुम्हारी इस मति गति की महिमा है सुखदानी॥
इस जीवन के वर विकास को बन्धन बाँध न पाता।
मानव को भव में अपकर्षण बन विकराल सताता॥

(१०१)

मूल रोग तो है जीवन का हममें लोभ समाया।
हमने भव को विपुल भोग का केवल योग बनाया॥
यदि जीवन में अपने गौरव की जग जाय तपस्या।
क्षण में सुलझे तब तो अपनी सारी गूढ़ समस्या॥

(१०२)

पाकर कुछ सामयिक कठिनता सङ्कट में पड़ भारी।
निश्चय आज हुयी दयनीया कोमल काया नारी॥
यद्यपि इस विद्रोह वृत्ति को मैं न उचित कह पाता।
उसका सरल बोध पर मुझमें एक व्यथा भर जाता॥

(१०३)

पुरुष प्रकृति की प्रिय प्रवृत्ति के दर्पण हैं नर नारी।
उनकी मङ्गल गति से रहती सस्मित धरती सारी॥
अनुचित है इस भव में घर-घर यह विद्रोह जगाना।
परम स्नेह की पुण्य प्रगति में अनुचित क्षोभ मचाना॥

(१०४)

हमने नारी के जीवन से बस सङ्घर्ष बचाये।
हमने उसकी भाव भूमि में तन मन प्राण चढ़ाये॥
हमने नारी पर निवछावर की भव की मर्यादा।
हमने उस पर इस जीवन का रूखा भार न लादा॥

(१०५)

पति के इन अनुपम तर्कों ने जिसमें हास पसारा।
विजयश्री ने जिसे प्रफुल्लित होकर आज निहारा॥
जिसने जीवन में न हार की कोई बात विचारी।
नव पङ्कज सी खिलकर बोली वह रत्ना सुकुमारी॥

(१०६)

मैं न सुनूँगी पुरुषों की वे सब उत्सर्ग कथायें।
नल, दुष्यन्त, भीष्म की मुझको ज्ञात सरस गाथायें॥
वे पाञ्चाली के सतीत्व पर बलि बलि जाने वाले।
मुझे ज्ञात सब पुरुष परस्पर प्राण खपाने वाले॥

(१०७)

भारत की नारी ने सीता का आदर्श निबाहा।
पर पुरुषों ने किया राम का प्रबल पराक्रम स्वाहा॥
भरी देश के भाग्यवृत्त में जो निकृष्ट कायरता।
उसका प्रतिफल आज हमारा यह जीवन है भरता॥

(१०८)

इसी भाग्य की करुण कथा सी आज विश्व की नारी।
इसी भाग्य की दारुण गाथा गाती कविता सारी॥
इसी भाग्य की लीला उठकर निर्बलता फैलाती।
इसी भाग्य की विकल विषमता भव में आग लगाती॥

(१०६)

नारी ने नारी जीवन की गायी यह मर्य्यादा !
नारी ने बस केवल नर पर अपना भार न लादा !
नारी भव की स्नेह साधना नारी तरुण तपस्या !
नारी नर की अन्तर्व्यापी गति की करुण समस्या !

(४)

पक्षियों के झुण्ड भी चैतन्यता से चहचहाये।
झूम झुक लतिका द्रुमों के दल वनों में लहलहाये॥
वाटिकाओं में हृदय का राग भर भर फूल फूले।
आज मधुकर स्नेह से उन्मत्त होकर मान भूले॥

(५)

आज भव के मुग्ध जीवन ने हुलस नव प्राण पाये।
आज जागृति से प्रबल बल प्राप्त कर बलिदान छाये॥
आज उमड़े गीत सुन्दर आज घर घर प्यार छाया।
खेलती अविराम नव शृङ्गार शोभित लोकमाया॥

(६)

खिल उठा कवि के अजिर में आज बचपन हास लेकर।
मच गयी घर में अनोखी धूम मृदु उल्लास लेकर॥
आज विह्वल स्नेह से—सङ्कोच से दबती दबाती।
क्षीण तन उत्फुल्ल मन से माँ बनी रत्ना लजाती॥

(७)

फूल की थाली प्रथम बस मुक्त स्वर से झनझनायी।
बज उठी फिर द्वार पर नव हर्ष भर मङ्गल बधायी॥
नूपुरों की चारु ध्वनि से आज सारा घर रसीला।
आज कुल बधुयें पधारीं स्नेह की ले मञ्जु लीला॥

(८)

आज सुन्दरियाँ बनीं सौन्दर्य की प्रति-मूर्ति सारी।
आज उनके मोद में आमोद ने आभा पसारी॥
फूटती उनकी सुछवि से स्नेह की जो पुण्य-गाथा।
था उसी से विश्व में उत्सर्ग का उत्तुङ्ग माथा॥

(९)

देव वधुओं सी परम वरदायिनी माङ्गल्यरूपा।
धन्य भारत भूमि की वे देवियाँ शक्तिस्वरूपा॥
झुक पड़ी जिन पर भुवन की मुग्ध हो लावण्यमाया।
प्राप्त कर जिनकी कृपा की कोर नव शृङ्गार छाया॥

(१०)

नव्य नाना रङ्ग की वे सारियों में सोहती थीं।
चञ्चला सी चञ्चला बन वे भुवन को मोहती थीं॥
देह के आभूषणों की चारु छवि को भी दबाती।
वे दिखीं कवि के भवन में रूप की शोभा जगाती॥

(११)

वृद्ध मातायें पुलक कर मुक्त आशीर्वाद देतीं।
बालिकायें आज भइय्या का सुदर्शन लाभ लेतीं॥
तरुणियों ने मिल मिलाकर सोहरों का राग छेड़ा।
होगया सङ्गीत का उनके स्वरों से मुक्त बेड़ा॥

(१२)

कल्पना फल फूल जिसके सामने प्रत्यक्ष भूली।
ले परम उल्लास जिसकी भावना प्रत्यक्ष फूली॥
नयन भर भर कर कि जिसने सुख सुमन सा लाल देखा।
आज भाभी के निकट वह सोहती थी चन्द्रलेखा॥

(१३)

जीर्ण पर अति स्वच्छ वस्त्रों से लिपट कर कुलबुलाता।
चन्द्रलेखा थी लिए वह फूल सा शिशु चुलबुलाता॥
अङ्क में उसके पड़ा नव जात शिशु मन मोहता था।
ज्यों कला की गोद में शृङ्गार शैशव सोहता था॥

(४)

पक्षियों के झुण्ड भी चैतन्यता से चहचहाये।
झूम झुक लतिका द्रुमों के दल वनों में लहलहाये॥
वाटिकाओं में हृदय का राग भर भर फूल फूले।
आज मधुकर स्नेह से उन्मत्त होकर मान भूले॥

(५)

आज भव के मुग्ध जीवन ने हुलस नव प्राण पाये।
आज जागृति से प्रबल बल प्राप्त कर बलिदान छाये॥
आज उमड़े गीत सुन्दर आज घर घर प्यार छाया।
खेलती अविराम नव शृङ्गार शोभित लोकमाया॥

(६)

खिल उठा कवि के अजिर में आज बचपन हास लेकर।
मच गयी घर में अनोखी धूम मृदु उल्लास लेकर॥
आज विह्वल स्नेह से—सङ्कोच से दबती दबाती।
क्षीण तन उत्फुल्ल मन से माँ बनी रत्ना लजाती॥

(७)

फूल की थाली प्रथम बस मुक्त स्वर से झनझनायी।
बज उठी फिर द्वार पर नव हर्ष भर मङ्गल बधायी॥
नूपुरों की चारु ध्वनि से आज सारा घर रसीला।
आज कुल बधुयें पधारीं स्नेह की ले मञ्जु लीला॥

(८)

आज सुन्दरियाँ बनीं सौन्दर्य की प्रति-मूर्ति सारी।
आज उनके मोद में आमोद ने आभा पसारी॥
फूटती उनकी सुछबि से स्नेह की जो पुण्य-गाथा।
था उसी से विश्व में उत्सर्ग का उत्तुङ्ग माथा॥

(९)

देव बधुओं सी परम वरदायिनी माङ्गल्यरूपा।
वन्य भारत भूमि की वे देवियाँ शक्तिस्वरूपा॥
झुक पड़ी जिन पर भुवन की मुग्ध हो लावण्यमाया।
प्राप्त कर जिनकी कृपा की कोर नव शृङ्गार छाया॥

(१०)

नव्य नाना रङ्ग की वे सारियों में सोहती थीं।
चञ्चला सी चञ्चला बन वे भुवन को मोहती थीं॥
देह के आभूषणों की चारु छवि को भी दबाती।
वे दिखीं कवि के भवन में रूप की शोभा जगाती॥

(११)

वृद्ध मातायें पुलक कर मुक्त आशीर्वाद देतीं।
बालिकायें आज भइय्या का सुदर्शन लाभ लेतीं॥
तरुणियों ने मिल मिलाकर सोहरों का राग छेड़ा।
होगया सङ्गीत का उनके स्वरों से मुक्त बेड़ा॥

(१२)

कल्पना फल फूल जिसके सामने प्रत्यक्ष झूली।
ले परम उल्लास जिसकी भावना प्रत्यक्ष फूली॥
नयन भर भर कर कि जिसने सुख सुमन सा लाल देखा।
आज भाभी के निकट वह सोहती थी चन्द्रलेखा॥

(१३)

जीर्ण पर अति स्वच्छ वस्त्रों से लिपट कर कुलबुलाता।
चन्द्रलेखा थी लिए वह फूल सा शिशु चुलबुलाता॥
अङ्क में उसके पड़ा नव जात शिशु मन मोहता था।
ज्यों कला की गोद में शृङ्गार शैशव सोहता था॥

(१४)

रात भर के जागरण से देह जिनकी थक रही थी।
हर्ष की परिपूर्णता से क्रान्ति जिनकी ढक रही थी॥
कर्म से कवि का जिन्होंने था महा मातृत्व पाया।
व्यस्त माँ कमला प्रतिस्थल देख पड़तीं क्षीण काया॥

(१५)

वे कभी थीं तरुणियों के बीच आकर पान देती।
वे कभी थीं समवयस्का देवियों को मान देती॥
वे कभी थीं बालिकाओं को मधुर जलपान देती।
वे कभी थीं परिजनों को मुक्त हो धन दान देती॥

(१६)

धाय पाकर के नयी उनकी रजाई मुसकराती।
नापितानी थी बड़े से थाल पर आँखें उठाती॥
दूध देती हूँ तुम्हारे नातियों को डाल पानी।
पत्तलों का ढेर रख कहने लगी बारिन सयानी॥

(१७)

दी उन्होंने बस जहाँ जिस व्यक्ति ने जो वस्तु माँगी।
सत्य ही कमला बनीं वे याचना परिषिक्त भागी॥
कह रहीं हम ब्राह्मणों के है कहाँ सम्पत्ति ऐसी!
आज जिससे हो तुम्हारी कामना परिपूर्ण जैसी॥

(१८)

इस सुखद दिन को उपस्थित हर्ष से सुन्दर बनाती।
मिल मिलाकर दोपहर के बाद बैठीं सुख सजाती॥
आगता गृह देवियाँ संसार की माङ्गल्य माया।
कर रहीं यह बात जिनसे बैठ कमला क्षीणकाया॥

(१६)

आज मङ्गल कामना सबकी सुदिन यह ले पधारी !
आज सबके मुक्त आशीर्वाद ने शोभा पसारी !
दो युगों के बाद देखा आज आँखों ने उजेला !
आज मैंने सत्य सुख सौभाग्य का नव धन सकेला !

(२०)

छलछला आँखें उठीं जागी युगों की जब कहानी।
भर उठा उनका गला, बोलीं "सभी की बात जानी" ॥
दो जनों ने जब चलायी गाँव की वह पाठशाला।
तब न उसका रूप यह था दीर्घ विद्यापीठ वाला ॥

(२१)

थी पली उनमें हमारे प्राच्य वैभव की तपस्या।
साथ सोते जागते वे स्नेह की बनकर समस्या ॥
भावना उनकी, सरस भ्रातृत्व का मङ्गल जगाती।
भिन्न वंशोपाधि ही बस भिन्नता उनकी बताती ॥

(२२)

एक उनकी भावना थी एक उनकी साधना थी।
दो जनों का एक सा मन एक सी आराधना थी ॥
पर विधाता को न ये मृदु प्रेम के बन्धन सुहाये।
अः ! न जाने भाग्य नभ में क्यों दुखद घन घोर छाये !

(२३)

चल बसी बस दूध पीते पुत्र को जब छोड़ माता।
बन उसी दिन से गया संसार सारा दुःखदाता ॥
हा ! सजग दुर्दैव ने भी रोष फिर अपना दिखाया।
मित्र का फिर मित्र से संसार में नाता छुड़ाया ॥

(१४)

रात भर के जागरण से देह जिनकी थक रही थी।
हर्ष की परिपूर्णता से क्रान्ति जिनकी ढक रही थी॥
कर्म से कवि का जिन्होंने था महा मातृत्व पाया।
व्यस्त माँ कमला प्रतिस्थल देख पड़तीं क्षीण काया॥

(१५)

वे कभी थीं तरुणियों के बीच आकर पान देती।
वे कभी थीं समवयस्का देवियों को मान देती॥
वे कभी थीं बालिकाओं को मधुर जलपान देती।
वे कभी थीं परिजनों को मुक्त हो धन दान देती॥

(१६)

धाय पाकर के नयी उनकी रजाई मुसकराती।
नापितानी थी बड़े से थाल पर आँखें उठाती॥
दूध देती हूँ तुम्हारे नातियों को डाल पानी।
पत्तलों का ढेर रख कहने लगी बारिन सयानी॥

(१७)

दी उन्होंने बस जहाँ जिस व्यक्ति ने जो वस्तु माँगी।
सत्य ही कमला बनीं वे याचना परिषिक्त भागी॥
कह रहीं हम ब्राह्मणों के है कहाँ सम्पत्ति ऐसी!
आज जिससे हो तुम्हारी कामना परिपूर्ण जैसी॥

(१८)

इस सुखद दिन को उपस्थित हर्ष से सुन्दर बनाती।
मिल मिलाकर दोपहर के बाद बैठीं सुख सजाती॥
आगता गृह देवियाँ संसार की माङ्गल्य माया।
कर रहीं यह बात जिनसे बैठ कमला क्षीणकाया॥

(१९)

आज मङ्गल कामना सबकी सुदिन यह ले पधारी !
आज सबके मुक्त आशीर्वाद ने शोभा पसारी !
दो युगों के बाद देखा आज आँखों ने उजेला !
आज मैंने सत्य सुख सौभाग्य का नव धन सकेला !

(२०)

छलछला आँखें उठीं जागी युगों की जब कहानी।
भर उठा उनका गला, बोलीं "सभी की बात जानी" ॥
दो जनों ने जब चलायी गाँव की वह पाठशाला।
तब न उसका रूप यह था दीर्घ विद्यापीठ वाला ॥

(२१)

थी पली उनमें हमारे प्राच्य वैभव की तपस्या।
साथ सोते जागते वे स्नेह की बनकर समस्या ॥
भावना उनकी, सरस भ्रातृत्व का मङ्गल जगाती।
भिन्न वंशोपाधि ही बस भिन्नता उनकी बताती ॥

(२२)

एक उनकी भावना थी एक उनकी साधना थी।
दो जनों का एक सा मन एक सी आराधना थी ॥
पर विधाता को न ये मृदु प्रेम के बन्धन सुहाये।
अः ! न जाने भाग्य नभ में क्यों दुखद घन घोर छाये !

(२३)

चल बसी बस दूध पीते पुत्र को जब छोड़ माता।
बन उसी दिन से गया संसार सारा दुःखदाता ॥
हा ! सजग दुर्दैव ने भी रोष फिर अपना दिखाया।
मित्र का फिर मित्र से संसार में नाता छुड़ाया ॥

(२४)

तब हमीं दो थे, न कोई तीसरा घर में कहीं था।
शून्य को बस छोड़ दिखता और कुछ हमको नहीं था॥
वे पुरुष थे, धैर्य से झेला उन्होंने दुःख भारी।
पर मिटी मेरी कलपते और रोते शक्ति सारी॥

(२५)

आज श्रीपण्डित मुझे लगते वही शैशव समोये।
जिस तरह के छोड़ जीजी ने विकल हो प्राण खोये॥
भाग्य के फिर फेर ने दुर्योग की पीड़ा सकेली!
देखिये आपत्ति क्या आती किसी के घर अकेली!

(२६)

सातवाँ था वर्ष; श्रीपण्डित हुलसते खेलते थे।
वेदना का भार उनके स्नेह में हम झेलते थे॥
सोचते थे मित्र के उपरान्त भी मैत्री निभाना।
किन्तु कर्मों की अलख गति का नहीं कोई ठिकाना!

(२७)

पड़ गयी मैं खाट पर छः मास तक चल फिर न पायी।
देह झूठी हो गयी दुस्साध्य वातव्याधि छायी॥
देख बालक को दुखी हो फूटते थे प्राण मेरे।
दे किसी को तू न ऐसी वेदना भगवान मेरे!

(२८)

पुत्र मेरा आज तक भी है निरा सङ्कोचशाली।
थी मचलने की कभी सीखी नहीं उसने प्रणाली॥
वह सदा सन्तोष से मेरे निकट था बैठ जाता।
हाय! मेरा लाल भोजन भी समय पर था न पाता॥



(२९)

भोगती थी रोग का मैं भोग, बढ़ता रोग जाता।
फिर समय पर कौन था जो पुत्र को उठकर खिलाता॥
दोपहर के बाद जब वे कुछ तनिक अवकाश पाते।
तब कहीं आकर उसे वे स्नेह-पूर्वक कुछ खिलाते॥

(३०)

देख बेटे की निरन्तर दुर्दशा, मैं कष्ट पाती।
चित्त की चिन्ता उन्हें बनकर भयङ्कर थी सताती॥
सुन हमारा दुःख उनके मित्र गङ्गापार वासी।
वे पिता श्रीहर्ष के आये, मिटी घर की उदासी॥

(३१)

थी विवश मैं; लाल मेरा साथ उनके जा रहा था।
आँसुओं में वेदना का सिन्धु उमड़ा आ रहा था॥
पुत्र को मैं चूमकर, सस्नेह छाती से लगाये।
कह रही थी; कुछ करो यह लाल मेरा जा न पाये॥

(३२)

कह उठे वे क्यों बहिन! तुमको नहीं विश्वास मेरा?
क्या तुम्हारे पुत्र में बसता न स्नेहावास मेरा?
क्यों नहीं? कह मैं विदा देने उठी, पर उठ न पायी।
लाल मेरा छूटता था; आ गयी मुझको रुलायी॥

(३३)

पुत्र को छूटे हुये थे तीन लम्बे मास बीते।
भर उठे बरसात से सारे नदी नद ताल रीते॥
याद मुझको है कि जैसी थी भयङ्कर बाढ़ आयी।
बह चले घर बार सारे बह चली सारी कमायी॥

(३४)

तारती थी तब न गङ्गा; बन भयङ्कर मारती थी।
फैलकर यमुना प्रलय के दृश्य ही विस्तारती थी॥
दीन प्राणों की सदा थे खेलते यमराज बाजी।
मृत्यु ने निज नृत्य की प्रलयङ्करी गति घोर साजी।

(३५)

था किसी ने विश्व में सौभाग्य का शृङ्गार खोया!
था कहीं माँ का हृदय प्रिय पुत्र की ले याद रोया!
हा! पिता ने पुत्र, बच्चों ने पिता को था गवाँया!
दीनता का विश्व में सर्वत्र दारुण दृश्य छाया!

(३६)

मिट गये कितने सहित घर बार थे परिवार वाले!
मिट गये फिर बच बचा कर सैकड़ों संसार वाले!
वेदना से विश्व में रोता बचा कोई अकेला!
था लगा बस देश भर में नाश का दुर्दान्त मेला!

(३७)

खाज में अब कोढ़ सी, आपत्ति में आपत्ति आयी।
बात कानों ने सुनी यह घोर दारुण दुःखदायी॥
गर्भिणी पत्नी सहित सन्मित्र जीवन के हमारे।
बाढ़ में पड़ चल बसे सुख दुःख के धन से हमारे॥

(३८)

किन्तु मेरे लाल का कोई न था संवाद आता!
व्यर्थ सारा गाँव उसकी नित्य था चर्चा चलाता॥
मैं गयी, वे भी गये आये, न बेटा साथ आया।
पुत्र सा खोया हुआ धन फिर नहीं पर हाथ आया॥

(३९)

वेदना लेकर व्यथा आयी मुझे पागल बनाने।
चित्त की चुभती हुयी पीड़ा लगी तन मन जलाने ॥
जल रही थी रात दिन मैं किन्तु फिर भी जल न पाती।
थी निरन्तर प्राण से प्रिय पुत्र की चिन्ता सताती ॥

(४०)

शून्य था मेरे लिये; सुख भोग का विस्तार सारा!
शून्य था मेरे लिये; यह स्नेहमय व्यापार सारा!
शून्य था मेरे लिये; अपना भरा घर बार सारा!
शून्य था मेरे लिये; यह स्वर्ग सा संसार सारा!

(४१)

जब उषा शृङ्गारमय सौन्दर्य अपना खोलती थी।
पक्षियों की राशि जब जब बोल मीठे बोलती थी ॥
जब पवन के प्यार से कलियाँ चटककर फूल जातीं।
जब दिशायें जागरण के नव स्वरों से गीत गातीं ॥

(४२)

आह! तब तब जान पड़ता लाल वह आधार जी का।
कह रहा है; माँ पियूँगा मैं नहीं यह दूध फीका ॥
तब हृदय में एक उठती वेदना की तीव्र ज्वाला।
दैव जाने कौन सा था पाप वह परिताप वाला ॥

(४३)

वस्त्र वे पहिना जिन्हें मैं पुत्र को छाती लगाती।
वे मधुर व्यञ्जन बना जिनको उसे प्रायः खिलाती ॥
पोथियाँ वे पढ़ जिन्हें वह बस कभी यों छोड़ जाता।
मन्त्र वे जिनको सुरीले कण्ठ से वह नित्य गाता ॥

(४४)

फाड़ते मेरा हृदय सब, विष बुझे बन तीर जैसे।
क्या बताऊँ बढ़ रही थी वह भयानक पीर कैसे?
जी कलपता था हृदय का भार जीवन होरहा था।
पुत्र सा हीरा हमारे हाथ से जो खो रहा था॥

(४५)

कुछ दिनों के बाद ले चैतन्यता की प्राणधारा।
एक नव संवाद ने आलोक आँखों में पसारा॥
सुन पड़ा निज प्राण-पति को खो व्यथा की बन कहानी।
दैव गति से भारती है बच गयी सन्ताप सानी॥

(४६)

जग पड़ी आशा हृदय में एक थी हलचल समायी।
लौट कर नव शक्ति जर्जर देह में उल्लास लायी॥
कुछ लगा ऐसा कि आया हाथ खोया धन हमारा॥
भर गया आश्चर्य के अतिरेक से जीवन हमारा॥

(४७)

चल पड़े हम उस पतिप्राणा सती के दर्शनों को।
दे रहे थे धैर्य हम अपने परम उत्सुक मनों को॥
चाह थी उड़ जायँ पर उड़ना न अपने मान का था।
था मथित व्याकुल हृदय, मन वायु गामी यान सा था॥

(४८)

तीसरे दिन भारती का पास जन्मग्राम आया।
वेदना ने सौगुनी बढ़कर, हमें उस दिन रुलाया॥
साथ की परिचारिका की गोद में यह मुख छिपाती।
रो पड़ी मैं, साथ उसके कष्ट करुणा का बढ़ाती॥

(४९)

डूबते रवि ने हमारी उस व्यथा का मर्म जाना !
पङ्कजों ने भी उचित समझा हमारा दुख बटाना ॥
पक्षियों ने ले लिया चुपचाप वृक्षों में बसेरा ।
काल सी उस रात ने बस विश्व को दे त्रास घेरा ॥

(५०)

दुःख से टूटे हुए अपने कलेजों को सम्हाले ।
शोक से उस गाँव में हमने सशङ्कित पैर डाले ॥
गाड़ियों के बैल रह-रह चौंक उठते थे बिचारे ।
भूकते थे गाँव के जब श्वान उनको देख सारे ॥

(५१)

गाँव के परिचित जनों के साथ में वे चल रहे थे ।
वेदना की व्यग्रता से भाव मेरे जल रहे थे ॥
सोचती थी भाग्य जाने और क्या-क्या खेल खेले !
कौन से ये पाप ! जिनके हेतु ये सन्ताप झेले ॥

(५२)

मच गया कुहराम घर में घोर हाहाकार छाया !
आज करुणा ने हृदय को तोड़कर बस था रुलाया ॥
धैर्य का भी धैर्य छूटा ! बस व्यथा की बाढ़ आयी !
आरही थी शुष्क भीतों छप्परों तक को रुलायी !

(५३)

हा ! पिता ने उस व्यथा में देह का बस भार खोया ।
भाइयों का वृन्द धीरज छोड़ कर चीत्कार रोया ॥
हाय ! कुररी सी कलप चैतन्यता माँ खो रही थी ।
छटपटाकर भाग्य के वैषम्य को मैं रोरही थी ॥

(५४)

हाय ! जिसने बाढ़ में निज ज्योति का आधार खोया ।
हाय ! जिसने सर्वदा को स्नेहमय संसार खोया ॥
हाय ! जिसने निज हृदय सर्वस्व प्राणाधार खोया ।
हाय ! जिसने विश्व में अपना सुभग शृङ्गार खोया ॥

(५५)

भारती वह थी खड़ी रोती हुयी; पर रो न पाती ।
आँसुओं से भी अरे ! मन की व्यथा वह धो न पाती ॥
भग्न हृदया, अर्द्ध विक्षिप्ता, विपन्ना, क्षीणकाया ।
थी खड़ी; जिसकी कथा ने पत्थरों को भी रुलाया ॥

(५६)

आँसुओं से वेदना की वेदना को भी जगाती !
बैठ कर निज कष्ट से, कारुण्य की धारा बहाती !
रो कभी, चुप हो कभी, निज दुःख के आवेग द्वारा ।
वह व्यथा को सृष्टि सी कहने लगी इतिवृत्त सारा ॥

(५७)

क्या कहूँ ? जीजी ! तुम्हारी तो धरोहर खो चुकी मैं ।
बाढ़ में अपना परम सौभाग्य भी तो धो चुकी मैं ॥
जी रही हूँ कौन से अब कष्ट जाने झेलने को !
कौन से दुर्भाग्य को हैं खेल भव में खेलने को !

(५८)

देख लो माँयें तड़पतीं आज तुम सी पुत्र हीना !
आज मुझसी हैं अनेकों नारियाँ जीवन विहीना !
बाढ़ की दुर्द्धर्षता तो आज घर घर में समायी !
आज घर घर में उसी की रो रही फैली कमायी !

(५६)

बढ़ रही हैं वेग से गङ्गा सभी यह जानते थे ।
पर न कोई नाश की सम्भावना यह मानते थे ॥
गाँव को अपने सुरक्षित सर्वदा सब थे बताते ।
सर्व नाशक दृश्य वे थे कल्पना में भी न आते ॥

(६०)

गाँव के दक्षिण भुजों के उच्च सर्पाकार टीले ।
रोक लेंगे बाढ़ को यह जान, थे सब लोग ढीले ॥
कल्पना में भी न थीं नरमेध की सम्भावनायें !
थीं न दिखती मृत्यु की समुपस्थिता सारी बलायें ॥

(६१)

साथ तरुणों को लिये उत्साह से वे जा रहे थे ।
पीड़ितों के त्राण का सम्मान सारा पा रहे थे ॥
व्यस्त रह रह कर उन्होंने सैकड़ों को था बचाया ।
जान पड़ता मृत्यु को सत्कृत्य उनका यह न भाया ॥

(६२)

बस तनिक सन्ध्या झुकी थी; एक उनके छात्र द्वारा ।
पास के ही गाँव से उनका मिला संवाद सारा ॥
रात तक उसने सुनायी बाढ़ की दुर्द्धर्ष लीला ।
नाश के उपहास से था मोदिनी का मान ढीला ॥

(६३)

था गरजता व्योम; सावन की अमावस घिर रही थी ।
मेह था झम झम बरसता सृष्टि सारी जलमयी थी ॥
रात्रि की गम्भीरता में क्लान्त होकर छात्र सोया ।
किन्तु मैंने जागकर भी हाय ! निज सर्वस्व खोया !

(६४)

सुन सुनाकर, निज परम प्रिय राम रावण की कहानी।
सो गया लल्ला; न सोयी मैं, बरसता देख पानी॥
डर रहा था चित्त शङ्कायें अनेकों जागती थीं।
रात्रि में लहरें पवन की मृत्यु का दृढ़ राग सी थीं॥

(६५)

सुन पड़ा बढ़ता हुआ बस घोर कोलाहल अचानक !
घुस पड़ा बस गाँव में जल मृत्यु की गति सा भयानक !
गाँव में जल घुस गया निकलो पड़ोसी ने पुकारा !
कौनसा कर्तव्य मैंने दुःख में घिर कर बिचारा॥

(६६)

त्रास से मैंने सिहर कर छात्र को उठ कर जगाया !
त्राण का वह भी न कर पर शीघ्र अनुसन्धान पाया॥
व्यग्र हो कहने लगा वह देखने मैं जा रहा हूँ।
लोग सब क्या कर रहे हैं देखकर फिर आ रहा हूँ।

(६७)

थी बहिन नवशक्ति सी उसकी बनी काया गठीली।
थी भरी उत्साह की उसमें महामाया सजीली॥
हाय ! निज माता पिता का एक ही वह लाड़ला था।
वह निरी प्रतिभा भरा बस स्नेह के धन से पला था॥

(६८)

था अभी उसका वयस सोलह बरस का भी न पूरा।
रह गया इस लोक में वह चित्र भी उसका अधूरा॥
स्वास्थ्य की—सौन्दर्य की प्रतिमूर्ति उसकी दिव्य काया।
बुद्धि का विस्तार था मस्तिष्क में उसके समाया॥

(६९)

यदि बहिन मैं जानती वह मौत के मुँह जा रहा है।
यदि बहिन मैं जानती बस काल सिर पर आरहा है॥
तो प्रथम उस सर्वभक्षी काल का मैं कौर होती।
आज जीकर पापियों की मैं नहीं सिरमौर होती॥

(७०)

जब गया माधव न लौटा, तब मुझे कुछ ध्यान आया।
बाढ़ की दुर्द्धर्षता का तब भयङ्कर ज्ञान आया॥
सोचती थी हाय ! लल्ला को कहाँ छिपकर बचाऊँ !
किस तरह इस स्नेहमय शिशुमूर्ति की मैं भीख पाऊँ !

(७१)

सोचती थी किन्तु मैं कुछ भी नहीं थी सोच पाती।
मृत्यु की आवृत्ति सी वह रात थी संशय जगाती॥
भय भयानक बन हृदय में त्रास बनकर छारहा था।
रात में घनघोर तम मानों गरजता आरहा था॥

(७२)

राम का ले नाम मैंने शक्ति भर साहस जगाया।
जग गया लल्ला उसे था कण्ठ से मैंने लगाया॥
बस हृदय में प्राप्त सब पुरुषार्थ था मैंने समेटा।
और लल्ला को उठाकर पीठ में कसकर लपेटा॥

(७३)

लाल ने पूछा कि "काकी जा कहाँ हम तुम रहे हैं?"
"देख बेटा गाँव के घर बार सारे बह रहे हैं॥
चल निकल जल्दी चलें काका तुझे बाहर बुलाता।"
"हाँ चलो" कह चुप हुआ वह भीगते सिर को छिपाता॥

(७४)

जब बरसते मेह में काली निशा थी सनसनाती।
मृत्यु की विकरालता थी भय भरी पीड़ा जगाती॥
काँपते थे प्राण भय से भार जीवन होरहा था।
विश्व सारा वेदना से व्यस्त बन बन रो रहा था॥

(७५)

बीच आँगन में गयी मैं हिल उठा भय से कलेजा!
हाय! किस दुर्दैव ने वह मृत्युमय सन्देश भेजा!
घोर बिजली की तड़प से भर उठीं सारी दिशायें!
कान मानों फट गये बस मिट गयीं सब चेतनायें!

(७६)

गाज आँगन में गिरी बस जानती केवल यही मैं।
क्या हुआ फिर और कुछ भी जानती जीजी नहीं मैं॥
फिर मुझे कैसे वहाँ से बाढ़ ने उस दिन बहाया।
और किस दुर्भाग्य ने फिर लाल को मुझसे छुड़ाया॥

(७७)

भेद इस दारुण कथा का दैव ही बस जानता है।
हो कलङ्कित आज जीवन करुण क्रन्दन ठानता है॥
आज जीजी मुँह दिखाते भी मुझे तो लाज आती।
माँगने पर भी न मुझसे मौत मिलने आज आती॥

(७८)

मर गयी मैं क्यों न पा चैतन्यता यह दुःखदायी?
जुड़ गयी वैधव्य से मेरी सदा को यह सगायी!
आज मुझसी और होगी भाग्यहीना कौन नारी?
देखलो दुर्भाग्य ने यह यातना कितनी पसारी!

(७९)

सोचती वैधव्य में मैं दैव की इच्छा प्रधाना।
धैर्य मैं देती सदा इस चित्त को कर यत्न नाना॥
किन्तु कोमल फूल से उस लाल की जब याद आती।
दुःख के उद्वेग से जल-जल सदा मैं छटपटाती॥

(८०)

भूलती हैं वे न उसकी प्यार से परिपूर्ण बातें।
शिष्टता की पूर्ति सी उसकी बड़ी रसपूर्ण बातें॥
वह विनय का—शील का—सौन्दर्य का अवतार मेरा।
हा ! गया किस लोक को वात्सल्य का आगार मेरा !

(८१)

सातवें ही वर्ष में उसका अभी था पैर जाता।
पर कभी आलस्य उसकी छाँह तक भी छू न पाता॥
माँग करके वस्तु कोई थी कभी उसने न खायी।
सत्य की सौभाग्य की उसमें अलौकिक देन छायी॥

(८२)

हाँ भले संसार मुझसी दुःखिनी में दोष देखे।
दोष की प्रतिमूर्ति मैंने दैव के सब रोष देखे॥
पर बहिन कह दो तनिक तुम यह कि मैं अपराधहीना।
काल की बस क्रूरता का हेतु मे।

(८३)

यदि तुम्हारे पुत्र को मैंने न हो निज पुत्र जाना।
यदि बहिन मैंने न तन मन से किये हों यत्न नाना॥
यदि बनी होऊँ न उसकी प्राण रक्षा हेतु पागल।
दैव से माँगी न हो यदि भीख उसकी डाल अञ्चल॥

(८४)

तो अनेकों जन्म तक मैं घोरतम वैधव्य भोगूँ।
मैं सदा ही पूर्ण दुःखों से भरा भवितव्य भोगूँ ॥
बस रहे मेरे लिये सर्वत्र ही भव में अँधेरा।
नष्ट हो हर बार सुख सौभाग्यमय गार्हस्थ्य मेरा ॥

(८५)

दुष्ट देशद्रोहियों की हीनता मुझमें समावे।
मूढ़ता का पाप भी सौ जन्म तक मुझको सतावे ॥
वह पतन हो प्राप्त जिसमें हो भारी केवल निराशा।
दिव्य जागृति से भरे बलिदान की जिसमें न आशा ॥

(८६)

बस बनूँ हर जन्म में मैं सत्य, शिव, सङ्कल्प हीना।
जाय लुट जीवन सदा रोती रहूँ बन बन मलीना ॥
जब जहाँ भी जन्म लूँ कार्पण्य का दुर्योग जागे।
पापिनी सङ्कीर्णता का बस हृदय में रोग जागे ॥

(८७)

फट गयी छाती व्यथा के भार से हम रो रही थीं !
कष्ट के अतिरेक से हतचेत सी हम हो रही थीं !
आँसुओं से वह दुखद दुर्योग दोनों धो रही थीं !
हम तड़प कर देह का सम्पूर्ण सम्बल खो रही थीं !

(८८)

कुछ सम्हलकर भारती को धैर्य दे मैंने सम्हाला।
यत्न से मैंने उठाकर पास में अपने बिठाला ॥
चुप किया मैंने उसे समझा बुझाकर रो रुलाकर।
वेदना से ध्वस्त मन की भावनायें सब बताकर ॥

(८९)

मैं लगी कहने बहिन! संसार सारा एक होवे।
स्नेह का—विश्वास का हाँ वह भले विस्तार खोवे॥
किन्तु वह विश्वास कैसे खो सकूँगी मैं तुम्हारा।
जो फला फूला अलौकिक स्नेह की पा पुण्य-धारा॥

(९०)

विज्ञता का रूप यह देखो बहिन मानव कहाता।
मृत्यु में अपनी विवशता का उसे पर ध्यान आता॥
नाश का इस विश्व में दुर्दान्त आविष्कार होता।
नित्य जीवन से, निरा संत्रस्त यह भव हाथ धोता॥

(९१)

क्या बहिन लल्ला तुम्हारा भी न था बेटा बता दो?
दुर्दिनों में द्वैत की यह भावना मन से भुला दो॥
ये युगल अञ्चल हमारे एक जैसे आज गीले।
आज हम तुम साथ हैं भव सिन्धु में निज नाव ढीले॥

(९२)

आज री! मेरी बहिन! मैं हूँ तुझे तू कह बुलाती।
किन्तु सारी व्यर्थ शपथें आज क्यों है तू उठाती?
हाय! तूने भी न मेरे इस हृदय में स्नेह देखा।
एक मेरी और तेरी इस व्यथा की रूप-रेखा॥

(९३)

देख तो! प्यारी बहिन! कैसी दशा है आज तेरी!
हो रही तेरी व्यथा से दुर्दशा यह आज मेरी॥
सत्य है मेरे हृदय में पुत्र का सन्ताप जलता।
किन्तु तेरे ताप से वह भी उबल बाहर निकलता॥

(९४)

हैं बहिन संसार के ये दुःख भी कुछ अर्थ वाले।
विश्व ने इनके नये विद्रूप सारे व्यर्थ ढाले॥
इस हमारी वेदना में भी भरी होगी भलाई।
दैव की कुछ देन ही सारे दुखों में है समाई॥

(९५)

पुत्र के परिताप में जलने मुझे बस दो अकेली।
इस दुखी संसार की मैं हूँ तुम्हारी प्रिय सहेली॥
देखने दो लोक यदि तुममें भरे दुर्भाग्य देखे।
सब भरे मैंने तुम्हीं में विश्व के सौभाग्य देखे॥

(९६)

तुम बहिन उस योग्य पति की पुण्य-शीला योग्य जाया।
दूसरों के हेतु निज बलिदान है जिसने चढ़ाया॥
भारती! तुम भव्य भारतवर्ष की सौभाग्य गीता।
आज सावित्री तुम्हीं में! आज तुम से धन्य सीता!

(९७)

तुम हमारी ओर से अपनी हृदय की ग्लानि छोड़ो!
इस दुखद सङ्कोच में केवल भरी है हानि छोड़ो!
तुम हमारे हेतु हो भव में सदा सम्मानशीला।
इस तुम्हारे दुःख से सौभाग्य का संसार गीला॥

(९८)

बस हमारी ओर से तुम होगयी आराधनीया।
वन्दिता शक्तिस्वरूपा भगवती सी साधनीया॥
तुम बनीं वैधव्य से निज प्राणपति की पूर्ण जाया।
आज तुमसे साधना की होगयी कृतकृत्य काया॥

(९९)

गर्भ के भारी दिनों में यह सम्हालो शीर्ण काया।
यह न अपने हेतु इसमें विश्व का वैभव समाया ।।
विश्व वैभव मूल शुभ सन्तान की हो जन्मदाता।
सर्वदा सर्वत्र है बनती समादरणीय माता ।।

(१००)

इसलिये मातृत्व का दायित्व यह सादर सम्हालो !
वेदना की अग्नि में यह जीर्ण मन अपना न डालो !
तुम जियो इस विश्व में मातृत्व के सङ्कल्प द्वारा।
है बहिन माँ के लिये सन्ताप भव का स्वल्प सारा ।।

(१०१)

तुम उन्हीं निज प्राणपति के नाम पर सन्तोष सीखो !
तुम उन्हीं के कर्ममय सङ्कल्प से परितोष सीखो !
तुम उन्हीं के पुण्य के विनियोग का जयघोष सीखो !
तुम उन्हीं के योग से नव प्राणदायक रोष सीखो !

(१०२)

नित्य थी रोती कलपती भारती सन्ताप ग्रस्ता।
नित्य उसको बोध देती मैं निरी परिताप व्यस्ता ।।
एक दिन उसको उपस्थित दुःख में बस धैर्य देती।
स्नेह से मैंने कहा यह सृष्टि दुख की साँस लेती ।।

(१०३)

बस बहिन इस विश्व में सङ्कीर्णता का रोग छाया।
मञ्जु मोहकता लिये भव में प्रबल उपभोग छाया ।।
आज मानवता गयी उपभोग के बल से सतायी।
आज जीवन में व्यथा की बस इसी से सृष्टि छायी ।।

(१०४)

बस इसी आधार के भ्रम ने हमारे स्थान छीने!
बस इसी अविचार के भ्रम ने हमारे गान छीने!
बस इसी संहार के क्रम ने हमारे मान छीने!
बस इसी संसार के यम ने हमारे प्राण छीने!

(१०५)

मिट गया पड़ विश्व के व्यामोह में जीवन हमारा।
लुट गया इस बुद्धि के विद्रोह से यौवन हमारा॥
रो रही है आज मानवता परम उत्पीड़िता हो।
आज भव में काँपती सद्वृत्ति संशय संयुता हो॥

(१०६)

दोष अपना भूलकर कलिकाल के आरोप द्वारा।
मूढ़ता का आज यह पाखण्ड है हमने पसारा॥
फैलती जाती हमारी नीचता से जो बुराई।
बस उसे कलिकाल की लीला प्रबल हमने बताई॥

(१०७)

आज हम सब नारियाँ कलिकाल का आखेट होतीं।
आज हम अपनी व्यथा पर भी नहीं भर पेट रोतीं॥
पाप है संसार में वैधव्य की पावन तपस्या।
विश्व में अपकार की प्रतिमूर्ति नारी की समस्या॥

(१०८)

आज की विधवा बनी है आपदाओं की कहानी!
माँगती है भीख गलियों में भुवन की राजरानी!
मारता मातृत्व को ही ठोकरें संसार सारा।
बन गया असमर्थता से पङ्गु यह जीवन हमारा॥

(१०९)

इस तरह मैं भारती को नित्य समझाती बुझाती।
निज हृदय की वेदना को जिस तरह भी हो दबाती॥
होगयी अभ्यस्त सी उस दुःख की आराधना की।
बन गयी प्रतिमूर्ति कष्टों की निरन्तर साधना की॥

(११०)

रात दिन मैं भारती के साथ रहकर थी बिताती।
जिस तरह भी हो उसे मैं धैर्य देकर शान्ति पाती॥
बन गयी उसके लिए मैं दुःखिनी उपचारशीला।
जानते सन्ताप की सन्तप्त ही सम्पूर्ण लीला॥

(१११)

बस इन्हीं उद्बोधनों में एक पूरा मास बीता।
थी नहीं सम्पूर्ण होती दुःख की आधार गीता॥
कष्ट के शमनार्थ कहती मैं सभी साधार बातें।
बीतते दिन थे इसी में बीततीं सविकार रातें॥

(११२)

नित्य उगता सूर्य प्राची में लिए यह दुःख गाथा।
नित्य सन्ध्या विह्वला बन पीटती थी आप माथा॥
नित्य आँगन में उतरता शोक का संसार काला।
नित्य हमको थी जलाती वेदना की घोर ज्वाला॥

(११३)

आगया दुर्दिन न जिसकी चित्त में थी चाह कोई।
दब सकी उस दिन न मन की पीर मैं भर आह रोई॥
सींचती अपनी व्यथा को आँसुओं की वृष्टि द्वारा।
मैं चली उस गाँव से अब था न कोई और चारा!

(११४)

मार्ग में लगता मुझे भय गाँव घर की याद से ही।
चित्त की उद्भ्रान्ति का बस हेतु थे सब मित्र स्नेही॥
मैं मनाती थी न यह घर गाँव मेरा पास आवे।
चाहती थी मैं न निज अस्तित्व का विश्वास आवे॥

(११५)

तीसरे दिन सामने था गाँव पर देता दिखाई!
तोड़ता दुर्दैव कब सन्तप्त लोगों से सगाई!
द्वार पर सब गाँव उत्सुक हो हमारे जुड़ रहा था।
किन्तु मेरा मन व्यथा से—वेदना से उड़ रहा था॥

(११६)

अब मुझे फिर काटने सा यह लगा घर बार सारा।
बन गया फिर काल सा मेरे लिए संसार सारा॥
कण्टकित मेरे लिये था विश्व का विस्तार सारा।
जल चुका मेरे सुखों का था सरस आधार सारा॥

(११७)

झुक पड़ी फिर से निराशा काल सी काली अँधेरी।
प्राण थे यम यातना में थी दशा असहाय मेरी॥
क्या भला है? क्या बुरा है? क्या असुन्दर? क्या सलोना?
भूल मैं सब कुछ गयी थी बस मुझे था याद रोना॥

(११८)

नित्य उठकर पुत्र के मैं तल्प के थी पास जाती।
किन्तु सूना देख उसको मैं उसी क्षण लौट आती॥
जब कभी थी बालकों की मण्डली हलचल मचाती।
मन्द गति से द्वार पर मैं जा सदा आँसू बहाती॥

(११९)

खेलते हँसते परस्पर बोलते मृदुता जगाते।
देखती जब बालकों को सामने कौतुक मचाते॥
जागती पीड़ा दबी होता बुरा था हाल मेरा।
सोचती इनमें कहीं होवे न प्यारा लाल मेरा!

(१२०)

पुत्र के समतुल्य दिखता जब कहीं बालक सलोना।
भूलता था चित्त यह, क्षणमात्र को दुख, दैन्य, रोना॥
पास बैठाकर उसे मैं प्यार से पहले खिलाती।
देख फिर अपलक उसे अपनी व्यथा दारुण छिपाती॥

(१२१)

बात अपने मित्र की जब पूछता था पास आकर।
बालकों का दल कभी दयनीयता मेरी जगाकर॥
बीतती थी जो हरे! मुझ पर किसी पर वह न बीते!
हों किसी के दिन न ऐसे स्नेह से भगवान! रीते॥

(१२२)

देख चिड़ियों को सलग्ना स्नेह से चारा चुगाती।
देखकर गायें सवत्सा फिर घरों की ओर आती॥
सोचती संसार में मैं ही अकेली भाग्य हीना।
बस तभी तो दैव ने मेरा परम प्रिय पुत्र छीना॥

(१२३)

जब कभी मैं पक्षियों का देखती दल व्योमचारी।
सोचती ये जानते होंगे व्यथा की बात सारी॥
उड़ रहे मेरे परम परिताप में पड़ आज सारे।
दौड़ते मेरी व्यथा से व्योम में पाँखें पसारे॥

(१२४)

था सदा मुझको सताता ग्रीष्म बनकर त्रासवाला।
और पावस में मुझे परिताप देती मेघमाला॥
थी शरद् आती सदा मुझ विह्वला को ही रुलाने।
था उतरता विश्व मुझको नित्य जीते जी जलाने॥

(१२५)

इस तरह बस नित्य कटु सन्ताप का विष घोर पीते।
एक दो दस ही नहीं वे दीर्घ तेरह वर्ष बीते॥
खींचता था घर निरे दुर्भाग्य की बस रूप रेखा।
किन्तु बन अपवाद उसमें खेलती थी चन्द्रलेखा॥

(१२६)

पूछती यह बैठ भाई की सदा कारुण्य गाथा।
यह हृदय इसका सदा से स्नेह का आधार सा था॥
राखियाँ प्रतिवर्ष रखती थी सजाकर ले मिठाई।
थी सदा कहती कि आयेगा हमारा आज भाई॥

(१२७)

किन्तु जब भाई न आता—थी मिठाई सूख जाती।
तब उदासी से भरी आँखें न यह अपनी उठाती॥
यह निरा बचपन मुझे इसका सदा ही था रुलाता।
और आशा का सरोवर सूखता बस नित्य जाता॥

(१२८)

इन निरे रूखे दिनों में वह सुदिन चुपचाप आया।
जब हमारे भाग्य में अज्ञात ही उल्लास छाया॥
पा निमंत्रण यज्ञ का जिस दिन कि वे काशी पधारे।
जानता था कौन वे क्षण सुख सुदिन के थे हमारे!

(१२६)

यज्ञ के सम्मान में शास्त्रार्थ के जय पत्र द्वारा।
था उन्होंने पुत्र की वर प्राप्ति का सुख भी पसारा॥
एक दिन आये अचानक, और गद्गद् कण्ठ द्वारा।
लो मिलो बोले, युवक हो आगया बेटा तुम्हारा!

(१३०)

रूप यौवन से भरे, माँ कह विनय से सिर झुकाये।
देख अपने पुत्र को ये भाग्य थे मैंने जगाये॥
थी वही जिस स्नेह के अतिरेक की पीयूष धारा।
बस उसी ने पुण्य मेरे शुष्क प्राणों में पसारा॥

(१३१)

इस तरह उल्लास में ये दुःख की स्मृतियाँ पुरानी।
कण्ठ में रुँधकर बनी उन लोचनों का सिक्त पानी॥
होगयीं सारी उपस्थित नारियाँ करुणाविभूता।
दिख पड़ा सबके व्यथित से लोचनों से वारि चूता॥

(१३२)

पर उपस्थित हर्ष ने था जो नया सम्बल जगाया।
अब वही आलोक बन उनके मनों में था समाया॥
विश्व को सुख दुःख का बस एक क्रीड़ास्थल बताती।
उठ चली यह मण्डली अब छागयी सन्ध्या सुहाती॥

(१३३)

जिन रहस्यों से भरी थी यह सरस सन्ध्याभिरामा!
जिस व्यथा का बीज ले फिर शर्वरी उतरी ललामा!
आज भी बस उस व्यथा के गीत घर घर छा रहे हैं!
आज भी मनको उसी के छन्द ये कलपा रहे हैं!

—— ❀ ——

षष्ठ सर्ग

(१)

भव के वैभव की माया !
यौवन के धन की रानी !
लिखने दे कवि लिखता है ।
तेरी रस-सिद्ध कहानी ॥

(२)

जिसमें नयनों के जल का ।
खारा सागर लहराता ॥
यह देव सदा दानव बन ।
जिसकी पूजा ठुकराता ॥

(३)

तू मधुर कल्पना जैसी ।
मृदुता मञ्जुल कविता की ॥
तू पुण्यमयी प्रिय गाथा ।
मानवता की—महिमा की ॥

(४)

बस तेरा यह रस पाकर।
सब सृष्टि बनी बड़भागी॥
तेरी यह तरुण तपस्या।
भव का सम्बल बन जागी॥

(५)

तेरी नव स्नेह सुधा से।
जीवन ने यौवन पाया॥
तूने निज अनुपमता का।
घर घर में रस बरसाया॥

(६)

तू शक्ति भरी गुण गीता।
यश की सस्मित उपमा सी॥
तू कवि के मुक्त हृदय की।
मङ्गलमय उज्ज्वलता सी॥

(७)

फैली जन जन के मन में।
तेरी अलबेली लीला॥
तेरे मञ्जुल गीतों से।
सारा संसार रसीला॥

(८)

तू विजय भरी गाथा सी।
प्राणों के प्राण जगाती॥
तू अपनी इन आँखों में।
सुख के वरदान बसाती॥

(९)

तेरे इस मुक्त हृदय में ।
उस दिव्य योग का डेरा ॥
जिसकी पा शीतल छाया ।
यह विश्व ऋणी है तेरा ॥

(१०)

तेरे कोमल अधरों से ।
बरसी वह छवि कल्याणी ॥
जिसकी माया से जागी ।
कविता की मङ्गल वाणी ॥

(११)

अनुपम सौन्दर्य सुधा का ।
भर भर कर रस सुखदायी ॥
तू पुण्य भरे जीवन का ।
उपहार भुवन में लायी ॥

(१२)

तेरे जीवन से जागी ।
शैशव के निधि की धारा ॥
होता तेरे यौवन से ।
पावन संसार हमारा ॥

(१३)

बहती तेरे अञ्चल से ।
प्राणों के रस की धारा ॥
तू रूपसि ! है करुणा की ।
सुर सरिता स्वच्छ उदारा ॥

(१४)

इस वर विकास का तुझ में।
सारा इतिहास समाया॥
तेरी ही कोर कृपा से।
सौन्दर्य भुवन मे छाया॥

(१५)

भव के प्राणों में भर दे।
वरदायिनि! अपनी भाषा॥
खेले तेरे चरणों में।
कवि की कोमल अभिलाषा॥

(१६)

तेरी अनुपम कविता का।
सङ्गीत जहाँ लहराता॥
यह विश्व व्यथा का मारा।
सुख शान्ति वहीं पर पाता॥

(१७)

पलती तेरी गोदी में।
ममता की मञ्जुल माया॥
तेरे यश की छाया में।
सारा संसार समाया॥

(१८)

तेरे इन वरद करों से।
ये प्राण पले हैं मेरे॥
पा तेरी छवि की छाया।
ये गान ढले हैं मेरे॥

(१६)

तू बेटी वृद्ध पिता की!
भाई की बहिन सुजाता!
मैं आज तुझे कहता हूँ!
यह शीश झुकाकर माता!

(२०)

तेरा सम्मान जगाने।
कार्तिकी पूर्णिमा आयी॥
धरती पर दुग्धावरणा।
शर्वरी उतर मुसकायी॥

(२१)

नभ की विस्तृत सीमा ने।
अपना अवगुण्ठन खोला॥
निस्तब्ध पवन का मन भी।
लहरों में छन छन बोला॥

(२२)

घर में आँगन में बन में।
विधु की माया खुल खेली॥
ज्योतिर्मय नभ मण्डल था।
थी सारी सृष्टि उजेली॥

(२३)

रजनी अम्बर में अपनी।
मुसकान हुलस बिखराती॥
धरती में धूम मचाकर।
सुन्दरता थी इठलाती॥

(२४)

उस दिन हिमगिरि ने अपना ।
गौरव से शीश उठाया ॥
गङ्गा के जल में उस दिन ।
जनता का बल लहराया ॥

(२५)

धरती का स्नेह जगाने ।
उस दिन सुन्दरता आयी ॥
कातिक की पुण्य प्रभा की ।
कल कीर्ति विश्व ने गायी ॥

(२६)

अपने गाँवों में हिल मिल ।
जनता ने योग जगाया ॥
गङ्गा माता की जय में ।
सारा जन बल लहराया ॥

(२७)

रजनीपति ने भी सुख से ।
अपने थे भाग्य जगाये ॥
नव यौवन की माया ने ।
भव में शृङ्गार सजाये ॥

(२८)

जल में उमड़ा था जीवन ।
जीवन में हर्ष समाया ॥
उत्कर्ष भरे हृदयों में ।
अपना गौरव भर आया ॥

(२९)

बस धूम मची थी भारी।
आगयी स्नान की बेला॥
घाटों पर उमड़ रहा था।
भावुक लोगों का मेला॥

(३०)

उस पुण्य भरी बेला में।
था शीत खेलने आया॥
बह कर समीर ने अपना।
अनुराग सरस दिखलाया॥

(३१)

लायी ब्रज की वसुधा से।
कालिन्दी कीर्ति महाना॥
आँखों में बस जाता था।
उसका सुख से लहराना॥

(३२)

करती थी विधु की माया।
नीले जल का आलिङ्गन॥
लहरों में खेल रहा था।
उसका अतिशय कोमल मन॥

(३३)

प्राची उत्कर्ष भरी थी।
वैभव से भरी प्रतीची॥
वसुधा में रस की धारा।
जाती थी उस दिन सींची॥

(३४)

सुन कवि के गीत रसीले।
तारुण्य उषा का जागा॥
प्राची की पाकर लाली।
व्यामोह भुवन का भागा॥

(३५)

रवि ने फिर धीरे धीरे।
निज सरस विकास पसारा॥
लहरायी अनुपम सुख से।
यमुना की नीली धारा॥

(३६)

जनता का दल बल सारा।
घाटों से छुटता जाता॥
गाँवों में नवयौवन था।
अपना शुभ योग जगाता॥

(३७)

ऐसी मङ्गल वेला में।
बरसी जिस रस की धारा॥
उसकी मृदु अनुपमता से।
अनुपम संसार हमारा॥

(३८)

प्रियतम के स्नेह निलय में।
बन पुण्य पर्व की माया॥
बेटे के मृदु चुम्बन से।
माँ ने जो रस बरसाया॥

(३९)

उस रस की मादकता में।
अपने को कर मतवाला॥
देवर ने दी भाभी को।
कमलों की सुन्दर माला!

(४०)

बोली रत्ना अनुपम है!
उपहार मनोरम मेरा!
उतरा उल्लास लुटाता!
मङ्गल का मूल सवेरा!

(४१)

मैं आज पुरस्कृत होकर।
कैसे ये भाग्य सराहूँ!
समझें यह लोभ न मेरा।
यदि और अधिक कुछ चाहूँ!

(४२)

बोले श्रीहर्ष, सुनूँ तो!
कैसी वह चाह तुम्हारी!
बेटे को दे गोदी में।
बोली रत्ना सुकुमारी॥

(४३)

अब तक परता थी छायी।
घर में थे आप कहाते॥
पर अब घर के बन जाओ।
अपने बेटे के नाते!

(४४)

तारक को मृदु चुम्बन से।
देकर उल्लास हसाते॥
श्रीहर्ष पुलक कर बोले।
आनन्द सुधा बरसाते॥

(४५)

पर देखो तुम्हीं बहाती।
उलटी गङ्गा की धारा॥
मैंने तो तुम कह कर ही।
तुमको सर्वत्र पुकारा॥

(४६)

अच्छा मैं तुम कहती हूँ।
बोली हँस रत्ना रानी॥
देवर मेरी सब बातें।
अब तक तुमने हैं मानी॥

(४७)

भरती सर्वत्र सफलता।
जीवन में बस निश्चय का॥
बस पाकर लाभ सदा ही।
बढ़ता है लोभ हृदय का!

(४८)

भाभी! पहिचान गया हाँ।
अब तो मैं लोभ तुम्हारा॥
भइय्या ने बस लगता है।
तुमको इस भाँति उभारा॥

(४६)

यदि कोई उचित कहे तो।
फिर वह उभारना कैसा!
तुम में कैसे यह आया?
देवर! रूखापन ऐसा!

(५०)

इन फूलों ने मृदुता का।
जो मञ्जुल हास बिखेरा॥
जीवन का योग वही है।
कहता भावुक मन मेरा॥

(५१)

बिलकुल ही उचित उन्होंने।
यह सुख संयोग बिचारा॥
मेरी विधु की मृदुता में।
जागे गृह धर्म तुम्हारा!

(५२)

था आज अनोखा बनकर।
प्रस्ताव सुपरिचित आया॥
देवर ने किन्तु सम्हलकर।
अपना निश्चय दुहराया॥

(५३)

भाभी! मत समझो केवल।
कोमल संसार हमारा॥
बहती भव की माया में।
मादकता की रसधारा॥

(५४)

मानोगी तुम हम सारे।
संक्रान्ति काल के प्राणी॥
निस्तब्ध निरी इस युग में।
जीवन की गति कल्याणी॥

(५५)

अब भाभी ! रह न गया है।
साधारण धर्म हमारा॥
हमने निज दुर्बलता का।
बस केवल रोग पसारा॥

(५६)

जीवन यौवनमय होकर।
पौरुष का पुण्य जगावे॥
अपनी गौरव गरिमा का।
घर घर झण्डा लहरावे॥

(५७)

धरती पर स्वर्ग उतरता।
देखूँ मेरी अभिलाषा !
जल थल अम्बर में गूँजे।
मेरे प्राणों की भाषा !

(५८)

जीवन की प्रगति सदा ही।
रखनी है बन्धन हीना॥
अपने पर निर्भर होकर।
मझको है भव में जीना॥

(५६)

देवर की ऐसी बातें।
सुनकर भाभी मुसकायी॥
उसकी वाणी की धारा।
बन पुण्यमयी लहरायी॥

(६०)

बोली देवर! यह कैसा?
पावन पुरुषार्थ तुम्हारा॥
जीवन की मङ्गल गति में।
कैसा यह मार्ग तुम्हारा?

(६१)

दुर्बल तर्कों का लेकर।
तुमने इस भाँति सहारा॥
अपनी पावन प्रतिभा में।
केवल भय भार पसारा॥

(६२)

जिसको तुम बन्धन कहते।
वह महामुक्ति वसुधा की॥
मेरे देवर! पलती है।
उसमें सम्पत्ति सुधा की॥

(६३)

निश्चय ही मैं मानूँगी।
निर्बला आज की नारी॥
पर सबल उसे करने में।
रुकती क्यों शक्ति तुम्हारी?

(६४)

मुझमें यदि दोष भरे हों।
तो क्या वे हैं न तुम्हारे?
देवर कैसे बतला दो?
भव भर के दोष हमारे!

(६५)

दुखिया नारी को मिलता।
सारा संसार अनोखा॥
भव के इन अभिशापों ने।
उसका गुण गौरव सोखा॥

(६६)

अपने निश्चय का सुनकर।
यह प्रबल विरोध सुहाता॥
जागा देवर के मन में।
भाभी का कोमल नाता॥

(६७)

बोले श्रीहर्ष, तुम्हीं ने।
भाभी! यह हरदम माना॥
मुझको प्यारी लगती है।
नारी की शक्ति महाना॥

(६८)

इस युग में वैवाहिकता।
मानव की निर्बलता है॥
जीवन में आज पराभव।
इसके कारण पलता है॥

(६९)

भव में वैवाहिकता की।
दुर्बल है पुण्य प्रणाली ॥
इसने मानव के मन में।
केवल लघुता है ढाली ॥

(७०)

मुझ पर है उचित तुम्हारा।
अपना अधिकार जनाना ॥
पर यह कितना अनुचित है।
मुझको सङ्कीर्ण बनाना ॥

(७१)

तुम कहती हो जीवन में।
दाम्पत्य अमृत ढालेगा ॥
तुम कहती हो बाधायें।
गृह धर्म सभी टालेगा ॥

(७२)

नियमों का एक प्रयोजन।
जीवन में गति भर देना ॥
पर हमने प्रगति भुलाकर।
सीखा मति गति हर लेना ॥

(७३)

विधु बस पत्नी होकर ही।
मुझको प्रिय लग सकती है !
भाभी ! यह वृत्ति तुम्हारी।
अनुदार मुझे लगती है ॥

(७४)

देवर भाभी ले उलझे।
जीवन की तरुण तपस्या ।।
तारक बन खेल रही थी।
उनसे सुकुमार समस्या !

(७५)

वह मृदु माधुर्य पिता का।
माँ की आँखों का तारा ।।
जिसकी कोमल काया में।
शैशव ने पुण्य पसारा ।।

(७६)

जिसके काले बालों पर।
सुन्दरता बलि बलि जाती ।।
जिसकी चञ्चल आँखों में।
कोमलता थी लहराती ।।

(७७)

जिसके पतले अधरों से।
झरती थी अस्फुट वाणी ।।
जिसके नन्हें हाथों पर।
रीझी शिशुता कल्याणी ।।

(७८)

चाचा के सित वस्त्रों पर।
उसने जब काजल फेरा ।।
हाथों में तब उसको ले।
माँ ने वात्सल्य बिखेरा ।।

(७६)

छोड़ो उसको जो कुछ वह ।
करता है कर लेने दो ॥
भाभी ! यह मन की माया ।
जी भर भर भर लेने दो ॥

(८०)

देखो ! शैशव से उलझी ।
सारी रस सृष्टि हमारी ॥
वस्त्रों की उज्ज्वलता क्या ।
इससे भी बढ़कर प्यारी ?

(८१)

देकर देवर के हाथों ।
वह रस सम्पत्ति सुहाती ॥
यह भेद तुम्हीं बस जानों ।
बोली रत्ना मुसकाती ॥

(८२)

बोले श्रीहर्ष यहाँ पर ।
बढ़ कर अधिकार तुम्हारा ॥
तुमने भव की मृदुता पर ।
जितना वात्सल्य पसारा ॥

(८३)

उसकी तुलना में हम तो ।
ठहरेंगे पूर्ण अकिञ्चन ॥
प्रारम्भ तुम्हीं से होगा ।
मानवता का संवर्द्धन ॥

(८४)

तुम तो इस संवर्द्धन को।
जीवन में हीन बताते॥
युगधर्म मुझे समझाकर।
अपना ही हित ठुकराते॥

(८५)

देवर! युगधर्म सदा क्या,
नीरस निष्प्रभ होता है?
स्वप्नों की शय्या में ही।
क्या नवजीवन सोता है?

(८६)

मैं कब कहता हूँ जागे।
असमय सन्यास हमारा!
मैं कब कहता हूँ होवे।
मुझ सा ही यह भव सारा!

(८७)

पर जीवन के सञ्चय की।
हम निज सामर्थ्य जगावें॥
जीवन के सुख साधन को।
हम विस्तृत और बनावें॥

(८८)

बस मेरे इन भावों की।
इतनी ही तो परिभाषा॥
फिर कैसे वह जीवन की।
नीरस निष्प्रभ अभिलाषा॥

(८९)

इस भाँति चला आँगन में।
अभिनव संवाद निराला॥
छत पर अपनी कविता का।
श्रीपण्डित ने रस ढाला॥

(९०)

जीवन उनमें जननी का।
था पावन पुण्य जगाता॥
धरती का संवर्द्धन था।
उनके मन में लहराता॥

(९१)

उनकी प्रतिभा में जागी।
भावों की गति स्वाधीना॥
उनके गीतों से फूटी।
भव में कल्पना नवीना॥

(९२)

कागज पर चञ्चल बनकर।
थी कलम नाचती चलती॥
कविता उनके वैभव पर।
कर कर शृङ्गार मचलती॥

(९३)

मसि भी उनकी प्रतिभा का।
कर वहन बनी बड़भागी॥
वाणी की अनुपम महिमा।
लेकर सुख साधन जागी॥

(९४)

भावों के अवलम्बन में।
शब्दों का संशोधन था॥
उनकी उस मुक्त कलम में।
रस का अनुपम अर्जन था॥

(९५)

कविता कर पूर्ण उन्होंने।
जब धीमे स्वर से बाँचा॥
तब वाणी के मन्दिर में।
शृङ्गार विलसकर नाचा!

(९६)

जब कवि ने छत से उठकर।
आँगन पर दृष्टि पसारी॥
तब सुन्दर बन कर छायी!
उसकी कविता संसारी॥

(९७)

देखा, देवर भाभी में।
संवाद सरस था चलता॥
शृङ्गार तथा शोभा पर।
सादर उल्लास मचलता॥

(९८)

कुछ देर उन्होंने, उनको।
सुख से चुपचाप निहारा॥
फिर नीचे को कुछ झुककर।
उल्लास समेत पुकारा॥

(९९)

"आये" वे दोनों बोले।
ऊपर पहुँचे बस दोनों॥
अपने कवि की कविता के।
नव यौवन का यश दोनों॥

(१००)

चाचा की मृदु गोदी में।
शैशव ने प्राण जगाये!
'ता' 'ता' कह कर बेटे ने।
जब नन्हें हाथ बढ़ाये!

(१०१)

पहले मुझको पढ़ने दे।
तेरी कविता यह सारी॥
लल्ला मेरे पढ़ लेना।
आयेगी तेरी बारी॥

(१०२)

फिर भाभी की गोदी में।
अपने तारक को देकर॥
श्रीहर्ष लगे वह पढ़ने।
कविता भाई से लेकर॥

(१०३)

कविता वह अपने कवि के।
उद्गार लिये लहरायी॥
उस छत पर कोमल स्वर से।
इस भाँति गयी जब गायी॥

(१०४)

छवि की यह अनुपम कोमलता, कवि की यह सम्पत्ति सुहायी।
जिसके संवर्द्धन पर निर्भर, जीवन की महिमा मनभायी॥
जिसके मधुरामृत से रस से, भव भर में मङ्गलगति छायी।
प्राणों की सूखी सरिता में, वह रस की धारा लहरायी॥
वसुधा की मन्जुल माया में, फैली जिसकी सरस कहानी।
तुम्हें सुलभ वह आज भुवन के, जीवन का आधार जवानी!

(१०५)

उठो! विजय की शंखध्वनि से, जागे बल बलिदान तुम्हारा!
आज प्रगति के समराङ्गण में, पुण्य पुरुष आह्वान तुम्हारा!
आज गर्व से शीश उठाओ! उमड़ पड़े अभिमान तुम्हारा!
वीर! अवनि अम्बर में गूँजे, यह प्रमत्त रण गान तुम्हारा!
आज तुम्हारी शुभाराधना, उतरी शक्ति लिये मन मानी।
आज लुटाती तुम पर सब कुछ, जीवन का आधार जवानी!

(१०६)

सुख के सब उपहार जगाता, भावों का सङ्घर्षण आया।
अपनी नवगति से लहराता, पौरुष का आकर्षण आया।
भव में स्नेह सुधा बरसाता, गौरव का नव दर्शन आया।
विजय ध्वजा अपनी फहराता, धरती पर परिवर्तन आया॥
ओ! मानवता के अवलम्बन, शक्ति साधना के अभिमानी!
उठो! गले मिलती है तुमसे, जीवन का आधार जवानी!

(१०७)

आज तुम्हारा मङ्गल यश ले, उतरा भव में सुखद सबेरा।
हृदय खोलकर आज उषा ने, तुम पर निज माधुर्य बिखेरा॥
आज तुम्हारे बल विक्रम में, फैल उठा जागृति का डेरा।
आज तुम्हारे नव यौवन में, तपस्तेज का वरद बसेरा॥
आज तुम्हारे मुक्तिबोध ने, परिवर्तन की महिमा जानी।
आज लुटाती अपना वैभव, जीवन का आधार जवानी!

(१०८)

विहँगों ने कोमल कण्ठों से, गीत तुम्हारे यश के गाये।
आज प्रकृति की सुन्दरता में, तरुण! तुम्हारे स्वर मुसकाये!
आज तुम्हीं से कवि ने अपनी, कविता के शृङ्गार जगाये।
आज युवक! वरदान तुम्हारे, जल थल अम्बर में लहराये॥
निर्भयता ही धर्म तुम्हारा, पुरुष पुरातन तुम नर मानी।
तुम्हें सुलभ है आज भुवन के, जीवन का आधार जवानी!

(१०९)

विश्व तुम्हारे गुरु गौरव पर, अपना यह विस्तार बसाता।
मानवता का पीड़ित मन भी, तुम पर तन, मन, प्राण चढ़ाता॥
देख रही है तुम्हें तुम्हारी, विश्व वन्दिता भारत माता।
आज तुम्हारा सर्व विसर्जन, यह सोया संसार जगाता॥
भाव भक्ति के तुम आराधक! तुम अपने पन के बलिदानी!
आज तुम्हीं पर बलि बलि जाती, जीवन का आधार जवानी!

(११०)

सुनकर ओज भरे, कवि के रसीले छन्द,
ढीली पड़ी वीणा वीणापाणि कसने लगी।
वाणी के विलास पर, भावों का हुलास भर,
मति की प्रगति सविकास बसने लगी॥
रस भरी तान पर, बल बलिदान पर,
हृदयों में गान की रुझान धसने लगी।
राग का प्रसार, अनुराग का विहार लिये,
मञ्जु माधुरी की रूपराशि हँसने लगी॥

(१११)

जागे कविता में देख काव्य साधना के पुण्य,
शीतल सुगन्ध ले बयार मन्द डोल उठी।
दूर पर बायीं ओर नीली जल धार लिये,
भानु नन्दिनी भी स्नेह सुख से कलोल उठी॥
कलित वितान पर नीले आसमान पर,
प्रतिभा प्रभाकर की मति गति खोल उठी।
मानिनी वसुन्धरा में प्राण बरसाते हुये,
नाच उठे खञ्जन शुकों की राशि बोल उठी॥

(११२)

जीवन के भाव जागरण की महानता से,
प्रबल पशुत्व का हृदय शूलने लगे।
गुरु पुरुषार्थ के अखण्ड परमार्थ पर,
मानव को स्वार्थ के स्वभाव भूलने लगे॥
शुद्ध स्वाभिमान पर, यौवन के गान पर,
पाकर नवीन रस, प्राण झूलने लगे।
मधुर सुधा में. शारदीय वसुधा में दिव्य,
कवि की कला में, मृदु फूल फूलने लगे॥

(११३)

राग रस युक्त भावनाओं में प्रगति भर,
मन मनमनी सिद्धियाँ सकेलने लगा।
लघु चेतना की वेदना का प्रतिकार कर,
सरल समत्व विश्व भार झेलने लगा॥
पाप को पछाड़, धर्म क्षेत्र में दहाड़कर,
पौरुष भुवन का विरोध ठेलने लगा।
देवर के राग पर, पति के प्रसाद पर,
जननी के भाग्य से सुहाग खेलने लगा॥

(११४)

झलकी कवि की आँखों में।
लेकर उल्लास सफलता॥
जागी भाई के रस से।
भाई के मन विह्वलता॥

(११५)

पति की अनुपम प्रतिभा पर।
अपनी यश राशि बसाती॥
खेली यौवन के धन से।
रत्ना माधुर्य जगाती॥

(११६)

छूटी माँ की गोदी से।
चञ्चलता की मृदु लीला॥
तारक के तुतले स्वर से।
सारा घर-बार रसीला॥

(११७)

बचपन उसका अलबेला !
आनन्द सकेल रहा था ।।
ममता की मृदु माया में ।
माँ का मन खेल रहा था ।।

(११८)

वह अपने पूज्य पिता की !
सम्पत्ति सुधा पाने को ।।
मचला म से चाचा की ।
गोदी में फिर जाने को ।।

(११९)

उसको गोदी में लेकर ।
कागज से खेल खिलाते ।।
श्रीहर्ष दिखे भाभी का ।
मञ्जुल मातृत्व जगाते ।।

(१२०)

जब जब कविता का कागज ।
उसके अधरों को छूना ।।
तब तब था उसके मुख में ।
खुलता माधुर्य अछूना ।।

(१२१)

इस ओर सरस कविता थी ।
उतरी मञ्जुल परिधाना ।।
उस ओर खिले उपवन में ।
शिशु थी सौन्दर्य निधाना !

(१२२)

उसके घर की वह बारी ।
उसके श्रम से थी फूली ॥
फूलों में सुन्दरता थी ।
ममता माया ले भूली ॥

(१२३)

देखीं उसने निज माँ की ।
तुलसी दल की मञ्जरियाँ ॥
देखीं अपने हाथों की ।
रोपी चम्पे की कलियाँ ॥

(१२४)

काँटों से घिर-घिर कर भी ।
उसका पाटल हँसता था ॥
कटुता में कोमलता का ।
मृदु भाव सरस बसता था ॥

(१२५)

उसकी लम्बी आँखों में ।
छायी भव की कोमलता ॥
देखी उसने जब अपने ।
फल फूलों की निर्जलता ॥

(१२६)

धरती पर फूट रही थीं ।
पतली असमान दरारें ॥
मानव के अन्तस्तल की ।
मानों सन्तप्त पुकारें !

(१२७)

अथवा यह धरती माता।
मानों श्रम की हो भूखी॥
मानव की निष्क्रियता से।
बनती निर्जल हो रूखी॥

(१२८)

सम्बद्ध कुयें से जो थी।
जल की पक्की पौशाला॥
बैठी उस पर विधुलेखा।
कुछ देर यथा सुर बाला॥

(१२९)

खेली जब नीले जल से।
उसके हाथों की लाली॥
अलबेले नव यौवन से।
खेली कविता मतवाली॥

(१३०)

अपने गोरे हाथों से।
कसकर अपनी फिर सारी॥
मिट्टी के लाल कलश की।
उसने रस राशि सवाँरी॥

(१३१)

भर कर हाथों में उसने।
जल का जब कलश उठाया॥
उतरी मधुरामृत लेकर।
मानो सुन्दर बन माया॥

(१३२)

भर कर उन फल फूलों को।
जल के नव संवर्द्धन से॥
उसके लोचन चल पुलके।
चञ्चल बन कर खञ्जन से॥

(१३३)

वह अपनी द्रुम लतिकायें।
कुछ गा गा सींच रही थी॥
सुन्दरता कोमलता का।
अवगुण्ठन खींच रही थी॥

(१३४)

निस्तब्ध पवन में छाया।
उसका स्वर सुख में सान॥
भृङ्गों के मृदु गुञ्जन में।
गूँजा उसका यह गाना॥

(१३५)

धरती के धन फल फूल रे!
जीवन में यौवन जाग चुका, तू मत अपना पन भूल रे!
अपनी माया से भरता जा, गङ्गा यमुना के कूल रे!
मैं तुझ पर, तू मुझ पर रीझा, पा यह पीड़ा का शूल रे!
भावुक! भावों के झूले में, रस के रागों पर झूल रे!

(१३६)

इस मादक स्वर लहरी में।
विहगों के स्वर सकुचाये॥
धरती भर के धन बन कर।
फूलों के दल मुसकाये॥

(१३७)

घर से चौकड़ियाँ भरता।
मृग शावक दौड़ा आया॥
फिर सूँघ बहिन का अञ्चल।
उसने जो स्नेह जगाया॥

(१३८)

मानों उसके दर्शन को।
हंसों के उजले जोड़े॥
उतरे थे नीले नभ से।
अपना सुख संग्रह छोड़े॥

(१३९)

यौवन उसकी ममता में।
मतवाला बन बन छाया॥
उसके चञ्चल अञ्चल में।
जब मुक्त पवन लहराया॥

(१४०)

विधु का ऐसा नव दर्शन।
यह भाव हृदय में भरता॥
फूलों में रस भरने को।
उतरी भव की सुन्दरता॥

(१४१)

बस सींच लता द्रुम सारे।
उसने उत्कर्ष जगाया॥
फूलों के चारु चयन में।
उसने अब ध्यान लगाया॥

(१४२)

गा गा कर वह फूलों को।
हाथों से चुनती जाती।
जिनकी अनुपम सुन्दरता।
यौवन का मान जगाती॥

(१४३)

सहसा सन्मुख आँखों ने।
कुछ दृश्य नया ही देखा!
जब मुड़कर पीछे लौटी।
पङ्कज नयना विधुलेखा॥

(१४४)

श्रीहर्ष चले आते थे।
बोले वे "यों मैं आया"॥
भाभी द्वारा जाने क्यों?
चाची ने है बुलवाया॥

(१४५)

मैं आया था; बस उनसे।
सुनने कुछ और सुनाने॥
चलता हूँ, माँ कहती थी।
"हैं फूल कहीं से लाने"॥

(१४६)

सिर से सरकी सारी को।
अपने हाथों खिसकाती॥
बोली सुमुखी विधुलेखा।
सङ्कोच समेत लजाती॥

(१४७)

पूजा के फूल यहीं से।
प्रायः सब ले जाते हैं॥
जा यज्ञभूमि में माँ से।
मिल क्यों न अभी आते हैं!

(१४८)

बोले श्रीहर्ष उन्होंने।
जाने किस हेतु बुलाया!
मिलने का अवसर तुमने।
कितना उपयुक्त बताया!

(१४९)

अच्छा ये फूल सम्हालें।
कह विधु हाथों भर लाई॥
लेते देते फिर उनमें।
जागी जो स्नेह सगाई॥

(१५०)

उसका संवर्द्धन लाया।
वह सुखदस्पर्श सुहाया॥
जिससे दोनों के मन में।
भावातिरेक भर आया॥

(१५१)

अब दोनों की मति गति थी।
ममता माया की चेरी॥
दोनों ने ही दोनों पर।
सुन्दर आँखें थीं फेरी॥

(१५२)

फूलों की इस चिन्ता से।
बस आज मिला छुटकारा !
बोले श्रीहर्ष सदा को।
उपकृत अत्यन्त तुम्हारा !

(१५३)

पर मैं तो क्षम्य सदा हूँ,
ये फूल स्वतः उपकारी ॥
जिनकी मृदु मादकता से।
धरती ने सुकृति पसारी ॥

(१५४)

तुम चाची के आने पर।
मेरा कहना कर दोगी ?
बोले श्रीहर्ष स्वरों में।
धरती का धन भर दोगी ?

(१५५)

जाओ! तुम बहुत बुरे हो !
कहकर चम्पक लतिका से ॥
क्रीड़ा करती विधु बोली।
मिलना आकर कल माँ से !

(१५६)

अपने मन के मन्दिर में।
फूलों का हास बसाये ॥
यौवन की गुण गरिमा से।
वे निज निज घर को आये ॥

(१५७)

उन्मन बनकर बैठी थी।
घर पर सुमना विधुलेखा॥
अपने प्रिय जन का सम्बल।
उसने मानस में देखा॥

(१५८)

थे निज हृदयावेगों से।
श्रीहर्ष डूबते जाते॥
नारी की मृदु माया में।
अपने सद्भाव सजाते॥

(१५९)

उनके उन्मुक्त हृदय में।
भावों की उठी घटायें॥
उनमें जो गीत भरे थे।
वे स्नेह सुधा बरसायें!

(१६०)

वे लगे सोचने नारी!
तू केवल पुण्य स्वरूपा!
तू कितनी स्वच्छ सरल है!
तू कितनी मृदुल अनूपा!

(१६१)

इन यौवन के भावों से।
भव था नव वैभव पाता॥
जीवन जिसकी माया के।
गीतों में था लहराता॥

सप्तम सर्ग

(१)

पुण्यदा ! प्रसिद्ध भव्य भारत वसुन्धरा !
कवि की अशक्त लेखनी में प्राण भर दे !
लोक का समस्त काव्य वृत्त धन्य सर्वदा ।
प्राप्त कर तेरे स्नेह की अनन्त सम्पदा ॥

(२)

तेरे गान ध्यान में महानता भरी हुयी ।
स्वर्गादपि दिव्य मातृमेदिनी गरीयसी ॥
जीवन को यौवन अनन्त प्राप्त होगया ।
तेरी करुणा से आज लोक परलोक में ॥

(३)

बीत गये कल्प और बीते युग कितने ?
मस्तक महान किन्तु सर्वोन्नत आज भी ॥
शङ्कर की क्रीड़ा में-उमा की मुसकान में ।
तेरी स्नेहराशि है विराज रही मङ्गला ॥

(४)

मानस सरोवर में स्नेह सुधा भरती।
देती हुयी मति, गति और रति सिन्धु को॥
गङ्गा और यमुना के विमल प्रवाह में।
बह रही दिन रात तेरी करुणा कृपा॥

(५)

भारतीयता की विश्व व्यापिनी महानता।
देखता हिमालय खड़ा अनादि काल से॥
वसुधा बिखेरती है उसकी प्रसन्नता।
सर सरिताओं के स्वतन्त्र पुण्य पथ में॥

(६)

भागीरथी बनकर भाग्य की विकासिका।
प्राण भर प्राणों में घरों में अन्न भरती॥
लेकर प्रगति की प्रथा बड़ी सुहावनी।
जीवन में गति भरती है भानुनन्दिनी॥

(७)

आज कवि अपनी महान दृष्टि खोल दे!
आज पुण्य सकल सकेल खेल जान्हवी!
आज अपना प्रभूत वैभव सम्हाल ले!
लोक लाभ रङ्गिणी वृता कलिन्द नन्दिनी॥

(८)

दिव्य नव शक्ति और गौरव स्वदेश के।
बैठे कवि दम्पति सुहावने अजिर में॥
पास मनभावना है तारक मचलता।
सुख सम्पदा के बीच पुण्य की कला यथा॥

(९)

स्नेह भरे पुत्र के प्रफुल्ल चन्द्रमुख में।
बालारुण हुलस हुलास भरने लगा॥
भाग्यमान दम्पति के बन्धन हृदय के।
खोलता था; डोल डोल मृदुल समीर भी॥

(१०)

पूजा की समाप्ति के सुगन्धित प्रमाण से।
महक रहा था सारा घर अग्निहोत्र से॥
कवि थे स्वतः मूर्तिमान गृहधर्म से।
रत्ना गृहलक्ष्मी सी सुशोभिता समीप थी॥

(११)

कोमल करों से शिरोवस्त्र खींचता हुआ।
जननी के पीछे दिखा तारक किलकता॥
मानों कविता के अर्थ गौरव की आड़ में।
खेल रहा पुण्य आज रस का प्रसार ले॥

(१२)

जननी ने चारु कम्बु कण्ठ मोड़ करके।
हँसकर पकड़े युगल कर पुत्र के॥
अड़कर तानकर मृदुल शरीर को।
तारक दिखाने लगा लीला बालहठ की॥

(१३)

पुत्र को सप्रेम दोनों हाथों से समेटती।
स्नेहमयी जननी ने ले बिठाया सामने॥
किन्तु अब तारक तनिक कुछ ढील पा।
पहुँचा पिता के पास घुटनों के बल से॥

(१४)

उसके प्रफुल्ल मुसकान से सने हुये।
दिख पड़े विकसित अधर गुलाब से।।
मोद भी बिनोद भी पिता के मन भरते।
चमक उठे वे दूध के दो दाँत उजले।।

(१५)

चञ्चल विलोचनों में कौतुक भरे हुये।
पाकर सहारा कुछ अपने जनक का।।
अस्थिर पगों से डगमग डग भरता।
विहस पिता के पास तारक खड़ा हुआ।।

(१६)

चन्दन से चर्चित पिता के उच्च भाल को।
देखकर तारक चकित जैसा होगया।।
दायें हाथ की उठा अँगुलियाँ मनोहरा।
ध्यानमग्न होकर खरोंचने उसे लगा।।

(१७)

बोले कवि शिशु को सस्नेह रोकते हुये।
सीखा है कहाँ से यह तूने खेल बोल तो?
अपनी भुजाओं में उठा वे उसे यों दिखे।
शैशव से खेलता ज्यों यौवन समूर्त हो।।

(१८)

ज्योंही युग बाहुओं से ऊपर उछाल वे।
विहस खिलाने लगे उस प्रिय पुत्र को।।
क्या है यह! अरे! कहीं यह किया जाता है?
दूध डाल देगा बोली जननी समाकुला।।

(१६)

दूध डाल देगा तो पिलाना तुम फिर से।
सुनकर प्रिय से प्रिया ने कहा यह क्या?
बातें ये अवाञ्छनीया कैसी तुम कहते?
सोहती न हैं ये अपने पिता के मुख से॥

(२०)

मैंने कुछ वैसी बात तो यह कही नहीं।
यह कह प्रिया को सहज प्रश्न दृष्टि से॥
देखा प्रिय ने सपुण्य पौरुष विलोकता।
माधुरी निधाना लोक लोचना कला को ज्यों!

(२१)

छूट कर तारक पिता के बाहुपाश से।
दौड़ा घुटनों के बल जननी की ओर को॥
छन्द बन्धनों से बद्ध काव्य यथा मुक्त हो।
मूर्तिमान जारहा कला की गोद भरने॥

(२२)

रत्ना ने प्रसन्नता से भर निज गोद में।
अञ्चल से ढककर पुत्र को छिपा लिया॥
प्यार से—दुलार से छिपाती निज अङ्क में।
गिरिजा गणेश को जयन्त को शची यथा॥

(२३)

फूट पड़ा अञ्चल से जीवन भी मुक्त हो।
उज्ज्वलता जिसमें भरी थी लोकशक्ति की॥
जिसकी मिठास से समुर्वरा वसुन्धरा।
पौरुष के प्राण जिसकी कृपा से पलते॥

(२४)

अमरों ने अमृत नरों ने दुग्ध नाम दे।
जिसकी पसारी सर्वदा अनन्त कीर्ति है॥
शैशव के हास में जवानी के विलास में।
भरी हुयी जिसकी महा मधुर कविता॥

(२५)

तारक प्रशान्त ध्यान मग्न बाल ऋषि सा।
पी रहा था दूध जननी का पुण्य रस जो॥
जिसमें अनन्त स्नेह की कथा लिये हुये।
राजता धरित्री का महान मातृसत्व था॥

(२६)

फैल गयी माँ की ममता से पुण्य राशि जो।
उसने जगायी मनोहारिता प्रकृति में।
प्रतिभा प्रभाकर की नूतन प्रगति ले।
चारों ओर फैली थी प्रभा विकीर्ण करने॥

(२७)

मृदु मन्द शीत से पवन मृदुला बनी।
सप्त अश्व युक्त दिवापति हँसने लगे॥
अविराम वैभव विलास ढालने लगा।
डोलिता सस्नेह हुयी कोमला तुलसिका॥

(२८)

पारिजात पास का झुका सुगन्ध भार से।
आँगन की भूमि में बसी प्रशस्त छवि थी॥
जननी के योग से—पिता के पुण्य भोग से।
जागा गृहधर्म विश्व की पवित्रता बढ़ी॥

(२९)

जाग गयी जीवन की मञ्जुता सुहावनी ।
फूट पड़ा यौवन लिये प्रगति-शीलता ॥
ऊँची परमार्थ की पताका फहरा उठी ।
हो गयी प्रदीप्त पुण्य ज्योति से वसुन्धरा ॥

(३०)

निकला सुहास अपनी बिखेरता हुआ ।
जननी के अञ्चल से पुत्र पूर्ण तृप्त हो ॥
पार कर बादलों के धवल प्रसार को ।
हँसता मृगाङ्क यथा लोक रञ्जनार्थ है ॥

(३१)

हाथों को बढ़ाता, घुटनों से चलता हुआ ।
पहुँचा पिता के पास आँखों में हुलास ले ॥
किन्तु देख उनको बढ़ाते हाथ अपने ।
लौटा जननी की ओर फिर हँसता हुआ ॥

(३२)

चातुरी से जननी की पीठ से चिपकता ।
दक्षिण की ओर कम्बुकण्ठ लघु मोड़ता ॥
काजल से काले लम्बे लोचनों में हँसता ।
तारक पिता की ओर अब झाँकने लगा ॥

(३३)

पास रखे कुन्द के प्रसून हाथ से उठा ।
कवि एक एक पुत्र पर फेंकने लगे ॥
जिनकी विकचता सहज सकुचा उठी ।
उसके कपोलों और अधरों को चूमती ॥

(३४)

फूल लगते ही लोल लोचनों को मीचता।
पाकर विराम फिर कुछ खोलता उन्हें॥
दिख पड़ा तारक मधुर रस ढालता।
जननी के सुख में—जनक के विलास में॥

(३५)

तारक से लग लग फूल गिरने लगे।
माँ के आसपास जब सरस सुगन्ध ले॥
जागी तब कल्पना नवीनता पसारती।
प्राण हुये पावन प्रफुल्ल मन भी हुआ॥

(३६)

मञ्जु बाल लीला के मृदुल सहयोग से।
प्रिय थे प्रिया की सविनोद गोद भरते॥
मानों शारदा पर चढ़ाता पुष्प राशि था।
मूर्तिमान काव्य रस को निमित्त सा बना॥

(३७)

रला उन एक एक फूलों को समेटती।
और रखती थी मुसकाती हुयी सामने॥
मानों पुण्य पर्व में गिरा सरोज लोचना।
करती हो स्वजन की सफल उपासना॥

(३८)

अपनी मृणाल सी सुहावनी भुजाओं को।
माँ ने पृष्ठ देश पर सहसा झुका दिया॥
फूलों की मनोज्ञ खिलवाड़ की समाप्ति में।
जकड़ गया सपत्र जननी के स्नेह में॥

(३६)

उसके गुलाब जैसे युगल कपोलों में ।
अपने ललाम अधरों की छाप डालती ।।
भर मातृसत्व की महानता हृदय में ।
रत्ना ने बिठाया फिर तारक को सामने ।

(४०)

फूले हुये उजले प्रसून देखता हुआ ।
लोचनों में लीलावश लास भरता हुआ ।।
गोरे और अरुण मृदुल लघु हाथों से ।
तारक उठाकर वे फूल खेलने लगा ।।

(४१)

माँ के इस भाग्य में—पिता के अनुराग में ।
बेटे ने जगाया दिव्य सुख जिसमें दिखा ।।
जीवन के पुण्य और कीर्ति की कला लिये ।
खेलता विकास भावना की भव्य गोद में ।।

(४२)

अपने सुपुत्र की मनोज्ञ रस राशि से ।
जागी जननी की पूत पुण्य भरी भावना ।।
उसने सहर्ष पाणि पल्लव बढ़ा दिये ।
शैशव की राशि से प्रशस्त हाथ उसके ।।

(४३)

अस्फुट हुङ्कार से किलक की मिठास में ।
जितनी अपूर्व स्नेह भावना समा गयी ।।
भव ने सदा ही अनमोल उसको कहा ।
उसका कवित्व मोल आँक सकता कहाँ ।

(४४)

माँ के पाणि पल्लवों में प्यार की हुलास से।
तारक ने जितनी दिखायी अपनी कला ॥
आज घर घर उसकी है छाप अङ्किता।
छायी है उसी की विश्व में सरस कविता ॥

(४५)

बेटे को सहर्ष निज वाम पार्श्व में छिपा।
माता फिर प्यार भरे हाथ फेरने लगी ॥
सहज स्वभाव से गले में पुत्र चिपका।
कल्प लतिका में यथा विकच प्रसून हो ॥

(४६)

बेटे के प्रसाद से पिता के मृदु मन में।
माँ की अलबेली स्नेह राशि बस सी गयी ॥
स्नेह का सुयश लोचनों में लहरा उठा।
जागीं सुप्त सरस प्रवृत्तियाँ हृदय की ॥

(४७)

भर गये लोचन सरोज स्नेह जल से।
कण्ठ हुआ गद्गद, हृदय विचलित सा !
लोम लोम देह के सरसता विभोर थे।
तन भी प्रसन्न और मन भी प्रसन्न था ॥

(४८)

उत्तरीय से विलोचनों का हर्ष रोकते।
भावना विभोर मन में हुलास भरते ॥
प्रिय ने प्रिया से भाव भर चित्त में कहा।
स्मृति भी न शेष मेरी माँ की मुझ में रही !

(४९)

बोली कुछ रुककर रत्ना प्राणपति से।
बस लो समझ उनका ही पुण्य यह है॥
जिससे हमारे इस अस्तव्यस्त भाग्य के।
प्राण हैं प्रशस्त; कल गान भी प्रशस्त हैं॥

(५०)

अन्यथा तुम्हारे उस शैशव की आपदा।
जिसमें सुखद दिन थे बने भयावने॥
कितनी कठोर—कितनी थी दुःखदायिनी।
उसमें भरी समस्त विधि की विडम्बना॥

(५१)

घोर जलप्लावन से सकुशल बचना।
यत्र तत्र लोक में अनाथ हो भटकना॥
भूख की लिये हुये विडम्बना भयावनी।
वस्त्रहीन शीत में सदैव ही ठिठुरना॥

(५२)

कल्पना भी जिनकी रुलाती आज चित्त को।
झेल गये वैसी आपदायें तुम खेल सी॥
हँसते हो अब भी कहानी जिनकी सुना।
बस उस जननी के पुण्य के प्रसाद से॥

(५३)

उनके ही पुण्य से उन्हीं की पूत-पूर्ति सी।
चाची मुझको मिलीं पितृव्य तुमको मिले॥
विधु सी बहिन तुम्हें, देवर जी मुझको।
करुणा कृपा से उनकी ही प्राप्त हो गये॥

(५४)

साधुओं के दल से अचानक ही भागना।
यातनायें झेल भगवान को पुकारना॥
गुरुदेव का तुम्हें विपत्ति में सम्हालना।
विद्या प्राप्ति आदि, पुण्य फल जननी के हैं॥

(५५)

फिर मेरा मञ्जु नेत्र तारा यह लाड़ला।
कोमल कमल सा गुलाब सा सुहावना॥
मुझको तो प्रिय वस्तुतः ही जान पड़ता।
पुण्यफल अपनी शुभा पितामही का है॥

(५६)

यह कह नीर भरे लोचनों के लास को।
रत्ना ने झुकाया निज बेटे के कपोलों में॥
माँ के लाल अधरों के सरस सुयोग से।
शैशव के हास का विलास जिनमें जगा॥

(५७)

बोले कवि किन्तु इस पुण्य का प्रभाव ही।
छेदता है हृदय हजार गुना तीव्र हो॥
दुःख की दुसह पीर पाती वृद्धि इससे।
मन की अधिक बढ़ती है विकलाङ्गता॥

(५८)

मेरी इस आज की समृद्धि पर जब मैं।
सोचता हूँ तब तब मन है उबलता॥
अन्तर में एक उठती है तीव्र हूक सी।
वेदना विभोर बनती विचार शृङ्खला॥

(५६)

मेरा यह भौतिक सुयश किस काम का !
व्यर्थ है पाण्डित्य-पूर्ण मेरी व्याप्त प्रतिभा !
व्यर्थ मेरा काव्य ! व्यर्थ मेरी भाव व्यञ्जना !
जननी के पावन प्रसाद प्राप्ति के बिना ॥

(६०)

यदि वह पुत्र से तुम्हारी भरी गोद को।
देख सकतीं कहीं महा प्रसन्नता भरी ॥
मेरे इस आज के महान लोक काव्य को।
मिलती अलौकिक, जहान में सफलता ॥

(६१)

माता की, पिता की, भाइयों की स्नेह-राशि ने
तुमको खिलाया है विकास भरी गोद में ॥
केवल सुखों से पूर्ण तुमतो सदैव थीं।
तुममें अभावों की सदैव रही अज्ञता ॥

(६२)

निद्रित सुपुत्र को सुलाती मञ्जु हृदया।
बड़े बड़े लोचनों से देख प्राणधन को ॥
बोली यह अर्थ पर होता नहीं इसका।
कल्पना कि दुःख की नहीं मैं कर सकती ॥

(६३)

कल ही तो तुमने कहा था भूल क्यों रहे ?
बाधाहीन जीवन में हीनता पनपती ॥
नष्ट कर जीवन की विघ्न और बाधायें।
पुरुषार्थ विश्व का सशक्त बनता सदा ॥

(६४)

पाकर तुम्हारे पुरुषार्थ की महानता।
क्यों न मैं सराहूँ अपने विशद भाग्य को ?
मैं न क्यों कहूँ कि सहधर्मिणी मैं उसकी।
जिसने गढ़ा है अपना भविष्य आप ही ॥

(६५)

मानव भले ही दिव्यता वरण कर ले।
लाँघ जाय ज्ञान के अगाध पारावर को ॥
कर ले स्ववश भले पूर्णतः प्रकृति को।
अल्पता न छोड़ती परन्तु साथ उसका ॥

(६६)

उठ जाय जीवन से यदि यह अल्पता।
तो न क्या विकास ही रुकेगा इस विश्व का ?
सोचो इस अल्पता में कितनी प्रगति है ?
कितना अखण्ड पुरुषार्थ इसमें भरा ?

(६७)

जीवन भी इस अल्पता का परिणाम है।
जिसका विपाक मृत्यु की अदम्य गति है ॥
मृत्यु के प्रसाद में समस्त विश्व बसता।
मानव की यह अल्पता ही परिपूर्णता ॥

(६८)

इस अल्पता के परिणाम से मनुष्य को।
भोगने अनेक परिताप पड़ जाते हैं ॥
जिनका स्वबल से शमन करना सदा।
श्रेयस्कर मार्ग है—परम पुरुषार्थ है ॥

(६९)

मेरे प्राणनाथ ! उन दुःख के दिनों में भी ।
तुम थे सतत श्रेय मार्ग खोजते रहे ॥
विश्व की प्रताड़ना न बदल तुम्हें सकी ।
तुम नतमस्तक न उनसे कभी हुये ॥

(७०)

आज की तुम्हारी यह वेदना हृदय की।
पुण्यमयी याद यह जननी की विह्वला ॥
जितनी करुण है सरस उतनी ही है।
परम पुनीता यह प्रक्रिया-हृदय की ॥

(७१)

पर वर्तमान की रुचिर साधना लिये।
आज तो अतीत करुणा विभोर उतरा ॥
स्नेहमयी जननी की अतुल दया मया ।
आज है तुम्हारे इस तारक में खेलती ॥

(७२)

प्रियतम ! वेदना की तीव्र अनुभूति ही।
तुम कहते हो कविता का प्राण बनती ॥
फिर उस वेदना के वन्द्य उपहार को।
हम तुम स्वीकृत करें न क्यों प्रसन्न हो ?

(७३)

छोड़कर नीरस विषण्णता हृदय की।
जननी के नव अनुराग बन बोल दो ॥
हृदय सरोज के सरस मकरन्द के।
भावुक मिलिन्द रस का रहस्य खोल दो ॥

(७४)

यह मृदु भक्ति सी तुम्हारी नव शक्ति ही।
सो रही है पास पड़ी शिशु के स्वरूप में ॥
कवि की अलौकिका वरेण्य दिव्य दृष्टि से।
देखो कविता की मञ्जु राशि यह कोमला ॥

(७५)

सुन यह स्नेह से विकल उस योग में।
कस लिया प्रिय ने प्रिया को बाहुपाश में ॥
लोचन ललाम लोचनों को चूम उलझे।
मिल गये अधरों से अधर प्रवाल भी ॥

(७६)

असमय चातक पुकार उठा "पी कहाँ" !
बोल उठी असमय कोकिला "कुहू कुहू" !
गूँज उठे रसिक मिलिन्द मकरन्द के !
नाच उठीं प्यार से लुभावनी तितलियाँ !

(७७)

झड़ पड़े कोमल प्रसून पारिजात के !
दाड़िम के फल भी दरक हँसने लगे !
आँगन की भूमि भी प्रसन्नवदना बनी !
समिधा सुहावनी सुगन्ध लिये महकी !

(७८)

दम्पति के जिस परिरम्भण के व्याज से।
जाग उठा सरस कवित्व कल्पना खिली ॥
वह बने वरद प्रतीक विश्व स्नेह का !
सर्वदा उसी के गुरु गौरव की जय हो !

(७९)

स्नेह के प्रसन्न परिपक्व चारु फल से ।
दम्पति प्रसन्न चित्त वार्तालाप रत थे ॥
धर्म और साधना यथा विवाद रत हों ।
विश्व के हितार्थ श्रेय मार्ग की प्रशोध में ॥

(८०)

बोले कवि उर की करुण अनुभूति ही ।
मानव की अल्पता का सहज विकास है ॥
इससे उपेक्षणीया यह न कदापि है ।
यह ही कहाती कविता की सहृदयता ॥

(८१)

भावुकता विश्व की इसी से है पनपती ।
मानव के मन की यही है मञ्जु चेतना ॥
निर्बलों का बल सबलों का ओज इसमें ।
पुण्य का प्रसार करता अनन्त काल से ॥

(८२)

यदि योगियों का धन सहज विराग है ।
यदि अनासक्ति की विभूति विश्व में बसी ॥
हम गृहपतियों की करुण विभावना ।
गतिमय करती है उनके विराम को ॥

(८३)

इसलिये यदि कहीं उचित विराग है ।
यदि कहीं विश्व में प्रशस्त अनासक्ति है ॥
देखलो तो दूसरी दिशा में यहाँ राजती ।
मानव हृदय की अनन्त सहृदयता ॥

(८४)

इस सहृदयता की भावना का बल है।
भावुक ही बस इसका हैं मोल जानते॥
आज के कठोर व्यवसायी जड़ता भरे।
विश्व के निमित्त यह मूर्खता की भूमिका॥

(८५)

पर अति सीधी यह सोचने की बात है।
भावुक जनों से कार्य क्यों सधे बड़े बड़े!
भावुकता शिवि की दधीचि हरिश्चन्द्र की।
विश्व में न बुद्धि गम्य बन सकती कभी॥

(८६)

सर्वार्पण राम का भरत की महानता।
भव में न कोरे बुद्धिवादियों के मान की॥
सीता की अचलता, सुदृढ़ता, सलग्नता।
बुद्धि का प्रताप नहीं शक्ति है हृदय की॥

(८७)

मैं न कहता हूँ, बुद्धि निन्द्य और हेय है॥
मैं न कहता हूँ, बुद्धिहीन यह विश्व हो॥
पर कहता हूँ, बुद्धि के महान योग में।
लोक रञ्जिनी भरी है भावना हृदय की॥

(८८)

बुद्धि का सदैव सार्थकत्व वहीं बसता।
हृदय जहाँ है अनुराग भरा मिलता॥
इस भाँति बुद्धि और हृदय की दिव्यता।
भरती है विश्व में सदैव रस माधुरी॥

(८९)

देता इतिहास इसका प्रमाण सर्वदा।
भावुकता बुद्धि के अभाव में भटकती ॥
किन्तु बन जाती विश्व के लिये अमङ्गला।
भावुकता हीन बुद्धि जड़ता की सङ्गिनी ॥

(९०)

अतएव भावना से बुद्धि का मिलाप ही।
भव की प्रगतिशीलता का पुण्य प्राण है॥
इसलिये बुद्धि के समादर के साथ ही।
भावना की श्रेष्ठता अधिक माननीय है॥

(९१)

मन्द मुसकान में अपूर्व चेतना भरे।
लोल लोचनों से माधुरी मधुर ढालती ॥
रस का महान मोल रसना से आँकती।
बोली प्राणपति से प्रमोदमयी वल्लभा ॥

(९२)

मेरा मतभेद स्वल्प मात्र अब शेष है।
मैंने भी कही थी अभी बात ठीक यह ही ॥
आज के विरूप, जड़ता से युक्त विश्व में।
बुद्धि का—हृदय का मिलाप श्रेयस्कर है ॥

(९३)

पर जो हृदय की महानता बखानते।
तुम हर बार भावना विभोर बनते ॥
उसमें विचार कर देखो पक्षपात है।
न्याय और तर्क इससे हैं हीन बनते ॥

(६४)

भावुकता बुद्धि से विलग जब से हुयी।
तब से हमारा इतिहास जीर्ण शीर्ण है ॥
छायी अकर्मण्यता इसी से यह तामसी।
देश पङ्गु होगया विकास छोड़ करके ॥

(६५)

यह सत्य बात है, सदा ही माननीय है ॥
भावना से काम सधते सदा बड़े बड़े ॥
यह कहने में मैं न तनिक हिचकती।
कोरी बुद्धि जड़ता का करती प्रसार है ॥

(६६)

किन्तु भावना को बुद्धि से महत्व दान दे।
मैं नहीं करूँगी भूल फिर फिर से वही ॥
जिससे हमारा देश मिल गया धूल में।
है फँसी गले में शतियों से पराधीनता ॥

(६७)

भावना का भूत हम पर चढ़ता गया।
बुद्धि जन्य सद्‌गुण सदैव को बिदा हुये ॥
होकर के भावना बिभोर हमने किये।
खण्ड खण्ड जाति के, समाज के, स्वदेश के ॥

(६८)

घर भी हमारे बट बट गिरते गये।
मन भी हमारे हट हट गिरते गये ॥
तन भी हमारे छट छट गिरते गये।
जन भी हमारे कट कट गिरते गये ॥

(९९)

भावुकता पर ही हमारी इस व्याधि का ।
उत्तरदायित्व है इसे सहर्ष मान लो ॥
देश को विनाश पूर्ण दुर्दिन भयावने ।
बुद्धि की प्रगति के बिना ही भोगने पड़े ॥

(१००)

भावना विभोर पुरुषों ने सर्वदा यहाँ ।
कुचला घरों में अपनी ही मातृशक्ति को ॥
कौन कह देगा इस सत्य को, असत्य है !
कौन अविचार की करेगा नहीं भर्त्सना ॥

(१०१)

भावुकता आज उतनी ही ग्रहणीय है ।
जितनी कि बुद्धि में प्रगतिशीलता भरे ॥
जिससे स्वदेश का, समाज का अहित हो ।
उस बुद्धि उस भावना को नमस्कार है !

(१०२)

इस नमस्कार को सरस करते हुये ।
भाभी के हृदय की जगा प्रसन्न भावना ॥
देवर ने सहसा विनम्र नमस्कार से ।
दे दिये नवीन प्राण प्रस्तुत प्रसङ्ग को ॥

(१०३)

आगये श्रीहर्ष और छागयी प्रसन्नता ।
दम्पति उमङ्ग से विभोर बन से गये ॥
देवर के स्वागत में स्नेह सा बिखेरती ।
आओ कहकर उठी रत्ना गजगामिनी ॥

(१०४)

आसन में बैठ उत्तरीय को सम्हालते।
कहने लगे श्रीहर्ष मञ्जुमना भाभी से॥
किस नमस्कार की बनी है आज योजना?
बात कौन सी थी कुछ मैं भी अब सुन लूँ!

(१०५)

अपने ललित लोचनों में लास भरती।
मुख से सुहासिनी गिरा को धन्य करती॥
मृदुता जगाती हृदयों में प्राण पोहती।
देवर से रत्ना स्नेहकामा कहने लगी॥

(१०६)

मध्यस्थता 'आप' नहीं 'तुम' बस करलो।
हृदय का बुद्धि का महत्व ही विवाद है॥
किसमें गुरुत्व है महानता है किसमें?
विश्व के हितार्थ परमार्थ रूप कौन है?

(१०७)

अच्छा इस विषय की अपनी मध्यस्थता।
स्वीकृत मुझे है अब निर्णय सुनाता हूँ॥
सुन कर देवर के मुख से वचन ये।
ठीक है सुना दो बस बोली पद्मलोचना॥

(१०८)

हँस कर बोले कवि अच्छी बात यह तो!
पूछकर मुझसे भी एक बार देखते!
स्वीकृत मुझे भी यहाँ होगी अथवा नहीं।
कौन जानता है किंतु म्हारी यों मध्यस्थता॥

(१०६)

सरस विनोद में प्रमोद भरते हुये।
अनुज ने अग्रज से मृदु स्वर में कहा ॥
न्याय और न्यायाधीश होते बस सर्वदा।
बाधा बन्धनों से मुक्त परम स्वतन्त्र भी ॥

(११०)

मैं हूँ न्यायाधीश से अधिक कुछ और भी।
भाभी ने सहर्ष है मध्यस्थ मुझको चुना ॥
भारत के ग्राम्यतंत्र का यही प्रतीक है।
इसमें उपासना भरी है मातृशक्ति की ॥

(१११)

बोले कवि यदि परतंत्रता के युग में।
भारत का वृद्ध लोकतंत्र रुचा तुमको ॥
तो मैं माने लेता हूँ तुम्हारी ही मध्यस्थता।
अब तो सुनोगे मेरी बातें कुछ ध्यान से ॥

(११२)

बोली मुसकाती प्रिय से हृदय वल्लभा।
वाह ! तुम मण्डन स्वपक्ष का ही चाहते ॥
चुपचाप मैं हूँ, चुपचाप तुम भी रहो।
देवर हमारे निर्वाचित न्यायाधीश हैं ॥

(११३)

बोले मुसकाकर श्रीहर्ष मृदुता भरे।
भावना की बुद्धि से उचित यदि तुलना ॥
तो फिर विवेक के सुवर्णमय क्षेत्र में।
पहले उचित स्थापना है भाव बुद्धि की ॥

(११४)

यदि अविवेक से समाश्रित हो भावना ।
डालती विपत्ति में है मानव समाज को !
तो वहीं विवेक भ्रष्ट बनकर बुद्धि भी ।
त्रास का महान हेतु बनती है विश्व में !

(११५)

कृष्ण का भरा है अनासक्ति योग इसमें ।
बुद्धि का महान मध्यमार्ग बस है यही ।।
राम का परम पुरुषोत्तमत्व इसमें ।
ऋषि मुनियों की पुण्यगाथा इसमें भरी ।।

(११६)

बोल उठी हर्षित हो रत्ना चारु लोचना ।
बस जीत मैं गयी समाप्त झगड़ा हुआ ।।
धन्यवाद तुमको उचित न्याय के लिये ।
बुद्धि की सहज गति मात्र ही विवेक है ।।

(११७)

बोले प्रिय प्रिया से तुम्हारी यह धारणा ।
उलट पलट कर और दृढ़ होगयी ।।
कैसे तुम समझ रही हो बात उलटी ।
भावना विवेक से कि जन्मजात शत्रुता ।।

(११८)

मचला हृदय अनुराग से भरा हुआ ।
लालिमा से आनन सरोज दीप्त हो उठा ।।
मृदु मुसकान अधरों में खिल सी उठी ।
बोली प्राणपति से हुलस प्राणवल्लभा ।।

(११६)

बैठो तुम मैं चली मुझे अनेक काम हैं।
व्यर्थ का विवाद मुझको नहीं है रुचता ॥
अपना तो ध्यान तुम्हें रहता नहीं कभी।
फिर तुम्हें अपनों की चिन्तना सताये क्यों ?

(१२०)

पड़कर आज के विवाद की लपेट में।
तुमको तो हार अपनी है दिखती नहीं।
मुझको जिताकर भी बोलो क्या उचित है ?
देवर जी यों ही भूख प्यास झेलते रहें।

(१२१)

बोले कवि सहज सरसता भरे हुये।
यदि हार भूख का सरल उपचार हो ॥
तो चलो मैं हार यहाँ अपनी ही मानता।
भूख की व्यथा से नहीं हार की व्यथा बड़ी ॥

(१२२)

भूख की महानता है स्वीकृत सदा हुयी !
भूख से व्यथित यह लोक जाने कब से !
भूख का प्रताप तो अवाच्य आदिकाल से !
भूख की प्रताड़ना है निपट अमङ्गला !

(१२३)

चल दी सहास उठ मत्त गज गामिनी।
बोल उठे नूपर कणित हुयी किङ्किणी ॥
भाग्य भरा अञ्चल खिसक पड़ा सिर से।
अलकें लुभावने कपोल चूमने लगीं ॥

(१२४)

आयी फिर लौट शीघ्रता सहित भामिनी ।
मञ्जुल करों में लिये थाल जलपान का ॥
रखते ही दूध के कटोरे भरे छलके ।
महकीं सुगन्ध भार वेष्टिता मिठाइयाँ ॥

(१२५)

दिख पड़ी पति और देवर के साथ में ।
जलपान देती हुयी रत्ना प्रियभाषिणी ॥
करती यथा हो परितोष गृहिणी बनी ।
राम का भरत का सुहासिनी विदेहजा ॥

(१२६)

जागकर तारक हँसाने लगा सबको ।
चाचा के कटोरे की मिठाई भर मुँह में ॥
दूध था पिता का छलकाता वह जा कभी ।
मुँह खोलता था कभी जननी के पास जा ॥

(१२७)

उस गृह धर्म के विलास के विकास में ।
भर दी समीर ने सरसता सुघरता ॥
नभ में धरा में जिसे प्राप्त कर छागयी ।
कवि मनभावनी लुभावती हो स्वच्छता ॥

(१२८)

वाटिकायें विकसीं सुरम्य वन हो गये ।
सर सरिताओं में विमल जल विलसा ॥
फूल फूल सुमन सुगन्ध भार से हिले ।
मन हुये परम प्रसन्न जन जन के ॥

(१२९)

द्रुम हिलने लगे लतायें डोलने लगीं।
हँस पड़ी सरसा सुहावनी वसुन्धरा॥
रवि की रसीली किरणों की कीर्ति छा गयी।
लहरों से खेली सुजला कलिन्द नन्दिनी॥

(१३०)

धरती की इस रम्यता की चारु छवि से।
कवि के हृदय ने प्रसाद दिव्य पा लिया॥
बोध जगा मन में विकास बसा भव में।
अन्तर से कविता प्रवाह लिये निकली॥

(१३१)

बोले कवि चाचा और चाची के प्रसाद से।
उनकी महानता से—भावना के बल से॥
हम में भरी है शक्ति और सहृदयता।
उपकृत हम सब उनके सदैव को॥

(१३२)

हम दोनों जन सम भाव से हैं जानते।
उनकी उदारता, महानता, कृपालुता॥
सम भाव से ही प्राप्त हमको सदैव है।
उनका सरलतम स्नेह इस लोक में॥

(१३३)

उनकी महान कामना की पूत पूर्ति में।
हम तुम तो सदैव एक मत हैं रहे॥
हमने बनाया निज पथ भी प्रशस्त है।
जीवन में उनकी ही प्रेरणाओं से सदा॥

(१३४)

विश्व वेदनाओं की करुण अनुभूति से।
हृदय प्रपूर्ण देखता हूँ जब अपना ॥
मानता हूँ तब अपने को भाग्यमान मैं ॥
लगता है दुःख वन्दनीय उपहार सा ॥

(१३५)

दुःख को बताना उपहार यों सहज है।
पर उसे जीवन में ढालना कठिन है ॥
यह कठिनाई न बिगाड़ हमको सकी।
माता पिता तुल्य चाचा चाची के प्रसाद से ॥

(१३६)

उनकी महान साधना का प्रतिफल सा।
है चतुर्थ आश्रम प्रवेश उनका बचा ॥
इसलिये हम सबका परम धर्म है।
उनकी बाधाओं के शमन में लगे रहें ॥

(१३७)

मेरी एक विनय सदा ही उनसे रही।
मानी है उन्होंने भी जिसे बड़े ही स्नेह से ॥
मेरी धारणा से विधु का विवाह करके।
चाचा का उचित श्रुति सम्मत विराग है ॥

(१३८)

अग्रज की बात का गुरुत्व मानते हुये।
सादर श्रीहर्ष बीच ही में बोल यों उठे ॥
चाचा की कृपा के साथ-साथ ही कहूँगा मैं।
आपकी सुसम्मति नितान्त माननीय है ॥

(१३९)

पाक के निमित्त चावलों को बीनती हुयी ।
देवर की बात सुन भाभी कहने लगी ॥
खुल गयी बात सब भेद जान मैं गयी ॥
देवर जी ! छिपते थे तुम बस मुझसे ॥

(१४०)

लुकने की छिपने की बात नहीं इसमें ।
भइय्या कहते हैं बात सीधी सी-सरल सी ॥
विधु के विवाह के निमित्त हमें व्यस्त हो ।
करना प्रयत्न है श्रीहर्ष कहने लगे ॥

(१४१)

'नहीं' कवि बोले मैं नहीं हूँ यह कहता ।
स्वीकृति तुम्हारी ही मैं इसमें हूँ चाहता ॥
सबकी है इच्छा—सबकी है यह लालसा ।
काकी का सुशासन ही प्राप्त होवे विधु को ॥

(१४२)

मैंने भली भाँति यह जान सब है लिया ।
काकी और चाची दोनों का ही यह मत है ॥
दोनों की न जाने कितनी पुरानी लालसा !
तुम बस हठवादिता से ठुकराते हो ॥

(१४३)

ठीक इसी क्षण द्वार के कपाट खटके ।
प्राप्त हुआ छात्र एक आँगन में सहसा ॥
कवि ने प्रथम विद्यापीठ की कुशलता ।
पूछकर प्यार से बिठाया उसे सामने ॥

(१४४)

छात्र ने प्रणाम कर कुल की कुशलता।
कर दी निवेदन प्रथम निज गुरु से॥
फिर कहा सद्य ही हुये हैं प्राप्त काशी से।
शिष्य-श्रेष्ठ गुरुदेव शेष सनातन के॥

(१४५)

पूज्यपाद ऋषि ने सशीघ्र वहाँ आपको।
स्नेह से बुलाया है परन्तु हम सब भी॥
सज्जित हैं होरहे समुत्सुक हृदय से।
केवल है आज्ञा की प्रतीक्षा भर सबको॥

(१४६)

फिर स्नेह राशि के गुरुत्व से भरा हुआ।
ऋषि का सुखद पत्र सादर दे गुरु को॥
सहज विनय से विनीत बन उसने।
फिर से बतायी कुल की हृदय कामना॥

(१४७)

कवि देखकर पत्र निज गुरुदेव का।
हर्ष से विभोर हुये विकसी प्रफुल्लता॥
मचली चपल हो सुभावना हृदय की।
चारु अधरों में मुसकान लगी खेलने॥

(१४८)

खोलने में पत्र के विपल बढ़ने लगे।
अन्तर की हलचल अति चञ्चला हुयी॥
लोचनों में व्यग्रता विपुल लगी नाचने!
धैर्य डिगने लगा हृदय डोलने लगा!

(१४९)

बाँचकर पत्र कवि बोले यों अनुज से।
गुरुदेव देखकर दैन्य इस देश का ॥
काशी में समस्त पण्डितों के सहयोग से।
मंत्रणा के हेतु परिषद हैं बुला रहे ॥

(१५०)

कब ? किस दिन परिषद हैं बुला रहे ?
कौन कौन से महान पण्डित पधारेंगे ?
हम लोग कब और किस दिन जायेंगे ?
रत्ना पूछने लगी, श्रीहर्ष कहने लगे ॥

(१५१)

प्रश्नों का उचित समाधान कर कवि ने।
छात्र को सप्रेम जलपान दे बिदा किया ॥
बोले तुम चलो मैं अभी हूँ वहाँ आ रहा।
कहना कि धैर्य मत छोड़ें सब लोग यों ॥

(१५२)

तारक उदास बैठा चाचा के समीप था।
चञ्चलता उसकी कहीं को लोप सी हुयी ॥
मुख में रही थी बढ़ लालिमा भयावनी।
आँखों से टपकता प्रखर ज्वर ताप था ॥

(१५३)

ज्योंही निज हाथों को बढ़ाकर श्रीहर्ष ने।
उसके युगल कर स्नेह वश पकड़े ॥
बोल उठे अरे ! यह क्या हुआ अभी अभी।
इतना प्रखर ज्वर है चढ़ा हुआ इसे !

(१५४)

रत्ना हतबुद्धि सी तुरन्त सुन होगयी।
पुत्र को उठाकर गले से लगा करके॥
बोली देखो ज्वर इसे कितना चढ़ा हुआ!
काशी का प्रयाण एक आध दिन रोक दो॥

(१५५)

ज्वर के प्रकोप के शमन के लिए यहाँ।
मेरा रुकना ही तो न कोई उपचार है॥
अब रुक जायेंगे श्रीहर्ष, कवि ने कहा।
तुम बस व्यर्थ इतने में घबरा उठीं!

(१५६)

काशी के प्रयाण को मना मैं नहीं करती।
जन्म से इसे न आज तक ज्वर है हुआ॥
एक आध दिन रुककर बस देख लो।
देवर से रत्ना कहने लगी व्यथित हो॥

(१५७)

कवि ने कहा कि परिषद् के प्रबन्ध में।
व्यस्त किस भाँति गुरुदेव होंगे इसका॥
कुछ तो विचार मन में भी अपने करो।
शीघ्र अब बोलो मैं रुकूँ कि ये रुकें यहाँ?

(१५८)

आँखें सजला हुयीं वदन कुम्हला गया।
मन घबराया प्रतिभा भी पथरा गयी॥
"देवर जी रह जायँ" निज प्राणपति से।
बोली अकुलाती हुयी रत्ना अति विह्वला॥

(१५६)

रोते हुये पुत्र से अधीर बनी जननी ।
बार बार थी उसे सस्नेह पुचकारती ॥
पानी माँग माँग अधरों को चाटता हुआ ।
तारक तृषित हो पिता को देखने लगा ॥

(१६०)

ज्वर से व्यथित पुत्र को प्रिया की गोद से ।
ज्योंही कवि ने लिया चकित जैसे होगये ॥
ओह ! ज्वर है बहुत यह कहते हुये ।
बोले कुछ पानी इसे देना ही उचित है ॥

(१६१)

लेकर के जल आयी रत्ना पुत्रवत्सला ।
कवि ने स्वतः ले पिलाया जल पुत्र को ॥
थोड़ा-थोड़ा पानी इसे थोड़ी थोड़ी देर में ।
देती रहो, बोले कवि फिर पुत्रप्राणा से ॥

(१६२)

यह कह बोले कवि बन्धु से यहीं रहो ।
जाकर मैं देखूँ समाचार विद्यापीठ के ॥
आज दोपहर का मुहूर्त बस ठीक है ।
शीघ्र है प्रयाण की व्यवस्था पूर्ण करनी ॥

(१६३)

कुछ देर बाद सारा गाँव व्यस्त हो गया ।
यही एक बात बस घर घर थी छिड़ी ॥
गुरु की परम मंत्रणा के हेतु जा रहे ।
कवि वाराणसी की महान परिषद् में ॥

(१६४)

कवि जब लौटे तब भीड़ लगी घर में।
दुःख से समस्त महिलायें थीं समाकुला॥
आयीं ज्वर तारक का सुनकर कमला।
भारती पधारीं, विधु आयी बन व्यथिता॥

(१६५)

कमला ने तारक को देख विधु से कहा।
जा तो द्वार पर और भइय्या को बुला तो ला!
प्राप्त हुये तत्क्षण समुत्सुक निदेश से।
कवि कुल तिलक श्रीपण्डित तुरन्त ही॥

(१६६)

कह उठीं कमला विनत धर्म पुत्र से।
जा रहा है छोड़ तू बहू को ऐसी स्थिति में॥
देख तो कि तारक को ज्वर चढ़ा कितना?
मैं न जानती थी कि तू इतना निठुर है!

(१६७)

बोल उठीं भारती कि बेटा! इस ज्वर में।
जा रहा है कैसे तू अकेली इसे छोड़ यों?
क्या तू एक दो दिन के बाद यदि पहुँचे।
तो कुछ बड़ी सी हानि होगी गुरुदेव को!

(१६८)

बोले कवि किस भाँति व्यर्थ ही समझ लूँ।
सारा घर बार कि मैं यों ही छोड़े जा रहा॥
काकी आप यहीं, चाचा चाची यहीं पर हैं।
विधु घर ही में है, श्रीहर्ष भी रुके यहीं॥

(१६९)

हठ इसकी तो है प्रसिद्ध गाँव भर में।
कहकर विधु को पुकार उठीं कमला॥
मङ्गल कलश चट पट वहाँ आगया।
बस थी प्रयाण की मुहूर्त पास आरही॥

(१७०)

कमला ने पुत्र को बिठाया पूर्व मुख को।
केसर का तिलक लगाया फिर भाल में॥
अक्षत छिड़क हाथ श्रीफल का फल दे।
कमला विनत हुयीं उस भगवान से॥

(१७१)

जिसकी रसज्ञता का परम प्रमाण थी।
विधु की अलौकिका स्वरूप रस माधुरी॥
जिसने गढ़ी थी रत्ना जैसी कुल कामिनी।
आहें भरने को तथा जीती जलने को ही!

(१७२)

आये विद्यानिधि चिन्तामणि देवगुरु से।
तारक को देखने को—देने कवि को बिदा॥
लोग सब उन्हें देखते ही खड़े होगये।
दिव्य ब्रह्मतेज की किसे न प्रिय अर्चना॥

(१७३)

काकी और चाची को प्रणाम कर कवि ने।
स्नेह से अनुज को अकेले बुला बात की॥
फिर निज मन की कुभावना दबाते वे।
प्यार कर विधु को भवन छोड़ निकले॥

(१७४)

अग्रजों को सादर प्रणाम करते हुये।
अनुजों को प्रेम से परम परितोष दे॥
नाव पर बैठे अपने अनेक शिष्य ले।
कवि करके प्रणाम पूज्य चिन्तामणि को॥

(१७५)

आज की विदा की करुणा की गोपनीयता !
उतरी भविष्य में बड़ी व्यथा बिखेरती !
सुनने को चाहिये जिसे हृदय वज्र सा !
लिखने को चाहिये कठोर निरी लेखनी !



अष्टम सर्ग

(१)

दुख के पहाड़ फाड़ती कैसे कलम चले !
दुर्दैव को बिसारती कैसे कलम चले !
बिगड़ी सभी सुधारती कैसे कलम चले !
जब वेदना पुकारती कैसे कलम चले !

(२)

वह कौन जो इस लेखनी की आन बचा ले !
वह कौन जो इस काव्य का सम्मान बचा ले !
वह कौन जो मिटते हुये अरमान बचा ले !
वह कौन जो दुख के दिनों में जान बचा ले !

(३)

घनघोर अन्धकार भरी रात होरही ।
तन मन का चल प्रखर पवन गुमान खोरही ॥
बादल के आँसुओं से भूमि दुःख धोरही ।
माँ पुत्र के परिताप से पागल सी होरही ॥

(४)

अन्तर की स्नेह भावना हृदय हिला रही।
बेचारगी संसार को अपनी सुना रही॥
जी को थी उबलती हुयी तड़प रुला रही।
ममता की पुण्य साधना आँसू बहा रही॥

(५)

वह धाम कौन सा जहाँ व्यथा है हारती ?
वह काम कौन सा जिसे दुनियाँ सवाँरती ?
वह नाम कौन सा जिसे न मौत मारती ?
वह राम कौन सा जिसे रत्ना पुकारती ?

(६)

घहरा रहा है आज गरज कर यह आसमान।
बिजली तड़प रही है अमावस का लिये मान॥
अन्तर है धड़कता कड़क से फट रहे हैं कान !
पावस बिना समय का है बेचैन सब जहान॥

(७)

माता का प्यार आज यह तारक पड़ा हुआ !
कवि का दुलार आज यह तारक पड़ा हुआ !
घर का सिँगार आज यह तारक पड़ा हुआ !
जीवन से हार आज यह तारक पड़ा हुआ !

(८)

उस फूल से बदन में यों फूटी थी शीतला !
बस मौत का सन्ताप ही मानों उभर चला !
आँखों की दृष्टि का भी था विश्वास घट चला !
माँ के दुलार प्यार का अञ्चल था फट चला !

(९)

बचपन सजीव मौत के फन्दे में फँस गया।
कारुण्य आज लोल लोचनों में धँस गया॥
सौन्दर्य में आपत्ति का संसार बस गया।
दुर्भाग्य का वैषम्य था जीवन को डस गया॥

(१०)

भव था विहीनता के प्रदाहों से भर रहा।
यह देव दीनता के गुनाहों से भर रहा॥
बेटे का अङ्ग अङ्ग था घावों से भर रहा।
माँ का हृदय था दुःख की आहों से भर रहा॥

(११)

माता के क्षुब्ध मन में था सन्ताप नाचता।
रजनी की कालिमा में तीव्र ताप नाचता॥
ममता की हिलोरों में था परिताप नाचता।
बरसात में था मृत्यु का अभिशाप नाचता॥

(१२)

आपत्ति के दिन शीघ्र नहीं साथ त्यागते।
जाने कहाँ कहाँ को व्यस्त प्राण भागते!
विधु साथ जागती तथा श्रीहर्ष जागते।
रत्ना के नयन राम से वरदान माँगते॥

(१३)

वह राम जो संसार का मालिक है कहाता।
वह राम जो करुणा कृपा की धार बहाता॥
वह राम जो सर्वत्र दीनबन्धु कहाता।
क्या आज सुनेगा उसे पुकारती माता ?

(१४)

तन की सम्हाल थी नहीं मन में थी दीनता।
सौन्दर्य में धसी थी शोक की मलीनता॥
आँखों से झाँकती थी तन बदन की हीनता।
माँ में जगी थी आज राम की अधीनता॥

(१५)

आँखों की वेदना से थीं कोरें भभर उठी।
बालों में शुष्कता की हिलोरें थीं भर उठी॥
सब दिन की भावनायें आज थीं हहर उठी।
अब तक की कल्पनायें आज थीं कहर उठी॥

(१६)

थी रात सनसना रही यौवन के जोम से।
धरती में वेदना भी बरसती थी व्योम से॥
बेटे के प्राण जलते थे जीवन के होम से।
आहें निकल रही थीं माँ के रोम रोम से॥

(१७)

पानी कभी देती कभी अलकें सवाँरती।
वह फिर कभी बिस्तर के थी कपड़े सुधारती।
ममता से अपनी वह बड़ी व्यथा पसारती।
बेटे का बार बार माँ थी मुँह निहारती॥

(१८)

विधु शोक से बुझता हुआ दीपक थी सँजोती।
बेटे को देख देख माँ थी व्यग्र सी होती॥
देवर ने जब कहा कि "तुम हो क्यों नहीं सोती"
रत्ना के लोचनों से बरसने लगे मोती॥

(१९)

सन्तप्त कलेजे की चेतना दहक पड़ी !
करुणा की कथा लोचनों से थी बहक पड़ी !
वह यातना कि या कहें व्यथा फफक पड़ी !
वह बोल उठी या कहें कि वह भभक पड़ी !

(२०)

बोली कपाल में लिखा मेरे कहाँ सोना !
सोना है आज रात का सर्वस्व का खोना !
सोने के बाद आज है देवर वही होना !
जीवन के लिये रात दिये जारही रोना !

(२१)

देवर ! मुझे दुर्दैव आज है सता रहा।
बेटा सा रत्न हाथ से खोया है जा रहा ॥
मेरा ममत्व जिस तरह सन्ताप पा रहा।
कहते हुये हृदय भी आज मुँह को आ रहा ॥

(२२)

देवर ! व्यथा के भाव हैं अन्तर से उबलते।
देखेंगी अखिल लोक की आँखें मुझे जलते ॥
दुर्भाग्य के आघात सम्हाले न सम्हलते।
मेरे कठोर प्राण निकाले न निकलते ॥

(२३)

वह धैर्य क्यों लगाए जिसका भाग्य फूटता !
वह दिल न क्यों जलाए जिसको दैव लूटता !
वह गाय कहाँ जाए जिससे पूत छूटता !
वह माँ ही क्यों कहाए जिससे राम रूठता !

(२४)

मातृत्व को अपने लजा मैं क्यों नहीं मरी !
माया मेरे हृदय की आज जारही हरी ॥
मँझधार में जीवन की डुबोनी थी जो तरी।
भगवान ने देवर ! तो मेरी गोद क्यों भरी !

(२५)

बतला दो मुझसी दीन का उद्धार है कहाँ !
मेरी दया मया का पुण्य द्वार है कहाँ !
मुझ दु:खिनी के दु:ख का विस्तार है कहाँ !
देवर ! बता दो अब मेरा संसार है कहाँ !

(२६)

मञ्जुल वसन्त में मेरे दावाग्नि उठ रही !
सुख के भरे सावन में मेरी साँस घुट रही !
यम की कठोरता मेरे आँगन में जुट रही !
माता की सम्पदा सदा को आज लुट रही !

(२७)

फिर पुत्र को निहार माँ पुकार यों उठी।
करुणा की तरङ्गों में एक धार यों उठी ॥
मानस की महा वेदना अपार यों उठी।
हो स्नेह सिन्धु में प्रलय पुकार ज्यों उठी ॥

(२८)

मेरे दुलार ! तू मुझे क्यों आज है छलता !
शृङ्गार मेरे ! क्यों न कूदता न उछलता !
मेरे विहार ! क्यों मेरे आँगन में न चलता !
चाचा की गोद में न क्यों उठ कर तू मचलता !

(२९)

बाबा को अपने खेल तू हँस डोल खिला जा !
अपनी परम प्रसन्नता अनमोल दिखा जा !
कानों में फिर से प्यार के दो बोल सुना जा !
तू लाल मेरे दूध का तो मोल चुका जा !

(३०)

मेरे हृदय का सार ! मुझे छोड़ क्यों रहा !
मेरा हृदय आधार ! मुझे छोड़ क्यों रहा !
मेरे हृदय का प्यार ! मुझे छोड़ क्यों रहा !
मेरा सुभग सिँगार ! मुझे छोड़ क्यों रहा !

(३१)

प्राणों के तू प्यारे मेरे आँसू भरे निहार !
जीवन के सहारे मेरी ममता न यों बिसार !
इस दिल के दुलारे जरा अपनी हँसी पसार !
आँखों के सितारे मुझे माँ कह दे एक बार !

(३२)

मेरे सपूत उठके मेरी गोद में आ जा !
बेटा मेरे दुर्भाग्य का यह जाल हटा जा !
प्राणों के मेरे प्राण इस हृदय में समा जा !
मेरी व्यथा की आग मेरे लाल बुझा जा !

(३३)

बालों का उठ के लाल ! तू शृङ्गार करा ले !
नयनों में तू बेटे मेरे ! काजल तो दिवा ले !
दुख से कलपती माँ को तू हँस करके हँसा ले !
मेरे हृदय के धन ! मुझे माँ कह के बुला ले !

(३४)

बन की विहङ्गिनी सी मैं पाँखें पसारती।
जीवन की उदासीनता मुझे है मारती॥
यह रात तेरे दुःख में सब कुछ विसारती!
हे पूत! बोल दे तुझे माता पुकारती!

(३५)

उठकर तो जरा बैठ मेरे कृष्ण कन्हइया!
छाती से लगाकर मैं तेरी ले लूँ बलइय्या॥
तू मौन क्यों जीवन की मेरे ज्योति जगइय्या!
तू पूत बोल दे तुझे पुकारती मइय्या॥

(३६)

रो रो के यों पागल सी माँ रही पुकारती।
पत्थर के केलेजे को भी करुणा से फाड़ती॥
वह रात अँधेरी भी थी दुख से चिघाड़ती।
बरसी वियोग की घटा व्यथा पसारती॥

(३७)

वर्षा को भी यह दुःख महा भार हो उठा!
चञ्चल समीर तीव्र हो आधार खो उठा!
जीवन में आज यह प्रलय संहार हो उठा!
माता के इस विलाप से संसार रो उठा!

(३८)

विधु के व्यथा भरे नयन कराह रहे थे।
श्रीहर्ष भी परिताप से भर आह रहे थे॥
सबके दिलों में उठ नये प्रदाह रहे थे।
जीवन से भली मौत सभी चाह रहे थे॥

(३९)

पर मौत थी आयी हुयी बेटे को उठाने।
माता के तड़पते हुये हृदय को रुलाने॥
वह चाहती थी कोई चल सकें न बहाने।
कहते ही रहें दुःखमय संसार सयाने॥

(४०)

जीवन में बच रहा था कलपने का सहारा।
बरसी व्यथा हृदय ने ज्ञान मान बिसारा॥
फूटी वियोग से भरी कारुण्य की धारा।
बेटे ने ज्योंही विह्वला माता को निहारा॥

(४१)

फटते हृदय से चिर व्यथा के भाव जुड़ गये!
संसार से सब स्नेह के व्यापार मुड़ गये!
माँ के दुलार प्यार सदा को बिछुड़ गये!
बेटे के न जाने कहाँ को प्राण उड़ गये!

(४२)

बस, शोक के आवेग ने सब कुछ था ढक दिया॥
काली निशा ने नाश का अञ्चल झटक दिया।
बादल ने कड़क धैर्य को फिर से हटक दिया॥
बेटे के तल्प पर जा माँ ने सिर पटक दिया॥

(४३)

जलहीन मीन सी यह कलपने लगी माता।
बेटे के शोक से यह विलपने लगी माता॥
इस चिर व्यथा की आग से जलने लगी माता।
अन्तर की कसक से यह तड़पने लगी माता॥

(४४)

बेटे के मृत शरीर को छाती से लगाये।
यौवन की साधना में चिर विलाप बसाये॥
जीवन की कामना में यातना यह जगाये।
रत्ना बिलख रही थी ज्ञान ध्यान नसाये॥

(४५)

सिर से बहे लहू ने उसे लाल था किया।
बस वेदना ने अब उसे विकराल था किया।
दिल के प्रदाह ने उसे बिहाल था किया।
उसका टो दुर्दिनों ने बुरा हाल था किया॥

(४६)

बेटे की यातना लिये यथा हो पार्वती।
मानों वियोग से जली हुई अरुन्धती॥
धीरज बचा रखे हृदय में कौन सा व्रती।
रत्ना सी रो उठे जहान में जहाँ सती॥

(४७)

बोली मेरे दोनों नयन ये क्यों न फूटते!
लुटती मुझे ये देख रहे क्यों न टूटते!
अपने हृदय के धन को देखती मैं छूटते!
ये तो दिनों के फेर मुझे घेर लूटते!

(४८)

जिन लोचनों ने लाल का लावण्य निहारा।
जीवन में जिन्होंने सदैव पुण्य पसारा॥
छूटा उन्हीं का आज स्नेहपूर्ण सहारा।
सोया सदैव को उन्हीं आँखों का सितारा॥

(४६)

छाया हुआ है आज सभी ओर अँधेरा।
जीवन का शूल बनके आरहा है सबेरा॥
उस मौत के तूफान में संसार का डेरा।
जिसने मिटा दिया मेरे सुखों का बसेरा॥

(५०)

सुख के सुयोग में अरे! परिताप छा गया!
सौभाग्य में कैसा हरे! अभिशाप छागया!
मेरे वसन्त में क्यों यह सन्ताप छागया!
जीवन के मेरे पुण्य में क्यों पाप छागया!

(५१)

तू लाल! मुझे छोड़कर कहाँ चला गया!
माता से तू मुँह मोड़कर कहाँ चला गया!
तू स्नेह जाल तोड़कर कहाँ चला गया!
तू यह हृदय निचोड़ कर कहाँ चला गया!

(५२)

अपने पिता का तू कवित्व वह विशाल था।
जिसमें मेरे सुखों का भरा रश्मि जाल था॥
तू लाल मेरी गोद का वह फल रसाल था।
मातृत्व जिसे पा सदैव को निहाल था॥

(५३)

आँगन में मेरे कौन धूम अब मचायगा!
अपनी हँसी की कौन अब सुधा बहायगा!
अब मुझको कौन जो हँसायगा खिलायगा!
जीवन की स्नेह ज्योति कौन अब जगायगा!

(५४)

सुख स्नेह का सौभाग्य का जीवन विमल कहाँ!
मानस की जाह्नवी का मेरा दिव्य जल कहाँ!
यौवन की मेरी साध कहाँ! पुण्य फल कहाँ!
भव की विमुक्ति का मेरा वह पथ सरल कहाँ!

(५५)

मैं किसको नित्य दूध भात अब खिलाऊँगी!
सिर गूँथ अब से किसका मैं यह मन रिझाऊँगी!
नयनों में किसके कल से मैं काजल लगाऊँगी!
किसके ललाट पर मैं डिठौना सजाऊँगी!

(५६)

प्राणों में प्राण प्राप्त थे संसार था नया।
मेरे हृदय माधुर्य का विस्तार था नया॥
पर इस नवीनता में छोड़कर दया मया।
किस देश को मेरे सपूत! तू चला गया!

(५७)

जीवन के पुण्यकाम! मुझे छोड़ कर न जा!
यौवन के फल ललाम! मुझे छोड़कर न जा!
व्रज के मेरे घनश्याम! मुझे छोड़कर न जा!
मेरे अवध के राम! मुझे छोड़कर न जा!

(५८)

अपनी जलन में दर्द भरे प्राण छिपाये।
अन्तर में अपने मृत्यु का आह्वान बसाये॥
इस भाँति वेदना का अग्निगान जगाये।
रत्ना थी रोरही हृदय में आग लगाये॥

(५९)

करुणा की यह कथा तो वेदना ने जगायी।
रोने के लिये दिल ने नयी सृष्टि बसायी ॥
जीवन ने तड़पने के लिये आग लगायी ॥
दुनियाँ की व्यथा माँ के लोचनों में समायी ॥

(६०)

माता के लोचनों के साथ होड़ लगाये।
अब तक तो बरसते थे मेघ व्योम में छाये ॥
दोनों में कालिमा बसी व्यथा को जगाये।
दोनों ने वेदना के शोक सिन्धु बहाये ॥

(६१)

पर कहाँ माता के छलकते हुये नयन!
बादल का कहाँ वह सदैव का अतृप्त मन!
बरसात से बढ़ी थी कलेजे की जो जलन!
मानों उसी का सृष्टि कर रही थी अब शमन!

(६२)

न रो सका व्योम सदैव के लिये।
न रो सकी दग्धमना वसुन्धरा ॥
सदा व्यथा से न समीर रो सका।
न रो सकी शोक भरी विभावरी ॥

(६३)

रुका महा मेह दुखातिरेक से।
उड़े घनों के दल दूर देश को ॥
धँसी न जाने दुख से जली कहाँ!
अचञ्चला प्राणविहीन दामिनी ॥

(६४)

परन्तु माँ के उर के प्रदाह में।
न शान्ति आयी लवलेश के लिये ॥
न लोचनों का रुकता प्रवाह था।
प्रताड़ना वेगवती न थी रुकी ॥

(६५)

समीप श्रीहर्ष स्वबोध हीन थे।
समीप ही थी विधु शोक सङ्कुला ॥
समीप ही थीं कमला जरार्जिता ।
समीप थीं शोक समेत भारती ॥

(६६)

स्वपौत्र की सी यह मृत्यु देखती।
समीप ही थी परिचारिका खड़ी ॥
समीप थीं आगत ग्राम देवियाँ।
व्यथा भरी विह्वल वारि लोचना ॥

(६७)

दिखीं बधू को निज गोद में लिये।
प्रबोध देती कमला समाकुला ॥
यथा व्यथा को भव में विहाल हो।
प्रबोधती हो करुणा प्रताड़िता ॥

(६८)

सशोक बोलीं फिर वे व्यथा भरे।
विलोचनों की जल वृष्टि रोकती ॥
भरी हुयी थी जिनमें व्यथा निरी।
विलुप्तमाना जिनकी सुरम्यता ॥

(६६)

न मान बेटी ! अपना अभाग्य तू ।
अभाग्य मेरा तुझको रुला रहा ॥
बचे इसी को बस शुष्क प्राण ये ।
बदा मुझे था यह दुःख देखना ॥

(७०)

प्रबोध मैं दूँ किस भाँति हा ! तुझे ।
स्वयं दुखों से मृयमाण जर्जरा ॥
सखेद दुर्दैव तुझे निहारता ।
बना हुआ घातक और निर्दयी ॥

(७१)

कहाँ अवस्था यह है पयोमुखी ?
कहाँ महा दुःख तुझे जला रहा !
अरे ! बची क्या बस मैं इसीलिये !
यही कहाता विधि का विधान क्या !

(७२)

तुझे सताता यह दैव आज है ।
कलङ्किता स्वीय सुकीर्ति को बना ॥
कहाँ प्रतिष्ठा उसकी अलौकिका !
कहाँ निरी घात भरी बिडम्बना !

(७३)

प्रवञ्चना ही विधि का विधान जो ।
प्रताड़ना ही यदि लोक में लिखी ॥
नहीं बताता भगवान मौन क्यों ?
उपाय तो क्या उसका यही बचा !

(७४)

सदैव माता भवभाग्य पूजिता।
विकासगर्भा वर लोक सम्पदा॥
दया मया स्नेह विभोर वत्सला।
महाशुभा मङ्गलमूर्ति मञ्जुला॥

(७५)

हुयी यहाँ आज वही प्रवञ्चिता।
लुटा उसी का यह पुण्य गोद का॥
अदृश्य है दैव तथापि देख ले।
कठोर लीला अपनी भयावनी॥

(७६)

सदा धरित्री रहती नवोत्पला।
विनाशकारी यदि वज्र भी यहाँ॥
सरोज का नाश दुरन्त वज्र से।
परन्तु भारी अपराध सर्वदा॥

(७७)

न लोक की लाज समाज में बची।
न व्यक्ति में शेष बची स्वतंत्रता॥
समग्र सत्ता सुख की—सुयोग की।
गवाँ चुकी पुण्यपरा वसुन्धरा॥

(७८)

न राम का राज्य समाज में रहा।
घरों घरों में फलती कृतघ्नता॥
कठोर कर्मा जड़ता लिये हुये।
अनार्ष साम्राज्य प्रसार सामने॥

(७६)

जहाँ प्रजा में परतंत्रता पली।
समाज की वृत्ति जहाँ कलङ्किता ॥
जहाँ अनार्योचित प्राण भीरुता।
वहाँ फले क्यों न महा विडम्बना !

(८०)

तुझे बता तो किस भाँति धैर्य में।
बँधा सकूँगी दुख से जली हुयी ॥
न रो बहू तू यह देख पङ्गुता।
विचाररुग्णा असमान सृष्टि की ॥

(८१)

सुनकर यह बातें सान्त्वनापूर्ण सारी।
अति विचलित रन्ना यातना से विदग्धा ॥
निज हृदय व्यथा से देह का मान खोती।
तड़प-तड़प रो रो दुःख के साथ बोली ॥

(८२)

अयि जननि ! बता दे फूल सा लाल मेरा !
रस हृदय सुधा का लोचनों का उजाला ॥
सुख मुझ दुखिया का स्नेह संयोग मेरा।
मुझ विकलमना को आज क्यों छोड़ बैठा ?

(८३)

अधर सुघर मेरे लाल के लाल जैसे।
चपल नयन फूले पद्म जैसे फबीले ॥
सिर पर लहराते प्यार से बाल काले।
कल जननि ! बता दे देख क्या मैं सकूँगी ?

(८४)

अब तक कितनी ही लालसायें रसीली।
सकुशल पलती थीं लाल के साथ मेरे॥
पर अब सब मेरी स्नेह की कामनायें।
इस निपट अभागे भाग्य को छोड़ भागीं॥

(८५)

अब जननि! बता तो कौन चापल्यशाली?
यह घर भर देगा मञ्जुला माधुरी से॥
चलकर घुटनों से गोद में कूद मेरी।
खिल-खिल घर में है कौन जो आज खेले?

(८६)

निज सरस सुधा सी दिव्य मीठी हँसी की।
इस घर भर में जो पुण्य धारा बहाता॥
वह धन निधनी का साधना का बसेरा।
अयि जननि! बता तो लाल मेरा कहाँ है?

(८७)

वह प्रथित पिता का काव्य सौभाग्यशाली।
वह अनुपमता का लाड़ला गान जी का॥
वह विभव सजीले विश्व का स्नेह वाला।
वह इस घर की माँ ज्योतिमाला कहाँ है?

(८८)

किलक किलक मेरे पुण्य था जो जगाता।
अति मृदु जिसमें थी खेलती बाललीला॥
वह सुख वसुधा का लालसा का बसेरा।
नव ललित कला सा लाल मेरा कहाँ है?

(८९)

अनुपम कमलों की कोमला कान्त काया ।
सकुचित जिस मेरे लाल को देख होती ॥
बलि जिस पर जाती मालती चारु शीला ।
वह निज जननी की मञ्जु लीला कहाँ है ?

(९०)

लग लग जिससे थी धूल भी धन्य होती ।
जल जिस तन से था पुण्य प्रस्तार पाता ॥
जिस पर लुटता था लोक लावण्य सारा ।
वह जननि ! बता तो प्राण-प्यारा कहाँ है ?

(९१)

नव छवि जिसकी थी मञ्जुला प्रीतियुक्ता ।
युग-युग तक को थी दिव्य जो कीर्ति मेरी ॥
वह सुत जननी की अर्चना की निशानी ।
इस मुझ दुखिया की मूक वाणी कहाँ है ?

(९२)

वह सुमन सुहाता रूप माधुर्यशाली ।
विलसित जिससे थी वाटिका मञ्जु मेरी ॥
यह मन जिसके था प्यार के गीत गाता ।
वह प्रिय सुत मेरा भाग्यत्राता कहाँ है ?

(९३)

प्रतिपल जिसकी मैं स्नेह की अर्चना में ।
अति पुलकित हो हो व्यस्तता से बिताती ॥
जिस पर झुकता था चित्त मेरा चितेरा ।
वह वरद कृपा सा पुत्र मेरा कहाँ है ?

(६४)

घट घट बढ़ती थी नित्य ही पा जिसे मैं।
बढ़ सरस उमङ्गें थीं न जी में समाती॥
अभिनव सुख का जो एक आधार सा था।
वह मुझ दुखिया की स्नेहगाथा कहाँ है?

(६५)

जिस पर सब मैं तो भूलती थी व्यथायें।
जिस पर बलि हो मैं पुण्य सारा लुटाती॥
जिस पर बरसाता स्नेह, लावण्य सारा।
वह हृदय दुलारा नेत्रतारा कहाँ है?

(६६)

मचल मचल जो था भूमि में लोट जाता।
हठ वश फिर रो रो जो मुझे था खिझाता॥
निधि मधुर सुधा की कल्पना सी पुनीता।
वह अतुलित मेरी लोकगीता कहाँ है?

(६७)

लहर लहर डोली धाम की विष्णुकान्ता।
महँ महँ महँकी थी माधवी मङ्गला हो॥
टप टप टपके थे आम बागों बनों में।
जब जननि? जयन्ती लाल की थी ललामा॥

(६८)

वह सुदिन सदा को दैव ने आज छीना।
कर मुझ अबला की गर्विता गोद सूनी॥
यह मति दुखदायी चीरती है कलेजा।
अब भुवन रहेगा लाल से शून्य मेरा॥

(९९)

यह हृदय सदा ही क्यों न रीता जलेगा ?
बन बन जिसकी यों नष्ट हों लालसायें ॥
वह अपयश शीला माँ सदा क्या जियेगी ?
घुल घुल मरने को वञ्चना से—व्यथा से ॥

(१००)

जिस दिन घर में आ पुत्र को देखने को ।
अतिशय मृदुता से वे बुलाने लगेंगे ॥
तब फिर उनसे मैं पुत्रहीना मलीना ।
किस तरह कहूँगी लाल मेरा नहीं है !

(१०१)

तन मन धन खोती यातना से न रोती ।
यह दृढ़ मन मेरा झेल लेता बलायें ॥
पर जननि ! बता मैं पुत्र सी सम्पदा को ।
अब सब दिन को खो क्यों न रोऊँ व्यथा से !

(१०२)

अविनय यह होगी क्षम्य माँ क्या न मेरी ?
यदि कलप कहूँ मैं वाम मेरा विधाता ॥
अतुलित प्रतिभा दे—रूप की सम्पदा दे ।
बरबस इस मेरे लाल को लूटता है ॥

(१०३)

यदि रुच न रहा था स्नेह वात्सल्य मेरा ।
उस कुटिल कला के पूर्ण मर्मज्ञ को तो ॥
रख कर इस मेरी गोद को भारहीना ।
वह बच सकता था पाप से-वञ्चना से ॥

(१०४)

यह दिन मुझको जो दैव को था दिखाना।
यदि कुछ उसकी थी मारने में भलाई॥
यह निपट अभागी मैं पड़ी चीखती हूँ।
वह अधम मुझे ही क्यों नहीं मार लेता ?

(१०५)

कल जब हुँकरेंगी चाव ले चित्त गायें।
इस अनुपम मेरे लाल को देखने को॥
तब हृदय न मेरा क्या फटेगा बता दे ?
अयि जननि ! व्यथा से—दैव की ताड़ना से !

(१०६)

शुक करुण कथा की जानता है कहानी।
सब कुछ यह मेरी सारिका जानती है॥
पर जब यह दोनों लाल का नाम ले ले।
रह रह हुड़केंगे, मैं बता क्या करूँगी ?

(१०७)

अब यह मन मेरा धैर्य पावे कहाँ से ?
जब उजड़ चुका है आज संसार मेरा॥
यह मति गति मेरी हा ! ठिकाने रहे क्यों ?
जब सिर पर नाची दैव की क्षुब्ध ज्वाला॥

(१०८)

अति पुलकित हो हो दूध मैं थी पिलाती।
बरबस नहलाती देखती मञ्जु शोभा॥
प्रतिदिन फुसलाती आँजती चारु आँखें।
इस परम छली की क्या इसी हेतु मैं थ

(१०६)

प्रिय यदि उस पापी दैव को वञ्चना है।
यह सुत मृदु मेरा तो रुलाता मुझे क्यों ?
इस कठिन व्यथा से प्राण मेरे जलाता।
यह जननि ! बता तो लाल जाता कहाँ है ?

(११०)

किस मधुर सुधा की मञ्जु मन्दाकिनी है ?
किस वर वसुधा से धन्य है स्वर्ग सारा ?
यह जननि बता तो कौन सी योग्य माता ?
अब सफल बनेगी लाल को छीन मेरे !

(१११)

यदि मुझ दुखिया को छोड़ जाना इसे था।
कल छल इसको तो सीखने ही नहीं थे ॥
गिर गिर उठता था स्नेह की व्यञ्जना सा।
खिल खिल हँसता था लाल क्यों साथ मेरे ?

(११२)

बस मुझ दुखिया की वेदना के लिये ही।
यह सब इसने क्या चातुरी सीख ली थी ?
अब इस छलिया का झाँकना मौन होना।
फिर झट छिप जाना हाय ! कैसे बिसारूँ !

(११३)

उन सुखद दिनों के स्वर्ण से स्वप्न मेरे।
सज सज उतरे थे क्या यही देखने को ?
यह सब कुछ क्या है हाय ! मैंने सकेला ?
बस सिर धुनने को वेदना से—व्यथा से !

(११४)

दीना हीना विकल वदना विह्वला भग्नकामा।
शोकाक्रान्ता सजल नयना पीड़िता स्नेहदग्धा॥
मोहाधीना परम मलिना घोर आपत्ति ग्रस्ता।
रो रो रत्ना व्यथित हृदया थी व्यथा को रुलाती॥

(११५)

आँसू सूखे हृदय पिघले धैर्य के भाव डोले।
जागे सारे करुण रस के राग सन्तप्त जी के॥
टूटी आशा परम दुख में और फूटी निराशा।
पाया जाता कब जगत में पीड़ितों का सहारा!

(११६)

पीड़ा पाती अकथ फिर भी वेदना को जगाती।
बोलीं जी को कठिन करके भारती शोकमग्ना॥
रो रो बेटी न कर अपनी क्षीण तू कान्त काया।
जीती हूँ मैं कलप करके जागती हूँ व्यथा से॥

(११७)

बेटी! मैंने इस जगत में कष्ट ही कष्ट भोगे।
रो रो मैंने विरह अपने आँसुओं में सँजोया॥
काटी मैंने विकल अपनी वेदना से जवानी।
बेटे द्वारा सुखद पर है आज दुर्भाग्य मेरा॥

(११८)

वैसी प्यारी परम निधि से वञ्चिता किन्तु तू है!
मैं सन्तप्ता परम व्यथिता बोध कैसे तुझे दूँ!
रोना धोना विकल बनना दुःख से दग्ध होना!
बेटी! सारे व्यथित भव की यातना की निशानी!

(११६)

मैंने तेरे लघु वयस में घोर वैधव्य भोगा।
रो रो काटे दिवस अपने और काटी निशायें॥
जीती थी मैं विकल पति से हीन हो पूर्णगर्भा।
सन्तापों से झुलस करके मृत्यु की ताड़ना ले॥

(१२०)

तू बेटी है अधिक मुझसे पुण्य सौभाग्ययुक्ता।
जीवे! जागे! पति भुवन में सैकड़ों वर्ष तेरा॥
गङ्गा जैसी सुखद जिसकी कीर्ति लोकाभिरामा।
बेटी! वैसे वरद पति की तू वधू स्नेहशीला॥

(१२१)

जी में तेरे उमड़ करके आज है शोक छाया।
माता जैसा परम पद भी क्षीण है आज तेरा॥
तेरे प्यारे सरल उर को वेदना बेधती है।
सन्तप्तों का पर भुवन में धैर्य ही है सहारा॥

(१२२)

भावों वाला हृदय अपना बज्र सा तू बना ले!
निर्माता की निलज गति से रो न मेरी बहू यों!
आते जाते सतत रहते दुःख ये मर्मघाती!
माना जाता यह भुवन ही पीड़ितों का बसेरा!

(१२३)

पीड़ा में ही निखिल भव की व्याप्ति है व्याधिमूला।
जाने ऐसे किस समय से लोक सन्ताप पाता॥
गायी जाती पुरुष यश की—शौर्य की व्यर्थ गाथा।
देखी जाती निपट निबला किन्तु है सृष्टि सारी॥

(१२४)

सर्वग्रासी विभव भव में फैल जायें भले ही।
पाता जाये मनुज रुचिरा राग सम्भूत माया ॥
चाहे जैसी विशद वरदा सम्पदा लोक भोगे।
अल्पप्राणा निपट उसकी सिद्धियाँ किन्तु सारी ॥

(१२५)

होते होंगे जल थल तथा व्योम के लोग स्वामी !
सङ्घर्षों के जनक बन के वे भले ही बड़े हों !
इच्छा से ही अखिल भव को वे हिला दें भले ही !
हो जायेंगे विफल पर वे मृत्यु के भोग द्वारा !

(१२६)

बेटे बेटी मधुर निधि हैं दिव्य लोकार्चना की।
जीवें जागें विकस करके विश्व का बोध पावें ॥
ऐसी होती प्रति हृदय की भावना मानवीया।
हो पाती है पर न बहुधा वर्द्धिता मङ्गलाशा ॥

(१२७)

दुर्द्धर्षा है निपट उर के शोक की घोर ज्वाला।
दूनी हो हो प्रबल यह है भूनती जीवितों को ॥
निर्लिप्ता हो सहन दुख का कौन माता करेगी ?
जैसे तैसे उचित फिर भी धैर्य की धारणा है ॥

(१२८)

रो रो क्यों तू दुखित मन की यातना है जगाती ?
जी को क्यों यों परम प्रबला वेदना से जलाती ?
बेटी मेरी व्यथित हृदया ! आ ! दुलारी बहू आ !
प्राणों की तू जलन तुझको कण्ठ से मैं लगा लूँ ॥

(१२६)

रोते धोते इस तरह से तामसी रात बीती।
आया ढाता प्रलय भव में शोक डूबा सबेरा ॥
तारे डूबे गगन तल में रक्त प्रस्तार छाया।
दुःखों द्वारा दलित निकला पूर्व से अंशुमाली ॥

(१३०)

आँखें खोलीं कमल दल ने वेदना से सरों में।
चिन्ता व्यापी अलि निलय में प्यार की वञ्चना से॥
काँपी काया परम व्यथिता श्यामला भानुजा की।
रोयी मानों उतर करुणा वाटिकाओं—वनों में॥

(१३१)

नष्टा भ्रष्टा सुकृत जनिता पुण्य की भावनायें।
आवेगों से व्यथित मन में चिन्तना थी समायी॥
डोली प्रातः पवन विकला बाँटती सी उदासी।
पीड़ाकारी प्रति हृदय का हाल फैला घरों में॥

(१३२)

बोले चाले विहग दल भी दूसरी भाँति सारे।
फूलों की भी मधुर मधु थी आज माधुर्य हीना॥
काया सूखी सरस रस खो आज सारे फलों की।
बोली रो-रो करुण स्वर से कोकिला कान्तकण्ठा॥

(१३३)

वर्षा द्वारा विगत निशि थी शोक सन्ताप ग्रस्ता।
सत्यानाशी दुखद दिन में कर्दमा थी धरित्री॥
सन्तप्ता हो बस प्रकृति ने आज शृङ्गार छोड़े॥
माता जैसी सदय निधि के दुःख में दुःखिता हो॥

(१३४)

ज्योंही चिन्तामणि अजिर में बोध की मूर्ति आये।
रोयी पैरों पड़ विकल हो शोक की पूर्ति रत्ना॥
जैसे तैसे सम्हल उसको तो उन्होंने उठाया।
चिन्तासिक्ता सरल उनकी किन्तु थी दिव्यवाणी॥

(१३५)

फूलों जैसे मृदुल मन को वज्र जैसा बना के!
माँ ने देखी तड़प अपने लाड़ले की जुदाई!
बेटे जैसे हृदय धन को छूटता देखने को!
धाता ने थे नयन सिरजे स्नेह की सिन्धु माँ के!



नवम सर्ग

(१)

विकल्पा सङ्कल्पा विमल व्रतकल्पा सुयशदा।
प्रियाणी कल्याणी सरलतम वाणी बलवती॥
सुजाता विख्याता जन जगत माता सहृदया।
सपुण्या कारुण्या निखिल भव धन्या मृदुमना॥

(२)

ललामा सत्कामा कवि हृदयधामा भगवती।
स्वयंसिद्धा विद्या तरुण तप सिद्धा कवि कथा॥
प्रभा छाया माया प्रणयमय काया परिणता।
प्रशस्ता अभ्यस्ता जगत हित व्यस्ता अनुपमा॥

(३)

अदीना स्वाधीना छल कपट हीना अविजिता।
उषा दिव्या वन्द्या कल कलित सन्ध्या रुचिमयी॥
अवर्णा संवर्णा नव जलज वर्णा प्रियतमा।
विशुद्धा संशुद्धा रस रमण रुद्धा मधुरिमा॥

(४)

प्रशान्ता निर्भ्रान्ता रुचिर गति कान्ता अतुलिता।
शुभा सत्या कृत्या सुखदतम नित्या परिचिता॥
महाभाषा आशा सहज परिभाषा प्रकृति की।
समा जा! तू आ जा! विभव बरसा जा! श्रुति सुधा॥

(५)

पुनीता सङ्गीता सरस रसगीता गुणयुता।
क्षमाशीला लीला अति सुयशशीला हितरता॥
कृपाकामा श्यामा परम अभिरामा कर कृपा।
जगा जा! तू आ जा! अमृत बरसा जा! हृदय में॥

(६)

शरण्या पर्जन्या धृति धरणि धन्या विजयिनी।
महाशुभ्रा शान्ता अवनि यह कान्ता भरत की॥
यही भव्या काशी प्रणयपुर वासी शिव जहाँ।
यही दिव्या गङ्गा तरलित तरङ्गा शुचितमा॥

(७)

सुधासिक्ता मुक्ता सरल गतियुक्ता मृदुजला।
महारानी मानी परम सुखदानी हृदय की॥
प्रभा पाती आती सबल बल खाती गतिमती।
बही देखो जाती ललित लहराती सुर नदी॥

(८)

अमन्दा स्वच्छन्दा मृदुलतम छन्दा नवयशा।
सदा बाधा हीना मधुरध्वनिलीना विपथगा॥
अभिज्ञाता गाथा जन जगत माता जलमयी।
चली जाती गाती स्वजन मनभाती रसवती॥

(९)

तपस्या तल्लीना सुगति सुख लीना व्रतरता।
भवा भावाधीता सप्तर्षि मुनि गीता मधुमयी ॥
अरण्या सौजन्या सुर सदन कन्या वयवती।
बही गङ्गा जाती समद हहराती युगकथा ॥

(१०)

मतङ्गा सर्वाङ्गा कलित सित गङ्गा गुरुगिरा।
धरा धामा वामा प्रगति पथकामा सुगतिदा ॥
शिरोधार्या आर्या जगत हितकार्या भव विभा।
कहाँ जाती गाती प्रणय बरसाती कुछ बता ?

(११)

अपूर्णा सम्पूर्णा सुगम सुखपूर्णा जनजया।
विधात्री सत्पात्री निखिल भव धात्री सकरुणा ॥
सुधा पारावारा यह मधुर धारा जगत की।
जगाती या गाती विभव बरसाती गिरिसुता !

(१२)

जगी उषा प्रभा भरी प्रवाल माल जाल सी ॥
सुदूर पूर्व में दिखी सुरञ्जिता गुलाल सी ॥
उड़े विहङ्ग भी अनेक रङ्ग-ढङ्ग ढालते।
पतङ्ग का प्रसाद अङ्ग अङ्ग से सम्हालते ॥

(१३)

लिए हुए अलौकिका स्वयंवरा परम्परा।
बनी प्रभात की प्रवाहिका दिगम्बरा धरा ॥
विहान गान का भरा समस्त विश्व देखता।
अनेकता दिखा रही महा ललाम एकता ॥

(१४)

समीर मन्द मन्द सा सुगन्ध बाँटने लगा।
प्रभात का प्रभाव भी प्रवाह पाटने लगा॥
प्रमत्त थीं समस्त दोलिता लता द्रुमावली।
सशोर ओर छोर में मची हुयी चलाचली॥

(१५)

मरीचिमाल शोभिता समोद जह्नुनन्दिनी।
बनी स्वरूप रङ्गिणी जलावृता तरङ्गिणी॥
जलीय जीव जन्तु की लिये विशाल वाहिनी।
चली विभोर भोर से सुरापगा प्रवाहिणी॥

(१६)

बिखेरती समृद्धि पुण्य प्राण दे विशारदा।
यही प्रणम्य पद्मजा यही शरण्य शारदा॥
सुकीर्ति मुक्तकण्ठ से समस्त लोक गा रहा।
इसी प्रवाह में प्रवाह विश्व का समा रहा॥

(१७)

इसी महा प्रसाद से धरा वरा समुर्वरा।
इसी सदा सुहाग से नृलोक है भरा पुरा॥
यही ममत्व देश और जाति का जगा रही।
यही भरी सुरापगा प्रसन्न चित्त गा रही॥

(१८)

हिमाद्रि से पयोधि का दुलार जोड़ती हुयी।
विभक्त धर्मभूमि का प्रमाद तोड़ती हुयी॥
खड़े हुये विपत्ति के पहाड़ फोड़ती हुयी।
चली भली सुरापगा व्यथा मरोड़ती हुयी॥

(१६)

महान आर्यभूमि की प्रभा चली।
विकास की विभा वसुन्धरा चली॥
सकेलती गिरीन्द्र की विभा चली।
बेल खेलती चली सुरापगा चली॥

(२०)

लगा स्वदेश बन्दनीय होगया।
महेश का प्रशंसनीय होगया॥
जाति का अचिन्तनीय होगया।
सृष्टि का अनिन्दनीय होगया॥

(२१)

न्म जन्म की यही अनन्त सङ्गिनी।
न जन्हुजा स्वधर्म कर्म अङ्गिनी॥
ति, विश्व की प्रशस्त रास रङ्गिणी।
द्ध लोक की सुरापगा तरङ्गिणी॥

(२२)

तीर थे जलीय यान छा रहे।
देश की झुकी ध्वजा उड़ा रहे॥
ग आरहे अनेक लोग जारहे।
धाम से अनेक थे नहा रहे॥

(२३)

भक्त पत्र पुष्प थे चढ़ा रहे।
ज्ञान का स्वगान से बढ़ा रहे॥
था उठा विशाल भक्ति योग का।
विवाद था समाजमुक्त रोग का॥

(२४)

कहीं दिखीं अनेक नारियाँ जुड़ी महाव्रता।
प्रणम्य स्नेह की उदार मूर्तियाँ तपोरता॥
उन्हें महान भाग्य का महा प्रमाण दे रही।
विभोर देव आपगा हिलोर आप ले रही॥

(२५)

अनेक मातृतत्व की उपासना रहीं सजा।
दुलार थीं सम्हालती शुभा अनेक अग्रजा॥
अनेक दिव्यता भरी जुड़ीं वहाँ समागता।
निधानवान देश की सुपुत्रियाँ सुखावृता॥

(२६)

नृलोक में सदेह देवलोक की महानता।
समूर्त रूप राशि की कलामयी ललामता॥
अनेक रूपिणी बनी अनन्त शक्ति देश की।
जुड़ीं प्रजावली प्रणम्य भक्ति सी प्रजेश की॥

(२७)

स्वरूप में बढ़ी चढ़ी विशेषता मढ़ी हुयी।
सभी विरञ्चि के कला भरे करों गढ़ी हुयी॥
अनन्त स्नेह की सभी बनीं सजीव सम्पदा।
अनेक रूप में विदेह नन्दिनी प्रियंवदा॥

(२८)

विलास हास में विकास वास सा किये हुये।
सतीत्व का प्रमाण चाल ढाल में लिये हुये॥
पराग भाग्य का भरा शरीर के सरोज में।
खिली मिली प्रसन्नता उन्हें सतेज ओज में॥

(२६)

विभूति विश्व की बनीं सभी विमुक्त वन्दना।
नृदेवियाँ नृलोक की प्रयुक्त भाव व्यञ्जना॥
प्रशस्त योग क्षेम की परम्परा उन्हें मिली।
स्वजन्म के लिये समर्चिता धरा उन्हें मिली॥

(३०)

उन्हें प्रसाद पूर्ण विश्व की ललामता मिली।
उन्हें निहार काव्य की किशोर कल्पना खिली॥
प्रभात में उषा प्रसन्न आरती उतारती।
विलास हास दे उन्हें सुरापगा सवाँरती॥

(३१)

प्रसिद्ध धर्मभूमि के महा प्रभाव से भरी।
तटस्थ थी विराजती महेश की महापुरी॥
विराजमान थी जहाँ प्रमाणमूर्ति शारदा।
महान पुण्यपूर्ति की शुभा निरूपिणी सदा॥

(३२)

जहाँ महान वृद्धि का महान भोग व्याप्त था।
मनुष्य को जहाँ सदा महा सुयोग प्राप्त था॥
हितैषिणी प्रवृत्ति थी बसी जहाँ समाज की।
जहाँ महान शक्ति थी बसी महाधिराज की॥

(३३)

निवृत्ति की निरूपिणी बनी समर्चना जहाँ।
बसी अनन्त ज्ञान की अनन्त अर्जना जहाँ॥
सुखानुभूति के जहाँ भले विचार थे फले।
जहाँ विभूति के विहार भी दुलार से पले॥

(३४)

जहाँ वसन्त की भरी बहार थी अखण्डिता।
जहाँ सदैव स्नेह की प्रभा विशुभ्र मण्डिता॥
समस्त लोक की प्रणम्य कामना जहाँ फली।
जहाँ सदैव राजती विकास भावना भली॥

(३५)

वही पुरी प्रसङ्ग की प्रसङ्गिनी यहाँ बनी।
वही पुरी रसानुभूति रञ्जिनी यहाँ बनी॥
वही पुरी यहाँ हुई विशेष भाँति वर्णिता।
जिसे कहा स्वदेश ने सदैव पाप वर्जिता॥

(३६)

यहीं प्रशस्त शक्ति की ललाम लालसा बसी।
यहीं विशुद्ध भक्ति की प्रभा महोयशा बसी॥
यहीं कृपालु आशुतोष की सदा कृपा बसी॥
यहीं पतङ्ग वंश के प्रभाव की कथा बसी॥

(३७)

यहीं कहीं विराजती धरा धरेन्द्र नन्दिनी।
यहीं कहीं छिपी प्रशस्त मुक्ति लोक रञ्जिनी॥
यहीं बसी हुयी शुभा अनादि प्राच्य सभ्यता।
यहीं भरी हुयी त्रिलोक की विशाल भव्यता॥

(३८)

दिखे अनेक देव धाम शान्ति के निवास से।
विभूति के विलास से प्रकाश के विकास से॥
दिखीं महेन्द्र की सभक्ति आरती उतारती।
घरों बरों कलामयी कृपालु प्राण भारती॥

(३९)

विचार भिन्नता प्रथावृता अभिन्नता लिये।
महान मान्यता रता तथा अनन्यता लिये ॥
कहीं कहीं विशाल मस्जिदें महा मनोहरा।
मुहम्मदीय धर्म की सुकीर्ति दृष्टिगोचरा ॥

(४०)

जहाँ बलिष्ठ राज्य को समस्त शक्ति प्राप्त थी।
जहाँ समस्त देश की स्वतंत्रता समाप्त थी ॥
जहाँ प्रचण्ड दुःख और दण्ड की प्रचण्डता।
वहीं खड़ी प्रताड़िता, स्वदेश की अखण्डता ॥

(४१)

बड़े बड़े विशाल राजमार्ग थे बने हुये।
सदर्प दिव्य धाम हेम हर्म्य से तने हुये ॥
सजी धजी विराजमान विश्वनाथ की पुरी।
स्वयं महाप्रसन्न थी प्रगल्भ शिल्प चातुरी ॥

(४२)

कहीं पुरी विभिन्न लोम वस्त्र चर्म भूषिता।
कहीं अनन्त स्वर्ण रत्न आदि से अलंकृता ॥
कहीं अपार द्रव्य युक्त हाट थे लगे हुये।
कहीं स्वदेश के विचित्र ठाट थे जगे हुये ॥

(४३)

दिखीं अनेक पालकी सजी विभिन्न वर्ण की।
विचित्र अम्बरा वरा प्रभा प्रशस्त स्वर्ण की ॥
मनुष्य ही जहाँ मनुष्य का दुरन्त भार था।
जहाँ विवेक ही विवेक के लिए प्रहार था ॥

(४४)

सजे धजे तथा सधे तुरङ्ग रङ्ग रङ्ग के।
समीर के सपूत अग्रदूत से अनङ्ग के॥
लिये प्रवेग चाल में उड़े सदर्प जा रहे।
कलामयी कला लिए कला भली दिखा रहे॥

(४५)

अनेक भाँति के बने रथादि वायु वेग से।
जिन्हें प्रमत्त बैल थे बली शरीर से कसे॥
महान की महानता जहान में जगा रहे।
कहीं सवेग आ रहे कहीं सवेग जा रहे॥

(४६)

वितुण्ड भीमकाय भूमि भार से हिला रहे।
प्रलम्ब युग्म दन्त की बसी प्रभा दिखा रहे॥
समुण्ड शुण्ड दोलिता दिखीं महा मनोरमा।
बनाव का सजाव का प्रभाव चित्त में जमा॥

(४७)

विशाल झालरों समेत झूल झूलती हुयी।
सशब्द घण्ट घण्टियाँ स्वभेद भूलती हुयी॥
रँगे हुये बड़े बड़े त्रिपुण्ड जाल भाल के।
विचित्र चित्र युक्त ज्यों बने हुये प्रवाल के॥

(४८)

जहाँ अनेक भाँति के प्रभेद भेद से भरी।
प्रसिद्ध भीड़भाड़ के लिए जनाकुला पुरी॥
वहीं समाज के स्वभाव के विकास में कसा।
लिये शुभा परम्परा विचार साम्य था बसा॥

(४६)

परन्तु थी जहाँ विशिष्ट कोटि की अनन्यता।
दिखी वहीं छिपी हुयी अधोमुखी विपन्नता॥
दिखी उदास और त्रस्त वेदना कराहती।
महा विपत्ति मूर्तिमन्त सर्वनाश ढाहती॥

(५०)

समस्त सत्व हीन भारतीयता अकिञ्चना।
कलङ्क थी लिये परावलम्ब का भयावना॥
समृद्धि सिद्धि थी परन्तु थी नहीं स्वतंत्रता॥
भरी प्रसिद्ध भूमि में नितान्त एकतंत्रता॥

(५१)

स्वदेश की, स्वजाति की लिये अनन्त चिन्तना।
विशेष धर्म कर्म की लिये समग्र अर्जना॥
समस्त प्राणिमात्र को कुटुम्ब जानते हुये।
पुनीत विश्व प्रेम को प्रशस्त मानते हुये॥

(५२)

अनेक ब्रह्मज्ञान के धुरीण ज्ञानवान थे।
अनेक कर्मयोग के प्रवीण बुद्धिमान थे॥
अनेक त्याग के विराग के लिये प्रसिद्ध थे।
अनेक लोक के लिये समत्वयुक्त सिद्ध थे॥

(५३)

अनेक स्वप्न देखते सदैव देश जाति के।
अनेक के विचार क्षुब्ध उग्र भाँति भाँति के॥
अनेक राम राज्य की लिये ललाम लालसा।
स्वराज्य का प्रसार था अनेक के मनों बसा॥

(५४)

अनेक थे जगा रहे महापुनीत साधना।
अनेक सोचते शरीर लोक के लिये बना॥
अनेक ज्ञान कर्म की दिखा प्रसिद्ध एकता।
मिटा रहे स्वदेश की स्वजाति की अनेकता॥

(५५)

अनेक धर्म कर्म की प्रसिद्ध ज्योतिमूर्ति थे।
अनेक वृद्ध विश्व की महान पुण्यपूर्ति थे॥
अनेक मुक्तिबोध की लिये महा परम्परा।
बना रहे प्रमाण से यशस्विनी वसुन्धरा॥

(५६)

ऐसे उत्तम साधु जनों के अग्रणी।
शेषसनातन आश्रम में आसीन थे॥
त्याग तथा तप की अतुलित सम्पत्ति से।
जो जीवन को बना चुके स्वाधीन थे॥

(५७)

श्रीपण्डित को यौवन के प्रारम्भ से।
स्नेह तथा वात्सल्य इन्हीं का प्राप्त था॥
विद्या गुरु भी उनके थे ये ही व्रती।
इनका मञ्जुल यश घर घर में व्याप्त था॥

(५८)

दूर नगर से हरे भरे उद्यान में।
आश्रम सब विद्याओं का आगार था।
आमंत्रित पण्डित मण्डल द्वारा जहाँ।
देश दुर्दशा पर हो रहा विचार था॥

(५९)

शेषसनातन मण्डल के अध्यक्ष थे।
समासीन थी सन्मुख पण्डित मण्डली॥
थी विचार विनिमय की सबको चिन्तना।
सबको अपनी घोर दुर्दशा थी खली॥

(६०)

भारत भर के एकत्रित विद्वान वे।
सारे शास्त्रों की बस अनुपम पूर्ति थे॥
भाषायें उनकी विभिन्न थीं किन्तु वे।
अथित देववाणी की मङ्गल मूर्ति थे॥

(६१)

आश्रम की हरिताभ उच्च सम भूमि में।
परिषद् बन गम्भीर परम तल्लीन थी।
नीचे भारत के वैभव की धारिणी।
बहती थी पावन सलिला भागीरथी॥

(६२)

श्रीपण्डित का भाषण अब प्रारम्भ था।
जिन्हें प्राप्त कर सफल बनी है यह कथा॥
भावों का भण्डार बिखर सा था रहा।
पुत्र मरण की यद्यपि थी उर में व्यथा॥

(६३)

बोले वे हम सबका यह अपराध है।
हमने अपनों को अपनाया है नहीं॥
हम समाज के कहलाते भर श्रेष्ठ हैं।
हमने उसको श्रेष्ठ बनाया है नहीं॥

(६४)

बोल रहा हूँ आज आपके सामने।
मैं जिन ऋषियों का साहित्यिक कोश ले॥
उन ऋषि मुनियों की महिमा है मूर्छिता।
आज हमारे इस जीवन के दोष से॥

(६५)

जन जीवन का नैतिक ध्यान हमको नहीं।
स्वर्ग मुक्ति की हमें निरन्तर लालसा॥
व्यर्थ निरे मिथ्याभिमान के योग से।
हम में है विद्वेष भयङ्कर बन बसा॥

(६६)

वह वर्णाश्रम जिससे जीवन धन्य था।
वह संस्कृति जो देश जाति की सम्पदा॥
वह यशस्विनी भारत माता देखिये।
भोग रही है आज अपरिमित आपदा॥

(६७)

उबली करुणा बस इतने में बलवती।
आँखों से दिख पड़ा पुत्र भी सामने॥
बस प्रत्यक्ष अचानक अप्रत्यक्ष था।
किन्तु सम्हाला कवि को कवि के राम ने॥

(६८)

वाणी सम्हली हृदय परीक्षा दे चुका।
मन ने अपना दिव्य रूप दरसा दिया॥
भावों में जागा अनुपम उल्लास था।
भाषा ने जीवन यौवन बरसा दिया॥

(६९)

कहा कवीन्द्र ने कि आज नेतृ वृन्द देश का ।
बना विभक्त और भक्त होरहा नरेश का ॥
परन्तु भक्ति आज तो महत्व शून्य होरही ॥
विचार कि स्वतंत्रता विवेक बुद्धि खोरही ॥

(७०)

बताइये सुराज्य में धरा स्वराज्य है कहाँ ?
परम्परा भरा महान रामराज्य है कहाँ ?
बताइये कहाँ गयी पवित्र धर्म भावना ?
बताइये कहाँ समृद्धि की विशुद्ध अर्जना ?

(७१)

विनाश देश जाति का सरोष सामने खड़ा ।
प्रचण्ड कालदण्ड सर्वनाश के लिये अड़ा ॥
इसे मिली जुली स्वशक्ति से विनष्ट कीजिये ।
स्वदेश के लिये सभी सगर्व कष्ट कीजिये ॥

(७२)

वही स्वधर्म धन्य जो विपन्नता हटा सके !
वही अनन्य कर्म जो कि वेदना बटा सके !
स्वदेश में स्वजाति में प्रकाश जो जगा सके !
वही मनुष्य धन्य जो परार्थ काम आसके !

(७३)

जहाँ प्रपञ्च स्नेह का समस्त योग तोड़ते ।
कठोर राजदण्ड के प्रहार शीश फोड़ते ॥
जहाँ महन्त देश को खड़े खड़े निचोड़ते ।
जहाँ मनुष्य भूख से कराह प्राण छोड़ते ॥

(७४)

जहाँ स्वधर्म स्वार्थ के हितार्थ लोग त्यागते !
जहाँ विपत्ति में सदा ढकेल लोग भागते !
जहाँ न कर्मयोग से प्रसुप्त भाग्य जागते !
वही सुराज्य क्या जहाँ मनुष्य भीख माँगते !

(७५)

दबी हुयी प्रजा जहाँ अधर्म की अखण्डता !
बनी हुयी प्रचण्ड शासिका जहाँ प्रचण्डता !
जहाँ प्रशस्त पेट के निमित्त हाथ जोड़ना !
सुकर्म है जहाँ गरीब का गला मरोड़ना !

(७६)

न क्या इसे सुराज्य मानना नितान्त मूर्खता ?
सदैव है जहाँ बिना प्रयत्न प्राप्त धूर्तता !
पली जहाँ दुलार प्यार से विचार हीनता ॥
फले न क्यों वहाँ निकृष्ट दीनता मलीनता ?

(७७)

नहीं विशेष धर्म का, नहीं विशेष जाति का।
अशिष्ट राज्य आज का नहीं विशिष्ट भाँति का ॥
परन्तु आज राज्य देश में विशेष व्यक्ति का।
जमाव मात्र मानिये इसे अनार्ष शक्ति का ॥

(७८)

सदर्प आज राज्य की निरङ्कुशा विडम्बना।
रँगी हुयी मनुष्य रक्त से बनी महामना ॥
बनी नितान्त दीन हीन की वधस्थली धरा।
चली दुरन्त सर्वनाश की भली परम्परा ॥

(८९)

स्वदेश आपका सदैव के लिये महान था।
समस्त विश्व में भरा अखण्ड कीर्ति गान था॥
तपोनिधान थी अनादि काल से यही धरा।
यहीं चली प्रसिद्ध कर्मयोग की परम्परा॥

(९०)

प्रभात प्रेम का खुला यहीं बड़ा सुहावना।
यही प्रसिद्ध दिव्य धाम साम गान का बना॥
यहीं महा महेन्द्र धर्म प्राण राम थे हुये।
यहीं सुप्रेम पूर्ण कृष्ण पुण्य काम थे हुये॥

(९१)

यहीं सदैव से रही अनन्त शक्ति खेलती॥
यही धरा रही अनन्त विश्व भार झेलती॥
पयोधि दूध घी भरे हुये कभी यहीं बहे।
यहीं कभी स्वराज्य में प्रसन्न लोग थे रहे॥

(९२)

परन्तु आज की दशा किसे नहीं रुला रही!
समस्त जाति आज स्वत्व भावना भुला रही॥
बने निकृष्ट स्वार्थ में विभोर आज लोग हैं।
उन्हें खड़े खड़े जला रहे बिहार भोग हैं॥

(९३)

चला करें चलें अनेक पन्थ ये नये नये।
परन्तु ब्रह्मरूप आप सर्वदा कहे गये॥
स्वदेश को तुरन्त अग्रगण्य हो सम्हालिये।
बचाव का सशीघ्र मुक्ति मार्ग तो निकालिये।

(६४)

अयोग्य आपके निमित्त वर्तमान याचना।
जगाइये सदैव सत्य की प्रशस्त साधना॥
धँसी समाज में निरी प्रवृत्ति आज तामसी।
अधीनता लिये हुये मलीन दीनता बसी॥

(६५)

उठें सदर्प आप एकता चले समाज में।
अनार्ष रूपिणी अनैक्यता जले समाज में॥
समस्त देश में प्रवेग हो नया उबाल हो।
नवीन प्राण हों नवीन भावना विशाल हो॥

(६६)

विचार हीनता मिटे जघन्य दीनता मिटे।
समस्त देश में भरी महा मलीनता मिटे॥
मिटे विपन्नता भरी नितान्त क्षीणता मिटे।
समाज में निरी भरी हुयी अधीनता मिटे॥

(६७)

महान् आप धर्म के धुरीण आज जागिये!
निधान आप कर्म के प्रवीण आज जागिये!
विधान आप ब्रह्म के अधीन आज जागिये!
प्रमाण आप राम के नवीन आज जागिये!

(६८)

विभक्त मातृभूमि आज होरही विलोकिये!
विपत्ति आरही घिरी निरी मलीन रोकिये!
स्वदेश को स्वजाति को विनाश से बचाइये!
अलभ्य धर्मयुद्ध के लिये सदर्प आइये!

(७९)

सदैव एकतंत्रता अनिष्ट की प्रसारिणी ।
निरङ्कुशा प्रवृत्ति की अवाञ्छिता प्रचारिणी ॥
अनन्त दुःख क्लेष और द्वेष की प्रदायिनी ।
समग्र लोक के लिये विपत्ति की विधायिनी ॥

(८०)

सशक्त वर्णधर्म लोकतंत्र से बँधा हुआ ।
मनुष्य मात्र की विवेक बुद्धि से सधा हुआ ॥
विभाग लोक लाभ का स्वभाव सिद्ध कर्म का ।
पवित्र चित्र आर्य भूमि के महान मर्म का ॥

(८१)

इसी उपाधि व्याधि से विलुप्त आज होरहा ।
स्वदेश द्वेष और दम्भ भुक्त आज होरहा ॥
सहर्ष स्वावलम्ब के लिये प्रयत्न कीजिए ।
अचेत मातृभूमि को नवीन प्राण दीजिए ॥

(८२)

दिनेन्द्र की विनम्रता विमुग्ध व्योम में हँसी ।
दिशा दिशा प्रसन्नता ललामता लिये बसी ॥
चली प्रमत्त गामिनी समीर स्नेह पालिनी ।
बनी महा विभोर पुण्यभूमि कीर्ति शालिनी ॥

(८३)

सभा समस्त हो उठी विशेष गौरवान्विता ।
मनुष्यता विवेक बुद्धि भावना समन्विता ॥
अनेक स्वाभिमान से प्रमत्त लोग हो उठे ।
अनेक भावना भरे पसीज और रो उठे ॥

(८४)

बिखेरती हुयी स्वदेश भक्ति प्राणपालिनी।
समाप्त वक्तृता हुयी महा प्रभाव शालिनी॥
उठे सभापतित्व की विशेष रीति पालने।
सनातनाख्य साधु श्रेष्ठ दिव्य कीर्ति ढालने॥

(८५)

पुनीत साधु वेष की महान मूर्ति सामने।
यथा प्रशस्त पुण्य की प्रसन्न पूर्ति सामने॥
समूर्त हो उठी यथा महान आर्य भारती।
यथा स्वदेश की दया मया उसे पुकारती॥

(८६)

विशाल श्वेत श्मश्रुयुक्त वस्त्र गैरिकावृता।
विराग मूर्ति साधुता यथा स्वयं उपस्थिता॥
विराग में भरा परन्तु शिष्ट कर्मयोग था।
दिखा उन्हें स्वदेश का सशक्त राजरोग था॥

(८७)

सुशील शान्ति पुञ्ज साधु श्रेष्ठ बोलने लगे।
समाज और धर्म का रहस्य खोलने लगे॥
पुनः अशान्ति में बड़ी विचित्र शान्ति छागयी।
सधैर्य सर्व वक्तृता सुनी गयी सुधामयी॥

(८८)

कहा महर्षि ने कि आपने अभी अभी सुनी।
स्वदेश की स्वजाति की विडम्बना भयावनी॥
इसीलिये विशेष कष्ट आपको दिया गया।
इसी प्रयोजनार्थ प्राप्त आपको किया गया॥

(९९)

मिटी समस्त देश की विलोकिये अखण्डता।
प्रचण्ड और नग्न हो दहाड़ती उद्दण्डता॥
अधर्म को अकर्म की सहायता बढ़ा रही।
व्यथा विशेष पाठ मौत का सदा पढ़ा रही।

(१००)

सदैव लोक लाभ ही प्रशस्त धर्म आपका।
सदा समाज के लिये सशक्त कर्म आपका॥
जुटें तुरन्त कर्म में न देर स्वल्प भी करें।
चलो चलें सभी स्वदेश के लिये जियें मरें॥

(१०१)

नहीं कभी कही गयी नहीं कभी सुनी गयी।
यथार्थ देश काल के निमित्त ही चुनी गयी॥
महान योगिराज की प्रसन्न भारती भली।
अनेक धन्यवाद के प्रभाव ढालती चली॥

(१०२)

सप्रेम साधुवाद दे लगे सभी सराहने।
लगे स्वदेश जाति का समस्त लाभ चाहने॥
अनेक लोग थे नये सुझाव और ला रहे।
अनेक भाँति के विकास भाव और आरहे॥

(१०३)

विचार और तर्क सिद्ध ठान ठानती हुयी।
उदार विश्व प्रेम का प्रमाण मानती हुयी॥
बनी प्रसार योजना समृद्ध आर्ष रीति की।
उठी सभा यथा प्रवाहिका प्रतीति प्रीति की॥

(१०४)

परन्तु साथ साथ मान्य थीं बिना प्रभेद के।
बिना किसी कुतर्क के बिना विशेष खेद के॥
जनानुभूति के लिये प्रशस्त राष्ट्र भारती।
चले समस्त देश में स्वदेश को पुकारती।

(१०५)

स्वदेश गाँव गाँव में प्रणम्य और मान्य हो।
समस्त ज्ञाति स्नेह से भरी हुयी वदान्य हो॥
मिटे अनर्थ अर्थ का भरा पुरा स्वराज्य हो।
समस्त विश्व में महा प्रशस्त राम राज्य हो॥

(१०६)

जहान में परार्थ को यथार्थ मानते हुये।
निषिद्ध व्यक्ति के प्रसिद्ध स्वार्थ जानते हुये॥
अतीत काल की महानता बखानते हुये।
भविष्य के लिये अनेक ठान ठानते हुये॥

(१०७)

उठी महासभा हुयी विशेष विज्ञता बली।
हुयी प्रसन्न कल्पना कुशाग्र काव्य कौशली॥
जगी सहानुभूति, भावना भरी प्रसन्नता।
विनष्ट सी दिखी स्वदेश में भरी विपन्नता॥

(१०८)

तुरन्त नाव से कवीन्द्र थे स्वधाम जारहे।
महर्षि शिष्य की सस्नेह आपदा बटा रहे॥
सभा समेत वे इसी निमित्त नाव नें चढ़े।
किये अनेक यत्न भी व्यथा न शिष्य की बढ़े॥

(१०९)

सहानुभूति पूर्ण विज्ञ लोग साथ साथ थे।
अपङ्ग दुःख के वहाँ न पैर थे न हाथ थे ॥
परन्तु पङ्गु ने अपङ्ग विश्व को बना दिया।
गढ़ा हुआ समाज स्नेह साज का ढहा दिया ॥

(११०)

कवित्व आज रोरहा विपत्ति सामने खड़ी !
विपन्नता प्रचण्ड सर्वनाश के लिये अड़ी !
चलो चलें सुनें निरी विपत्ति से भरी कथा !
जली नहीं समस्त विश्व को जला चुकी व्यथा !

(१११)

सहानुभूति से प्रबोध दे अनेक रीति से।
जगा विराग व्यर्थ की प्रतीति और प्रीति से ॥
महर्षि ने सस्नेह शिष्य को गले लगा लिया।
व्यथा भरे समाज ने कवीन्द्र को बिदा किया ॥

(११२)

स्वशीश भक्ति भाव से महर्षि के पगों झुका।
विभोर नेत्र नीर था किसी प्रकार से रुका ॥
बड़े विनम्र भाव से सप्रेम हाथ जोड़ते।
व्यथा कथा भविष्य के लिए समस्त छोड़ते ॥

(११३)

चले कवीन्द्र सानुकूल हो समीर भी बही।
विनम्र देव आपगा बनी प्रशान्त सी रही ॥
चले निषाद डाँड़ ले विशाल पाल खोलते।
सभी विपन्न दुःख से विशेष थे न बोलते।

(११४)

चली सदर्प नाव भी विशुभ्र वारि फाड़ती !
वहाँ ! जहाँ वियोग से भरी व्यथा पुकारती !
अरे ! वहीं ! वहीं ! जहाँ कराल काल की चली !
बनी विहाल माँ जहाँ ! जहाँ विडम्बना फली !

(११५)

चलो चले न क्यों निरे विदग्ध लौह लेखनी !
अशक्त विश्व में अभागिनी न वज्र की बनी !
सम्हाल शीश में चढ़ी नितान्त क्रूर यातना।
स्वदुःख से न रो अरी ! जगा सधैर्य साधना !

(११६)

पुरी महेश की महा विशाल दूर हो चली।
दुरन्त दुःख की कथा अतीत क्रूर हो चली ॥
उठी विहाल चित्त में सशोक स्नेह भावना।
कवित्व काँपने लगा विभोर धैर्य था बना ॥

(११७)

बसे हुये तटस्थ गाँव भी दिखे तथा हटे।
दिखे प्रशस्त खेत भी प्रभूत अन्न से पटे ॥
प्रशस्त थी अनन्त अम्बुराशि चित्त मोहिनी।
महान आर्य भूमि की महा विभूति सी बनी।

(११८)

बिछी विशुभ्र बालुका सुरम्य नेत्र रञ्जिनी।
जहाँ अनिन्द्य रूप की अनूप व्यञ्जना छिनी ॥
सुकूल की अलौकिका सुहावनी हरीतिमा।
तथा निरभ्र व्योम की महा ललाम नीलिमा ॥

(११९)

अरण्य की विमोहिनी छटा खगों मृगों भरी ।
प्रसन्न नील व्योम से सटी हुयी हरी हरी ।।
स्वरूप थी सवाँरती कछार की ललामता ।
बसी हुयी जहाँ बड़ी भली किशोर श्यामता ।।

(१२०)

जगा रही न आज थी कवित्व की प्रसन्नता ।
बनी कठोर घोर थी विपत्ति की विपन्नता ।।
जहाँ पुकार माँ रही बनी कलङ्किता सिता ।
जहाँ स्वपुत्र के वियोग शोक से दुखी पिता ।।

(१२१)

लिये हुये विछोह और दुःखदायिनी व्यथा ।
लिये हुये कराल काल की भयावनी कथा ।।
विरुद्ध वारि गर्भ में निरुद्ध नाव जारही ।
रहस्य से भरी हुयी विरक्त साँझ आरही ।।

(१२२)

विशुभ्र नीर में मयूषमाल खेलने लगीं ।
तरङ्ग ताल ढालने सुधा सकेलने लगीं ।।
बनी स्वरूपयुक्त लालिमा बड़ी विमोहिनी ।
त्रिलोक में सुरम्य रूप राशि की छटा छिनी ।।

(१२३)

परन्तु चित्त में चढ़ी वियोग शोक कालिमा ।
पुहा रही न साँझ की बड़ी प्रसन्न लालिमा ।।
बड़े उदास चित्त से खड़े कवीन्द्र होगये ।
अनन्त दुःख में स्वभाव सिद्ध भाव खोगये ।।

(१२४)

विहाल शोक से कई डगों चले तथा रुके।
रुलास ले कवित्व के समस्त भाव थे झुके॥
बड़े बड़े विशाल नेत्र भी सवारि हो चले।
दुलार प्यार आज मञ्जु स्नेहराशि खो चले॥

(१२५)

हिला अखण्ड धैर्य विप्रलम्भ के प्रसार से।
उठी विभोर तंत्रिका पुकार तार तार से॥
कवित्व का रुँधा हुआ प्रवाह कण्ठ से उठा।
वियोग गान निम्न वेदना महान ले उठा॥

(१२६)

वियोग से भरा हुआ कवित्व आज रो पड़ा।
धुरीण धैर्य ध्वस्त और अस्त व्यस्त हो पड़ा॥
कराह आह से भरे, न दुःख साथ छोड़ते।
दिखे मलीन चित्त से कवीन्द्र गीत जोड़ते॥

(१२७)

आज रो ले राग मेरे !
इस व्यथित मेरे हृदय को वेदना की आग घेरे !
जल रहे हैं आज मन के स्नेह के सब ताग मेरे !
भूल जा ! मुझको मनोरम पुण्य के वर भाग मेरे !
मत जला इतनी व्यथा की आग हे ! अनुराग मेरे !

(१२८)

सदुःख काव्य की महा व्यथा विभोर वेदना।
कवीन्द्र के मुखारविन्द से कवित्व ने सुना॥
अतीव क्षीण राग का समीर साथ देरहा।
सहानुभूति में समस्त लोक भाग लेरहा॥

(१२६)

वियोग से भरी हुयी विहङ्ग राजि रो उठी ।
जलीय जीव जन्तु की समाधि भङ्ग हो उठी ॥
हुयीं विछोह से प्रकम्पिता लता द्रुमावली ।
भयावनी बनी मुकुल राजिता वनस्थली ॥

(१३०)

विकार के प्रहार से सुरापगा दुखी हुयी !
दुरन्त दुःख में कहाँ दयालु माँ सुखी हुयी !
दिखी अशान्ति शान्ति में विलाप विश्व में भरा !
लगा कि आज रो रही वियोगिनी वसुन्धरा !

(१३१)

समीर शोक और क्षोभ से चिंघाड़ने लगा ।
अधीर नीर वेग से कपाल फाड़ने लगा ॥
सयत्न थी किसी प्रकार नाव कूल में लगी ।
महा अशक्तता लिये हुये अधीरता जगी ॥

(१३२)

निषाद यत्न से तुरन्त नाव बाँधने लगे ।
कवीन्द्र के लिये सभी उपाय साधने लगे ॥
सशीघ्र एक एक में सभक्ति होड़ सी मची ।
अलभ्य प्रेम से अप्राप्य हो अलभ्यता बची ॥

(१३३)

विहाल शोक भुक्त शिष्य श्रेष्ठ सर्व साथ थे ।
जिन्हें जहान में मिले सशक्त पैर हाथ थे ॥
जिन्हें मिला वरेण्य बुद्धि का महा प्रसाद था ।
जिन्हें विकारयुक्त छू गया नहीं प्रमाद था ॥

(१३४)

उगा मयङ्क पूर्व में कलङ्क की लिये कथा।
जगी निरभ्र नील व्योम में निरङ्कुशा व्यथा॥
प्रताड़िता ललामता विहीन तारकावली।
सदुःख धैर्य की विडम्बना निहारने चली॥

(१३५)

पिता परन्तु पुण्य काव्य का महा प्रसाद सा।
महान विश्व का महा अजेय सिंहनाद सा॥
सधैर्य ज्ञान ध्यान की उपासना जगा रहा।
अनित्य की प्रवृत्ति को निवृत्ति में लगा रहा॥

(१३६)

समीर के प्रकोप से प्रताड़िता विभावरी।
विरामदायिनी न होसकी प्रकम्पिता तरी॥
समस्त रात राम की अखण्डिता कथा हुयी।
विदा नहीं परन्तु चित्त में भरी व्यथा हुयी॥

(१३७)

मलीन और क्षीण हो चली समुज्ज्वला निशा।
भरी महा प्रभात की समीर से दिशा दिशा॥
समस्त शौच स्नान से प्रसन्न चित्त को बना॥
समाप्त भोर की हुयी यशोमयी उपासना॥

(१३८)

चले कवीन्द्र मण्डली समेत नाव भी चली।
मनोनुकूल आज भी समीर हो गयी भली॥
विशुभ्र पाल में भरी हवा विभोर हो उठी।
लगा कि आज काठ की तरी कठोर हो उठी!

(१३९)

बिना किसी बिराम के तथा बिना थकी हुयी ।
उपस्थिता विपत्ति की विपत्ति में बिकी हुयी ॥
चली प्रकम्पिता तरी विरोध बद्ध जागती ।
घड़े हुये पड़ाव के पड़ाव किन्तु त्यागती ॥

(१४०)

अनेक बार रात ने उसे प्रवञ्चिता किया ।
प्रभात ने अनेक बार था गले लगा लिया ॥
कठोर वेदना भरे अनेक दुर्दिनों भरी ।
चली कवीन्द्र को लिये हुये कई दिनों तरी ॥

(१४१)

प्रसिद्ध पुण्यधाम सामने प्रयाग आ गया ।
तुषार से जले सरोज में पराग छा गया ॥
किया कवीन्द्र ने महा प्रणाम तीर्थराज को ।
महान पुण्य पुञ्ज देवलोक से समाज को ॥

(१४२)

मिली सदु:ख नील नीर ले कलिन्द नन्दिनी ।
वियोग योग से भरी हुयी त्रिलोक वन्दिनी ॥
बहे विनम्र नेत्र पुत्र के वियोग शोक में ।
पिता सस्नेह रो उठा, उठी व्यथा त्रिलोक में ॥

(१४३)

विरुद्ध धार में भरे विरोध झेलती हुयी ।
पड़ी हुयी विपत्तिं गोद में सकेलती हुयी ॥
बढ़ी चली अधीर हो प्रवञ्चना भरी तरी ।
दिखी महान भानुजा निरी विडम्बना भरी ॥

(१४४)

अवाञ्छनीय था, परन्तु एक याम आ गया।
बिपन्न चित्त में कठोर घोर दुःख छा गया॥
कराल काल सी महा व्यथा निरंकुशा दिखी।
विपत्ति से प्रमत्त रक्तरञ्जिता उषा दिखी॥

(१४५)

दिखा प्रभात का स्वरूप भी बड़ा भयावना।
दिखी कवीन्द्र को स्वग्राम में भरी प्रवञ्चना॥
दिखी स्वजन्मभूमि में विपत्ति की व्यथा भरी।
बनी कलिन्दजा कठोर कष्ट की कथा भरी॥

(१४६)

सदुःख सर्व-मण्डली उदास गेह में गयी।
दुरन्त व्यग्रता भरी बनी विपत्ति भी नयी॥
अनन्त शोक था जगा; जगी अनन्त चिन्तना।
जला रही भविष्य की अवाञ्छनीय कल्पना॥

(१४७)

सहानुभूति पूर्ण सर्व ग्राम सामने जुड़ा।
बचे खुचे अशक्त धैर्य का प्रभाव भी उड़ा॥
बिदा हुआ महा विराग और राग रो उठा।
मनुष्य का दुलार था मनुष्य आज खो उठा॥

(१४८)

निरी विदग्ध शोक से नितान्त कष्ट दायनी।
सुनी स्वबन्धु से कवीन्द्र ने कथा भयावनी॥
सुना स्वपितृधाम को व्यथा भरी प्रिया गयी।
प्रचण्ड पुत्र शोक से—वियोग से जली हुयी॥

(१४९)

अखण्ड देवमूर्ति से पितृव्य पूज्य आ गये।
स्वचित्त में भरी हुयी व्यथा कथा सुना गये॥
तुरन्त देख रो पड़ीं अनन्त स्नेह वत्सला।
महान मातृमूर्ति, भारती समेत विह्वला॥

(१५०)

घुसे स्वगेह में कवीन्द्र साथ साथ माँ चली।
दिनान्त देख व्योम से दिनेन्द्र की प्रभा ढली॥
लगी निरी प्रवञ्चना प्रतीक रात झाँकने!
लगा दुरन्त दैव और भी अनिष्ट ताकने!

(१५१)

यही निशा बनी अनन्त कष्ट की प्रदायिनी!
यही निशा बनी अनन्त दुःख की विधायिनी!
बनी यही निशा विपत्तिवर्द्धिनी समागता!
यही निशा कराल काल सी प्रकोप कम्पिता!



दशम सर्ग

(१)

संसार में उतरी हुयी थी कृष्णवर्णा शर्वरी।
तम के महा विस्तार में थी झनझनाहट सी भरी॥
तारों भरे आकाश में थी शून्यता बस जागती।
यह वेदना मानों कृपा की भीख भव से माँगती॥

(२)

निस्तब्ध बनकर वायु भी निस्तब्धता फैला रही।
हिम पात के उत्पात से धरती सिमटती जा रही॥
भयभीत से होकर खड़े तरु पुञ्ज भी चुपचाप थे।
दारुण व्यथाओं से भरे फैले हुये अभिशाप थे॥

(३)

सुनसान बागों में पड़ी छाया महा गाढ़ी हुयी।
बहती हुयी रवि नन्दिनी आपत्ति की खाड़ी हुयी॥
सुनसान बन, सुनसान मन, सुनसान था जीवन बना।
सुनसान में थी काँपती सारे दुखों की व्यञ्जना॥

(४)

सन्तप्त नीड़ों में खगों की राशि थी चिपकी पड़ी।
करुणा कथा मानों महा आपत्ति सी बनकर झड़ी॥
आशा भटकने जा रही सम्बल निराशा पा रही।
सुख के दिनों पर आज दुख की जीत होने जा रही॥

(५)

रोती कलपती शोक की अनुभूति प्राणों में भरी।
व्याकुल हृदय में होरही थी मोह की माया हरी॥
व्याकुल हुयीं आँखें अँधेरे में उजेले के लिये।
परिताप आता है नहीं केवल अकेले के लिये॥

(६)

किसके हृदय में वेदना विस्तार पाती है नहीं?
किसको भुवन में चञ्चला चिन्ता सताती है नहीं?
वह कौन जो अनुराग के पथ में सदा गाता चले?
वह कौन जो संसार भर से तोड़कर नाता चले?

(७)

उस रात में जब विश्व यह सोने नहीं, रोने चला।
कवि जागकर संसार के दुख दर्द सब धोने चला॥
सामर्थ्य ही संसार में पुरुषार्थ कहलाता सदा।
यौवन इसीकी कीर्ति के तो गीत है गाता सदा॥

(८)

वह जन, कहाँ जन रहगया? जिसकी मिटी स्वाधीनता!
वह मन, कहाँ मन रहगया? जिसमें नहीं तल्लीनता!
वह तन, कहाँ तन रह गया? जिसमें पनपती हीनता!
वह धन, कहाँ धन रह गया? जिसको निगलती दीनता!

(९)

अपने लिये तो विश्व में सब चीखते रोते सदा!
निज स्वार्थ में पड़ लोग तो सर्वस्व भी खोते सदा!
पर धन्य है, उन आँसुओं की स्नेह की माया महा!
जिनमें भुवन भर का प्रबल सन्ताप जल बनकर बहा!

(१०)

तू लेखनी सिर पीट मत रोना न तेरा कर्म है।
इस काव्य की करुणा जगाना मात्र तेरा धर्म है॥
तल्लीन होकर देखती जा देखना जो कुछ पड़े।
जो फूल बनकर थे झड़े, वे आज कण्टक बन अड़े॥

(११)

चुपचाप सह लेते व्यथा रोते तड़पते हैं नहीं।
इन सिंह पुरुषों को भला काँटे खटकते हैं कहीं?
बैठे हुये हैं दो महा पण्डित परम तल्लीन हो।
संसार की चिन्ता लिये, निज योजना में लीन हो॥

(१२)

थे एक श्रीपण्डित हमारे पुण्य पारावार से।
नव रूप यौवन के भरे गुण कर्म के अवतार से॥
थे दूसरे वयवृद्ध विद्यावृद्ध चिन्तामणि यही।
जिनके सुयश से पूर्ण थी सम्पूर्ण भारत की मही॥

(१३)

सौरभ भरे वर कक्ष में वे पोथियों से थे घिरे।
साहित्य के सौभाग्य के दिन थे इन्हीं के बल फिरे॥
संसार का दुख दैन्य वे निज वेदना में सोचते।
इस विश्व की आपत्ति का विस्तार थे वे खोजते॥

(१४)

वे जागते जलते हृदय में चिन्तना ले लोक की।
वे मंत्रणा में व्यस्त थे छाया छिपाये शोक की॥
उनके लिये अपने पराये में नहीं कुछ भेद था।
उनके हृदय में देश भर की दुर्दशा का खेद था॥

(१५)

वाराणसी की वृद्ध सुन बोले शुभा आयोजना।
कठिनाइयों में मार्ग अपना है हमें अब खोजना॥
इस राज्य का उपलब्ध हम सबको सहारा है नहीं।
इतना बड़ा यह देश पर देखो हमारा है नहीं!

(१६)

लड़ते झगड़ते लोग हैं, धन धाम धरती के लिये।
सम्राट की सरकार की निर्लज्ज भरती के लिये॥
वह भी समय था जब हमारा मान था, सम्मान था।
निज देश का, निज जाति का हममें भरा अभिमान था॥

(१७)

पर आज तो सौभाग्य के वे दिन बिदा सारे हुये।
हम हैं रसातल में गिरे दुख दैन्य के मारे हुये॥
हम में नहीं आवेश है हम में न अपनी शक्ति है।
अपनी प्रतिष्ठा है नहीं हम में न अपनी भक्ति है॥

(१८)

फिर भी हमें आपत्ति में कुछ काम करना चाहिये।
संसार के संग्राम में हमको उतरना चाहिये॥
निर्जीव होकर विश्व में जीना निरा अपमान है।
कुछ कर दिखाना ही पुरुष का काम है— सम्मान है॥

(१९)

यह कौन चाहेगा नहीं हम सर्वथा स्वाधीन हों।
निज भाग्य के निर्माण में तत्पर तथा तल्लीन हों।।
यह रामराज्य विधायिनी सौभाग्य-वर्द्धक कल्पना।
किसको भली लगती नहीं यह शक्ति की आराधना?

(२०)

पर शक्ति की इस भक्ति में बलिदान होना चाहिये!
जातीयता का स्नेह से सम्मान होना चाहिये!
साहित्य के युग का नया निर्माण होना चाहिये!
व्यापक हमारी दृष्टि, व्यापक ज्ञान होना चाहिये!

(२१)

हो आज सामाजिक हमारा सङ्गठन फिर से नया।
जागे परम उल्लास ले अपनी दया अपनी मया।।
अपकर्ष की लज्जा लगे उत्कर्ष का सम्मान हो।
अपने महा इतिहास का हममें भरा अभिमान हो।।

(२२)

चुपचाप हम निज मार्ग में कटिबद्ध हो बढ़ते चलें।
अपनी अलौकिक रीति से हम देश को गढ़ते चलें।।
साहस तथा सम्मान के प्रिय मंत्र हम पढ़ते चलें।
निर्विघ्न उन्नति के शिखर पर हम सदा चढ़ते चलें।।

(२३)

बलवान के बल की हमें चिन्ता न होनी चाहिये।
आपत्ति में हमको न अपनी दृष्टि खोनी चाहिये।।
संसार के हम हों हमारा भी नया संसार हो।
अन्याय का इस घोर अत्याचार का संहार हो।।

(२४)

इस बीच श्रीषखिडत तनिक कुछ व्यग्र हो कहने लगे।
यदि फूटकर सारी हमारी योजना बहने लगे॥
तब तो न सुलझेगी समस्या सामने जो है खड़ी।
रह जायँगी ये बेड़ियाँ पथ भ्रष्ट परों में पड़ी॥

(२५)

इस आज की शासन व्यवस्था के लिए हम क्या करें ?
हम जानते यह भी नहीं जीते रहें अथवा मरें ?
शासन हमारी भ्रष्टता का मूल कारण आज है।
बिगड़ा इसी से लोक की सम्पत्ति का सब साज है॥

(२६)

इसकी व्यवस्था में हमारी जीत भी तो हार है।
उत्कर्ष इसका देखकर व्याकुल बना संसार है॥
जब तक इसे हम पूर्णतः अपदस्थ कर पाते नहीं।
तब तक हमारे देश में सुख के सुदिन आते नहीं॥

(२७)

ये आज के क्षत्रिय नृपति हैं माण्डलिक इस राज्य के।
विद्वेष शोषण से भरे विस्तीर्ण इस साम्राज्य के॥
जब जागरण के भाव तो इनमें पनपने से रहे।
दासत्व का अभिषेक ये करबद्ध होकर कर रहे॥

(२८)

बीते न जाने वर्ष कितने होरहा यह ह्रास है।
हम बुद्धिजीवी शास्त्र का बल ही हमारे पास है॥
हम लोग इस दुर्जेय शासन को उठा दें देश से।
यह बात सम्भव हो न सकती आज भावावेश से॥

(२९)

गुरुदेव ने इस योजना का बल बढ़ाने के लिये।
युगधर्म का सर्वत्र आन्दोलन चलाने के लिये॥
जातीयता के प्राण इस युग में बचाने के लिये।
स्वाधीनता का मन्त्र जन जन को सुनाने के लिये॥

(३०)

सादर निमंत्रित आपको इस पत्र द्वारा है किया।
हरदम उन्होंने आपका सञ्चित सहारा है लिया॥
इस मंत्रणा में सात ही आचार्य होंगे देश के।
विख्यात प्रतिपालक सभी निज धर्म के अवशेष के॥

(३१)

बतला चुका हूँ मैं अभी जितने निमंत्रित लोग हैं।
बस आप तो उनके लिये सौभाग्य का संयोग हैं॥
यह आप भी हैं जानते वे योग्य आदरणीय हैं।
वे लोक विश्रुत धर्म के अवतार से वरणीय हैं॥

(३२)

वे आपके व्यक्तित्व का सम्मान करते हैं सभी।
निज देश का—निज जाति का अभिमान करते हैं सभी॥
वे धर्म का दिन रात नव निर्माण करते हैं सभी।
अपनी महत्ता का सदा बलिदान करते हैं सभी॥

(३३)

उनका समर्थन प्राप्त करके यह उपस्थित योजना।
अपनी सफलता से सकेगी देश को उन्नत बना।
यह धारणा थी देश भर के पण्डितों की मञ्जुला।
इस देश का सौभाग्य जिससे जान पड़ता है खुला॥

(३४)

इस हेतु ही गुरुदेव ने भेजा मुझे है नाव से।
सुलझे समस्या आपकी सम्मति तथा प्रस्ताव से ॥
बस आपका उपयुक्त प्रातःकाल ही प्रस्थान है।
गुरुदेव को बस आप पर हरदम बड़ा अभिमान है ॥

(३५)

बोले हृदय में दाब कर अपनी कसकती वेदना।
आदर्श पण्डितराज चिन्तामणि सबल मन को बना ॥
मेरे हृदय में यह लगा जितना बड़ा आघात है।
तुम जान सकते हो कि यह कितना कठिन उत्पात है ॥

(३६)

मुझ पर तुम्हारा तात जितना आज तक है ऋण चढ़ा।
उसका अपरिमित व्याज जितना काल पाकर है बढ़ा ॥
उसमें तुम्हारे पितृ चरणों से क्षमा मैं चाहता।
बस अब उऋण करदे मुझे स्वर्गस्थ उनकी दिव्यता ॥

(३७)

जिस दिव्यता की पा कृपा मैंने बनाया है तुम्हें।
इस लोक के सन्ताप से जिसने बचाया है तुम्हें ॥
जिसने तुम्हें दी यह अलौकिक प्रेरणा यह नव्यता।
जिसने तुम्हें दी यह विचारों की मनोहर दिव्यता ॥

(३८)

उस दिव्यता का सुख सुलभ वरदान मैंने खो दिया।
एकान्त पाकर है अनेकों बार मैंने रो दिया ॥
पर आँसुओं के बूँद वे सङ्कीर्णता पाकर ढले।
इस सृष्टि का व्यक्तित्व से वे भेद करने थे चले ॥

(३९)

मैं देखता हूँ स्वर्ग भी सन्ताप है बरसा रहा।
लाखों करोड़ों को जिलाकर विश्व में तरसा रहा॥
इस लोक में निरुपाय जीते जी अनेकों मर रहे।
कर्त्तव्य का पथ छोड़ पापी पेट अपना भर रहे॥

(४०)

मेरा अतः कल के लिए प्रस्थान ही उपयुक्त है।
इस कार्य में आचार्य का सम्पर्क भी संयुक्त है॥
मैं जा रहा हूँ लोक की मन में जगा कर अर्चना।
स्वीकार हो भगवान को मेरी अकिञ्चन वन्दना॥

(४१)

जलमार्ग से प्रस्थान की फिर योजना होने लगी।
हलचल थकावट से निशा के अन्त में सोने लगी॥
पर पक्षियों ने पङ्ख खोले विश्व सारा जग पड़ा।
सङ्कीर्ण मन सामर्थ्य की सम्प्राप्ति में था लग पड़ा॥

(४२)

कर पूर्ण प्रातःकाल की अभिराम सन्ध्योपासना।
मन में जगा कर लोक के कल्याण की वर वासना॥
वामाङ्गिनी संयुक्त अपनी भेंट देने के लिये।
भगवान से उन्मुक्त आशीर्वाद लेने के लिये॥

(४३)

उस ब्रह्मवेला में जगा संयोग चिन्तामणि चले।
अनुरक्ति जीवन शक्ति से सद्भाव उनके थे पले॥
भगवान उनके बन गये, वे बन गये भगवान के।
जागे नये बन भाव भव के स्नेह के—सम्मान के॥

(४४)

विज्ञान के वामाङ्ग में श्रद्धा यथा हो सोहती।
पुरुषार्थ का कर साथ जैसे भक्ति हो मुख जोहती ॥
वे वृद्ध दम्पति दिख पड़े करते हुये आराधना।
संसार की संवृद्धि को उनकी समर्पित साधना ॥

(४५)

उपरान्त वे सहधर्मिणी से जब बिदा होने लगे।
नक्षत्र नभ में रात का परिताप तब धोने लगे ॥
गम्भीर दोनों होगये बातें न आगे थीं बढ़ी।
बीती हुयी आपत्ति की घाबें हृदय में थीं मढ़ी ॥

(४६)

अनुरागिनी बनकर उषा जैसे उतरती व्योम में।
ज्यों चन्द्रिका अनिमंत्रिता है जाग पड़ती सोम में ॥
बस ठीक वैसी स्नेहसिक्ता सामने विधु आगयी।
नवयौवना बेटी पिता के लोचनों में छागयी ॥

(४७)

आपत्तिग्रस्ता देवकन्या सी खड़ी विधु सामने !
सौभाग्य इससे पालिया है विश्व के धन धाम ने !
बस खींच ले ! री लेखनी ! तू चित्र इसका खींच ले !
सौन्दर्य के पीयूष से अपना हृदय तू सींच ले !

(४८)

मैना तथा हिमवान की गौराङ्गिणी गिरिजा यथा।
अवतीर्ण अथवा विश्व के सौन्दर्य की करुणा कथा ॥
यह रूप की नव व्यञ्जना मानों व्यथा भीता बड़ी।
जननी जनक के सामने सन्तप्त सी सीता खड़ी ॥

(४६)

माँ बाप के वात्सल्य की संवर्द्धिता काया यही !
धन धाम के अनुराग की आकर्षिका माया यही !
इसका परम मृदु चित्त था सौन्दर्य की निधि से बना !
यह स्नेह के आधार की आनन्द दायक कल्पना !

(५०)

चलते पिता को प्यार डूबे लोचनों का जल मिला।
अनुराग का यह फूल उनकी गोद में ही था खिला॥
कर प्यार मस्तक चूमकर फिर स्नेह से दे सान्त्वना।
अति शीघ्र चिन्तामणि चले लेकर अलौकिक चिन्तना॥

(५१)

अभिनन्दनीया द्वार पर एकत्र जो जन मण्डली।
बर भानुजा तट तक उन्हें सादर बिदा करने चली॥
बन अग्रणी श्रीहर्ष से संयुक्त श्रीपण्डित चले।
आपत्ति में सद्भाव भी जातीयता पाकर ढले॥

(५२)

था अर्कजा के कूल पर सब गाँव एकत्रित हुआ।
पुरुषार्थ मानों कर्म से उत्पन्न आमंत्रित हुआ॥
सब जन अनेकों भाँति की बातें परस्पर कर रहे।
नव कल्पनायें व्यस्त व्याकुल वृत्तियों में भर रहे॥

(५३)

वे लोग भी आये वहाँ जो गाँव के बूढ़े बड़े।
नव भावनाओं से भरे थे वृन्द युवकों के खड़े॥
दिखने लगीं कुछ पुण्यशीला वृद्ध मातायें वहाँ।
सत्कीर्ति की उतरीं भुवन में दिव्य गाथायें वहाँ॥

(५४)

जब नाव पर शिष्यों सहित आचार्य चिन्तामणि चढ़े।
तब भानुजा के नील जल के पुण्य थे भव में बढ़े॥
यह देखकर सन्मुख उपस्थित ग्राम के सब लोग हैं।
आचार्य बोले देखिये! जागे हमारे रोग हैं!

(५५)

अवशेष कोई विश्व की पीड़ा रही जाती नहीं।
इन व्याधियों की यह कठिन क्रीड़ा सही जाती नहीं॥
वाराणसी के श्री सनातनशेष जो आचार्य हैं।
यह जानते हैं आप उनके जो अलौकिक कार्य हैं॥

(५६)

वे देखकर परतन्त्र भारतवर्ष व्याकुल हो उठे।
उनके विकल मन प्राण भव की व्याधि पाकर रो उठे॥
इस भूमि की आपत्ति के प्रतिकार में वे लीन हैं।
विद्वान भारतवर्ष के सब साथ में तल्लीन हैं॥

(५७)

वाराणसी में पण्डितों की हो चुकी है जो सभा।
उससे दिखी है जागती कुछ आर्य जीवन की प्रभा।
उन देश के विद्वान पुरुषों की सुनिश्चित योजना।
सम्पूर्ण श्रीपण्डित चुके हैं रात में मुझको सुना॥

(५८)

उस योजना पर और भी कुछ ध्यान देने के लिये।
उन विज्ञ लोगों को अधिक सम्मान देने के लिये॥
जातीयता के हेतु जीवनदान देने के लिये।
इस देश को नव बल तथा बलिदान देने के लिये॥

(५९)

सारी सभा ने सात पुरुषों का किया आह्वान है!
आह्वान यह मेरे लिये अब बन गया सम्मान है!
यह देखिये तो आज कैसे सामने दिन आ रहे!
जब आप सब आपत्ति की जड़ हैं, हिलाने जारहे!

(६०)

मैं चाहता हूँ स्नेह की सद्भावनायें आपकी।
मैं चाहता हूँ आज मङ्गल कामनायें आपकी॥
इस देश की—इस जाति की हैं आप जीवन सम्पदा।
अब देखिये जो आपके यह सामने है आपदा॥

(६१)

ज्यों सूर्य इस भव में निकलता और ढलता नित्य है।
त्यों पुण्य पारावार में भी फैलता दुष्कृत्य है॥
दुष्कृत्य से उद्धार होना ही महा परमार्थ है।
संसार की सुख शान्ति का आधार ही पुरुषार्थ है॥

(६२)

पुरुषार्थ के विस्तार का जो मर्म हैं जन जानते।
कर्तव्य के आह्वान की जो पूर्णता पहिचानते॥
जो लोग बल वलिदान को जीवन परम हैं मानते।
अन्याय के प्रतिकार में संग्राम जो हैं ठानते॥

(६३)

संसार में जीना उन्हीं का श्रेष्ठ है—सम्मान्य है।
उपलब्ध उनको लोक का—परलोक का धन धान्य है॥
बस फूलती फलती उन्हीं से इस भुवन की सम्पदा।
उनके सुयश की वन्दना सर्वत्र होती सर्वदा॥

(६४)

इस आज के वैषम्य से जलता जगत है जा रहा।
अन्याय अत्याचार से पीड़ा भुवन भर पा रहा॥
भव में भयङ्करता चढ़ी जीवन अरक्षित होउठा।
दुर्दान्त दानवता बढ़ी मानव विकल हो रो उठा॥

(६५)

फैली हुई है भूख की प्रलयङ्करी ज्वाला यहाँ!
अभिशाप बनकर फैलती है मृत्यु विकराला यहाँ!
दिन दिन हमारे देश का सम्मान मिटता जा रहा!
गौरव तथा अभिमान भी दिन दिन सिमिटता जारहा!

(६६)

यह भूमि भारत की वही जो विश्व में प्रख्यात थी।
संसार भर की सिद्धियों के हेतु जो विख्यात थी॥
आलोक से प्रायः इसी के जगमगाते लोक थे।
इसमें न तो सन्ताप थे इसमें न दिखते शोक थे॥

(६७)

पर आज देखें आप कैसी दुर्दशा है होरही!
सौभाग्य अपना आज तो वसुधा हमारी खोरही॥
आपत्ति से निष्प्राण सा संसार होता जा रहा।
सुख स्नेह के विस्तार का संहार होता जा रहा॥

(६८)

हम लोग मिटते जारहे, फैली भयङ्कर फूट है।
इस देश के दुर्भाग्य का कारण हमारी लूट है॥
आपत्ति के विस्तार से हमको न डरना चाहिए।
धन और जीवन का हमें बलिदान करना चाहिए॥

(६९)

मैं चाहता हूँ आप अपने भाग्य के स्वामी बनें।
मैं चाहता हूँ आप सब कर्तव्य के हामी बनें॥
निज पूर्वजों की कीर्ति के अनुरक्त अनुगामी बनें।
मैं चाहता हूँ आप इस संसार में नामी बनें॥

(७०)

मैं जा रहा हूँ पर सफलता आप सबके हाथ है।
यह आपका सम्मान्य बल बलिदान मेरे साथ है॥
कह दीजिए जागे हमारे देश में स्वाधीनता।
मिट जाय इस संसार में फैली हुयी वह दीनता॥

(७१)

उपरोक्त भाषण से हृदय की पुण्य परिभाषा जगी।
सम्मान, बल, बलिदान की कमनीय अभिलाषा जगी॥
यौवन हुआ अभिषिक्त जयजयकार सब करने लगे।
मन में प्रबल स्वाधीनता के भाव भी भरने लगे॥

(७२)

निज देश के उद्धार का आधार मानों मिल गया!
सुख का-सफलता का महा उपहार मानों मिल गया!
संसार का ऐश्वर्य अपरम्पार मानों मिल गया!
सन्तप्त लोगों को सुधा का सार मानों मिल गया!

(७३)

आनन्द निधि में मग्न होकर भावनायें जो उठीं।
माधुर्य का पीयूष नूतन कल्पनायें पी उठीं॥
यौवन पराक्रम पूर्ण था सहयोग जीवन में भरा।
बस होगयी उल्लास से संवर्द्धिता उस दिन धरा॥

(७४)

कवि के करों ने पूज्य चरणों की सुरज सिर पर चढ़ा।
था अब लिया शुभ स्नेह के अतिरेक से मन को बढ़ा ॥
श्रीहर्ष भावावेश में अनुरक्त होकर खो उठे।
नवपुण्य के सम्पर्क से थे प्राण पुलकित हो उठे ॥

(७५)

लौटे घरों को लोग थे मन में कसक सी कुछ भरी।
हिलती तरङ्गों से चली अनुकूल धारा में तरी ॥
उस नील जल की राशि पर थी नाव भागी जा रही।
जिस पर प्रभाकर की प्रभा थी दिव्यता बरसा रही ॥

(७६)

कल शोक से जो था विकल वह था विकल अब स्नेह से।
निकला तपस्वी आज यह बनकर प्रवासी गेह से ॥
उसके हृदय में कर्म का—उत्सर्ग का अनुराग था।
संसार के उत्कर्ष का आधार उसका त्याग था ॥

(७७)

यह धर्म निकला जूझने संसार के संग्राम में।
आदर्श का अवतार यह सन्ताप सङ्कुल धाम में ॥
प्राचीन जीवन कर्म का संयोग था बरसा रहा।
यह पुण्य सम्बल का नया यौवन जगाने जारहा ॥

(७८)

अपनी महागाथा लिए अविभाज्य भारत की मही।
उस त्याग तप की मूर्ति को थी देख आँखों से रही ॥
गम्भीर उसकी मौन मुद्रा देखने ही योग्य थी।
उसकी सदिच्छा विश्व में फैला रही आरोग्य थी ॥

(७६)

तपवृद्ध विद्यावृद्ध उस आचार्य की गम्भीरता।
उसकी परम तल्लीनता सुखकारिणी शालीनता।।
मन में जगाती देश की सत्कीर्ति थी ओजस्विनी।
इस सृष्टि की अनुदारता उसकी महत्ता से छिनी।।

(८०)

आगे बढ़ा है आज वह चिन्ता लिए संसार की।।
उसने कभी सोची नहीं है बात अपनी हार की।।
उसको नहीं परवाह इसकी कौन उसके साथ है।
वह भाग्य निर्माता स्वयं यह भाग्य उसके हाथ है।।

(८१)

यहाँ है प्राणों का उत्कर्ष,
कर्म की महिमा अपरम्पार।
यहाँ है सर्वार्पण की साध,
अमर है दुखियों का संसार।।

(८२)

लेखनी! मत जीवन से ऊब,
भानुजा के जल में यों तैर।
अग्रसर होना तेरा काम,
कहाँ का प्रेम! कहाँ का बैर!

(८३)

भागती नीले जल पर नाव,
इधर काँटों में बिखरे फूल।
समय कब होता एक समान,
अरे! मन ये दुख के दिन भूल।

(८४)

उठी है पीड़ा की झकझोर,
व्यथित है यौवन का आलोक।
विश्व की सुन्दरता की देन,
मनाती चिन्तित होकर शोक॥

(८५)

यहीं है वह फूलों का लोक,
जहाँ अब तक रमते थे गीत।
सुघर हाथों का देकर प्यार,
यहीं पर विधु जाती थी जीत॥

(८६)

मालती की मतवाली कुञ्ज,
बनी थी सचमुच ही अभिशाप।
जहाँ पर लेकर मन का भार,
व्यथित विधु बैठी थी चुपचाप।

(८७)

आँसुओं का वह तरल स्वरूप,
नवल नयनों से उमड़ा आज।
जहाँ सुख ही सुख का अतिरेक,
वहाँ दुख का दुर्दम्य समाज!

(८८)

दुखी नयनों से टपके बूँद,
कुञ्ज से टपके उजले फूल।
हुआ दुख में जिसका अभिषेक,
फूल थे उस अञ्चल के शूल॥

(८९)

हृदय में ले पीड़ा की बाढ़,
सोचती विद्युलेखा निरुपाय।
व्यथा की करुणा की अनुभूति,
अरे! नारी कितनी असहाय!

(९०)

पुरुष क्या सचमुच ही पाषाण!
सीखता औरों का बलिदान!
और नारी वह कितनी हीन!
यही क्या मान! यही सम्मान!

(९१)

दैव ने कर दी सूनी गोद,
और पति को भाया कल्याण।
व्यर्थ वह स्नेह! व्यर्थ अनुराग!
पले जिसमें भाभी के प्राण॥

(९२)

स्नेह का ममता का यह ह्रास!
अरे! पुरुषों के ऐसे काम!
समझते हैं यों ही सब लोग,
लोकहित निर्दयता का नाम॥

(९३)

वहाँ भाभी रोती दिन रात,
तड़पता है मातृत्व महान।
यहाँ वह स्नेह कहाता मोह,
प्यार कहलाता है अज्ञान॥

(६४)

कहाँ माता का मञ्जुल प्यार !
कहाँ भव का नीरस जड़वाद !
कहाँ मङ्गलमय सुख संयोग !
कहाँ यह इस मन का उन्माद !

(६५)

विश्व भर में बरसा अभिशाप,
मचा यह जीवन का संहार।
मिटाकर अपना सुखद स्वरूप,
सुखी बनने जाता संसार !

(६६)

मृदुल मानव का कोमल रूप,
आज कितना हो रहा कठोर।
हृदय की मञ्जुलता अभिराम,
बनी सचमुच वज्रादपि घोर ॥

(६७)

व्यथा का खारा पारावार,
उमड़ता जिन आँखों में आज।
झोंकता उन आँखों में धूल,
आज का यह उन्मत्त समाज ॥

(६८)

आज भाभी के मन की आह,
समझ सकने में सब असमर्थ !
सभी करते हैं आज सगर्व,
कमल के दल का कण्टक अर्थ !

(९९)

हृदय का धन, प्राणों का प्राण,
कहाँ वह नयनों का आलोक ?
धँसा इस जीवन में दुख डाल,
अरे ! माँ के मन का यह शोक ।।

(१००)

पुरुष क्या समझे यह सब हाय !
यहाँ क्या भाव ! यहाँ क्या मोल !
हृदय की होती कैसे नाप !
हृदय की कैसे होती तोल !

(१०१)

अरे ! माँ की ममता का मोल,
आँकता यह पागल संसार !
भरा जिसमें नीरस उन्माद !
भरा जिसमें वैभव का भार !

(१०२)

पिता से सुलझे जन मतिमान,
तथा भइय्या से भावुक लोग ।
भटक कर सब जाते हैं भूल,
हृदय के धन का मृदु उपयोग ।।

(१०३)

फूल से तारक की कर याद,
भले भाभी बिलखे दिन रात ।
न पर इनमें उसकी अनुभूति,
न करते कोई उसकी बात ।।

(१०४)

आज जो काशी में एकत्र,
महा विद्वानों का समुदाय।
न क्या उनका निज का है दोष,
बनाने में हमको असहाय॥

(१०५)

दुःख बनकर खलता है आज,
पिता का यह निष्ठुर प्रस्थान।
और भइय्या का यह वैराग्य,
हृदय को कर देता है म्लान॥

(१०६)

अँधेरे जीवन की जो ज्योति,
प्रबल पौरुष का जो वामाङ्ग!
पिलाती जो भव भर को दूध,
वही नारी इतनी विकलाङ्ग!

(१०७)

अरी! तू शक्ति, अरी! तू भक्ति,
अरी! तू जीवन का नव राग।
अरी! तू मन की मञ्जुल प्रीति,
अरी! नारी अब तो उठ जाग!

(१०८)

दिखा दे! अपने पद का मान,
दिखा दे! मृदु मन का अनुराग।
बना दे! इस धरती को स्वर्ग,
महामाया भव की! उठ जाग!

(१०९)

वरद वसुधा में उमड़े पुण्य,
चुकाने को अपना वर भाग।
कहा कण कण ने आज सगर्व।
महामाया! अब तो उठ जाग!

(११०)

हुआ सस्मित नीला आकाश,
किया रवि ने यौवन में याग।
दिशायें हो बोलीं उन्मुक्त,
अरी! भव की नारी उठ जाग!

(१११)

हिले द्रुम दल आनन्द विभोर,
लताओं से मचला अनुराग।
भ्रमर सुख से गाते थे गीत,
महामाया! सो मत, उठ जाग!

(११२)

बसा कलियों में आज विकास,
भरा फूलों में पुण्य पराग।
विहग चहके होकर स्वच्छन्द,
अरी! भव की नारी उठ जाग!

(११३)

विकल भव में जागा आवेश,
लगी घायल प्राणों में आग।
व्यथित मन में उमड़ा विद्रोह,
अरी! भव की नारी उठ जाग!

(११४)

नसों में खुलकर खौला रक्त,
हृदय से भागा आज विराग।
रहा कोई अनुरक्त पुकार,
अरी ! भव की नारी उठ जाग !

(११५)

उठी विधु व्याकुल होकर आज,
गया फूलों का बिखर पराग।
जगाया मानस ने विद्रोह,
अरी ! नर की नारी उठ जाग !

(११६)

रुकी, उठकर टहली कुछ देर,
पुनः बैठी विधु होकर व्यग्र।
उठी फिर होकर भाराक्रान्त,
चली वह ले आवेग समग्र॥

(११७)

कुसुम कलियों से बोली रूठ,
उठो ! तुम भी दो मेरा साथ।
मचावें हम मिलकर विद्रोह,
कहावें क्यों असमर्थ अनाथ ?

(११८)

ललित लतिकाओं को कर प्यार,
कहा उसने कर दो विद्रोह॥
अशुभ सर्वत्र परायी गोद,
स्नेह जब कहलाता है मोह॥

(११९)

कपोती थी चुगती चुपचाप,
साथ में लेकर अपना जोड़।
सुना उसने विधु का अनुरोध,
उड़ो! झूठे बन्धन दो तोड़।

(१२०)

कमलिनी कर कमलों का साथ,
गयी थी सब अपना पन भूल।
कहा विधु ने उससे भय छोड़!
बिछा मत अपने पथ में शूल॥

(१२१)

उड़ी फूलों से सरस सुगन्ध,
कहा उसने उसको सज्ञान।
बनी यह तो सचमुच स्वाधीन!
धन्य इसका अपना सम्मान॥

(१२२)

सरोवर में अपना प्रतिबिम्ब,
दिखा उसको सौन्दर्य निधान॥
कहा विधु ने मेरा यह रूप,
कहाता निर्बल, हो बलवान॥

(१२३)

चटकता मृग शावक स्वच्छन्द,
हुलस कर आया उसके पास।
सरसता से सारस ने बोल,
बताया पास नहीं मधुमास!

(१२४)

उलझती जाती अपने आप,
विना सुलझी यह मन की डोर।
कभी क्या यों लगता है हाथ,
प्रणय जीवन धन भाव विभोर!

(१२५)

दिखे आते विधु को श्रीहर्ष,
धँसा बस नयनों में उन्माद।
जगा भावों का नव आवेग,
लिये यह अलबेला संवाद॥

(१२६)

कहा विधु ने तजकर सङ्कोच,
नहीं पढ़ना है मुझको आज।
वहाँ की सारी शिक्षा व्यर्थ,
जहाँ इतना हो शुष्क समाज॥

(१२७)

व्यर्थ पुस्तक का सारा ज्ञान,
व्यर्थ केवल शाब्दिक संग्राम!
आज मैंने देखे प्रत्यक्ष,
निरर्थक तुम पुरुषों के काम!

(१२८)

देश के प्रति जो हो उद्विग्न,
जाति के प्रति जिसको हो प्रेम!
जिसे अपने पन का अभिमान,
सफल है उसका योगक्षेम!

(१२९)

बड़प्पन का करना निर्वाह,
विश्व में किन्तु जटिल तम काम।
बनाना अपने को सङ्कीर्ण,
मृत्यु का आमंत्रण अविराम ॥

(१३०)

बनी शिक्षा पुरुषों का पाठ,
अरे ! तुम सब तो एक समान !
तुम्हें भौतिकता की परवाह,
तुम्हें बस हरदम अपना ध्यान ॥

(१३१)

व्यर्थ का क्यों करते हो ढोंग ?
मरे बस मरने दो संसार !
निर्बलों को तुम ठोकर मार,
करोगे दुनियाँ का उद्धार !

(१३२)

तुम्हीं बोले मुझको कै बार,
पढ़ायी थी तुमने यह नीति।
मधुर सबसे माता का स्नेह !
मधुर सबसे माता की प्रीति !

(१३३)

किन्तु वे बातें थीं उपदेश !
वस्तुतः था मन में कुछ और !
निरे बस आडम्बर के बीच,
पुरुष बन जाता है सिरमौर !

(१३४)

अरे ! इस माँ का यह सम्मान !
अरे ! उस माँ का यह अपमान !
अरे ! हम जिस माँ की सन्तान,
उसी पर ऐसे शर सन्धान !

(१३५)

नहीं तुमको भाभी की याद,
नहीं उनका भइय्या को ध्यान !
तुम्हीं दोनों के बल से आज,
पिता जी ने ठाना प्रस्थान !

(१३६)

हुयी है जिसकी सूनी गोद,
छिना जिसके अञ्चल का लाल ।
बिलखता है जिसका मातृत्व,
भली उसकी यह हाय ! सम्हाल !

(१३७)

समझते हो तुम यह सब व्यर्थ !
भले तुम शिक्षा के भण्डार !
मिटे ऐसी शिक्षा का भार !
जले ऐसी शिक्षा का सार !

(१३८)

तुम्हारे मुहँ के कोमल शब्द,
तुम्हारी यह वाणी अनमोल ।
तुम्हारा थोड़ा मृदु व्यवहार,
व्यथा में बल सा देता घोल ॥

(१३६)

किन्तु तुमको बिकने की चाह !
तुम्हें भाता लौकिक सम्मान !
तुम्हें कहले संसार समथ !
भुला दोगे तुम सबका ध्यान !

(१४०)

बता दो भइय्या को जा आज,
हृदय मेरा यह है निर्दोष।
भरा मेरे मन में परिताप,
भरा है मेरे मन में रोष ॥

(१४१)

गड़े लज्जित होकर श्रीहर्ष,
गरज सुनकर ऐसी गम्भीर।
हुआ सचमुच मानों अपराध,
उठी अन्तर में ऐसी पीर ॥

(१४२)

लगे कहने वे "बस या और"
कहो कह लो, सब कुछ तुम आज।
समझती हो तुम जितना तुच्छ,
नहीं है उतना तुच्छ समाज ॥

(१४३)

पुरुष क्या पत्थर की प्रतिमूर्ति ?
"पुरुष क्या है जीवन से हीन ?
समझती हो क्यों तुम यह व्यर्थ ?"
हृदय के हम सब होते दीन ?

(१४४)

नहीं भाभी का हमको ध्यान!
हमें केवल बिकने की चाह!
हमें प्यारा केवल सम्मान!
हमारी बस अलबेली राह!

(१४५)

सुनो इन दोषों का आरोप,
करो जितना तुम चाहो आज।
नहीं हो सकता इससे किन्तु,
सुनो, पुरुषों का तुच्छ समाज॥

(१४६)

वहाँ काशी में पूज्य पितृव्य,
करेंगे भारत का उपकार।
नहीं इसमें मुझको सन्देह,
भरेंगे वे भव का भण्डार॥

(१४७)

पढ़ो मत तुम, पर निस्सन्देह,
पठन ही जीवन का उपदेश!
इसीसे मानव जीवन स्वर्ग,
इसीसे पावन भारत देश!

(१४८)

अरे! कल का दिन कितनी दूर,
तुम्हारी इच्छा के अनुकूल।
करेंगे भइय्या भी प्रस्थान,
न हम सकते भाभी को भूल॥

(१४९)

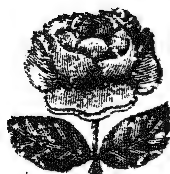
चलो अब जाने की क्या बात ?
मिटा उसका जब आज महत्व ।
कहा विधु ने मन में भर रोष,
नहीं कुछ इन बातों में तत्व ॥

(१५०)

हृदय में जागी मन की खीझ,
लगी अन्तर में दुख की आग ।
विकल थे दोनों जन बस आज,
नयन बरसे बनकर अनुराग ॥

(१५१)

उठी दोनों में एक पुकार,
अरी ! नारी कितनी निरुपाय !
बसी दोनों में करुणा आज,
बनाकर दोनों को असहाय !



एकादश सर्ग

(१)

पवन हहरता चला, भुवन की काँपी काया।
सिमटा डर से दिवस, न उसने यौवन पाया॥
क्षुब्ध हुआ आकाश, व्यथित बल विक्रम भागा।
कठिन समय आगया, कष्ट प्राणों में जागा॥

(२)

चल थे जैसे अचल, अचल चञ्चल हो डोले।
धरा सहम सी उठी, विकल हो पञ्छी बोले॥
खेत लिपट से गये, धूल हलकी हो भागी।
जाग उठा सङ्कोच, प्रगति नदियों ने त्यागी॥

(३)

जलज हुये हतचेत, देखकर जल की पीड़ा।
सर में सिसके भृङ्ग व्यथा की जागी क्रीड़ा॥
कुमुद दलों ने आज, स्नेह के साधन खोये।
जो सुख पाकर हँसे वही दुख पाकर रोये॥

(४)

नहीं वनों में दिखे कहीं मृग दौड़ लगाते।
पशु चरते थे नहीं ठिठक कर थे रह जाते॥
सारा विश्व सभीत शीत का बल था छाया।
परम प्रबल हेमन्त महा भीषण बन आया॥

(५)

सिर पर था आकाश खुला धरती थी नीचे
पड़े मार्ग में खेत शीत की गति से सींचे॥
भाग रहा था एक सुसज्जित रथ गतिशाली।
जुते बैल बलवान प्रगति जिनकी थी ढाली॥

(६)

हाँक रहा था चतुर बैठकर अनुचर आगे।
रथारूढ़ कवि आज भाग्य इस पथ के जागे॥
एक एक कर गाँव, बाग, बन छूटे जाते।
लोचन दर्शन लाभ शीत की ऋतु में पाते॥

(७)

क्षोभ हृदय में भरे सोचते थे श्रीपण्डित।
यह भारत था कभी परम गौरव से मण्डित।
थे स्वतन्त्र हम कभी कभी था नाम हमारा।
घर घर में थी बही सुकृत के रस की धारा॥

(८)

किन्तु व्यथा की कथा आज तो घर घर होती।
भारत माता आज लाज दर दर पर खोती॥
कोटि कोटि हम आज विश्व में पिटते जाते।
निर्विरोध हम आज मौन हो मिटते जाते॥

(९)

इसी देश की ढाल हिमालय था कहलाता।
इसी देश से सदा जगत ने जोड़ा नाता॥
इसी देश की कीर्ति फैलकर विन्ध्य जगाता।
इसके पैर पखार समद्र सागर लहराता॥

(१०)

इसमें बहती सदा पुण्य रस पाकर गङ्गा।
यहीं खेलती खेल भानुजा तरल तरङ्गा॥
सिन्धु इसी में बही यहीं विधिजा लहराती।
प्रमुदित गोदावरी यहीं पर केलि मचाती।

(११)

यही राम की भूमि कृष्ण की रति गतिशीला।
पुण्यभूमि यह मञ्जु बुद्ध की जीवन लीला॥
सीता का अनुराग यही वसुधा सुखदानी।
इसकी सुख सम्पत्ति महामति राधा रानी॥

(१२)

वेदों का सङ्गीत यहीं जीवन बन छाया।
यही भूमि रमणीय लोक की मञ्जुल माया॥
भव की संस्कृति बसी इसी में परम पुनीता।
दिव्य ज्ञान की बनी सदा यह गौरव गीता॥

(१३)

सारा सुख सन्तोष जहाँ पर था सुख पाता।
जन जन में आलोक जहाँ था बल बरसाता॥
जिसके यश के गीत निरन्तर भव था गाता॥
जन्म जन्म की वही हमारी भारत माता॥

(१४)

ज बनी असहाय ! अकिञ्चन ! सम्बलहीना !
अरे ! भीख पर आज उसी का निर्भर जीना !
महा प्रबल आपत्ति जुटी फैली कङ्गाली !
जीवन का कर लोप मिटी सम्पत्ति प्रणाली !

(१५)

हम निज स्वत्व हमें पर वृत्ति सुहाती।
मकी दीनता घोर निरन्तर हमें मिटाती ॥
तन के मन के हीन तथा जीवन के थोड़े।
कोटि कोटि हम आज पड़े अपना बल तोड़े।

(१६)

वृत्ति सङ्कीर्ण सदाशयता भी भागी।
जागा दुख दारिद्रय घृणित कातरता जागी ॥
सुख स्वतंत्रता हीन क्षीण हम भारतवासी।
पराधीन बन गये घरों में भरी उदासी ॥

(१७)

ऽल अङ्ग प्रत्यङ्ग सोच से कवि के काँपे।
उमड़ा भावुक हृदय सहज मग अपना ढाँपे ॥
व्याकुल बरसे नयन बढ़ी जब मन की पीड़ा।
बरसी परम कठोर प्रकृति की निष्ठुर क्रीड़ा ॥

(१८)

न था तम संत्रस्त झुके अब बादल काले।
उपजी दिन में रात महा बिपदा सिर डाले ॥
कड़क उठा अब व्योम हृदय व्याकुल डिग डोला।
चमकी चपला चपल गरजकर जब नभ बोला ॥

(१६)

प्रलयङ्कर बन मेघ बरसकर रुकना भूले।
उमड़े घुमड़े और धरा के ऊपर झूले॥
टप टप टपके बूँद हिली धरती की छाती।
झर झर बरसा मेह बढ़ी बिपदा अरराती॥

(२०)

महा मूसलाधार झिमट कर बरसा पानी।
हुये नदी नद क्रुद्ध विकट कट बरसा पानी॥
बरसा व्याकुल व्योम विकल धरती थी होती।
प्रकृति भयङ्कर बनी विवश सी होकर रोती॥

(२१)

विदा दिवापति हुये निशा ने शङ्ख बजाया!
छाया तम का त्रास भयङ्कर बनकर छाया!
घिरी निरी आपत्ति विकट थी रात अँधेरी!
महादुःख की आज बजी जीवन में भेरी!

(२२)

जल परिपूरित पन्थ बड़ी बिपदा थी छायी।
पशु पत्ती असहाय मरण वेला सी आयी॥
बच्चे चिपके पड़े, गोद माँ की भयभीता।
घर घर व्याकुल राम विकल थीं घर घर सीता॥

(२३)

काँपे रथ के बैल सारथी भी अकुलाया।
एक ग्राम में पहुँच न रथ आगे बढ़ पाया॥
गङ्गा का तट जान वहाँ उतरे श्रीपण्डित।
जल सङ्कुल था मार्ग जहाँ कट कटकर खण्डित॥

(२४)

परिचित जन सब जुटे जिन्हें थी ज्ञात कहानी।
बेटी सी थी जिन्हें दुलारी रत्ना रानी॥
हृदय थाम कर सुनी उन्होंने बातें सारी।
काशी का प्रस्थान उपस्थित विपदा भारी॥

(२५)

द्रवित व्यथा से लोग शोक आँखों में छाया!
करुण कथा ने उमड़ हृदय का धैर्य बहाया!
जागा नव सन्ताप! वेदना मन की फूटी!
नश्वर भव के हेतु अनश्वरता सब टूटी!

(२६)

लोगों ने रथ रोक सारथी को ठहराया।
कविते! सब कुछ झेल तुझे बढ़ना ही आया॥
घर घर फैली बात परम बनकर दुखदायी।
श्रीपण्डित के हेतु गयी फिर नाव मँगायी॥

(२७)

रुका भयङ्कर मेह नाव पर जलीं मशालें।
जल में जागीं आज दुःख की दारुण तालें॥
सबसे लेकर बिदा परम करुणा से डूबे।
हृदय शोक संत्रस्त नाव पर चढ़ कवि ऊबे॥

(२८)

चली उछलती नाव चतुर नाविक दल सारा।
असामयिक उद्वेग विकल गङ्गा की धारा॥
छप-छप करते डाँड़ बोलते केवट बोली।
हिलती डुलती हुयी बढ़ी जल में यह टोली॥

(२६)

गङ्गा की मँझधार निशा की तामस काया।
बही वेग से नाव शोक ने योग जगाया॥
केवट थे चुपचाप देखते जल की लीला।
कवि का भावुक हृदय हुआ भावों से ढीला।

(३०)

श्वसुरालय का दीप दिखा आँखों के आगे।
दूनी गति से करुण भाव मानस के जागे॥
सोच रहा कवि हाय! प्राण प्रिय रत्ना मेरी।
तुझको दुनियाँ आज हुयी सर्वत्र अँधे

(३१)

तारक तेरा लाल! युगल नयनों का तारा!
जीवन का सौन्दर्य! स्नेह का दिव्य सहारा!
आज गया किस लोक तुझे यों छोड़ अकेली
रत्ना वह रस राशि! कहाँ तेरी अल

(३२)

वह तारक जो तुझे खिझाता और हँसाता।
वह तारक जो तुझे हुलस कहता था माता॥
वह तारक जो तुझे पुण्य की पूर्ति बनाता
चला गया वह हाय! तोड़कर तुझसे

(३३)

तू माता थी सत्य पिता मैं तो था झूठा।
मेरा तारक हाय! सदा को मुझसे रूठा॥
सचमुच यह दुर्भाग्य उसे मैं देख न पा
कैसे समझूँ व्यर्थ विश्व की ममता

(३४)

रक्षा कर तू क्षमा सत्य ही मैं अपराधी।
मैंने तेरी शक्ति जगत में तनिक न साधी॥
तारक के ही साथ मिटे सारे सुख मेरे।
अपराधी मैं आज खड़ा हूँ सन्मुख तेरे॥

(३५)

हिला व्यथित हो हृदय दुःख उमड़ा घन भारी।
रोये लोचन विकल रात रोयी अँधियारी॥
रोये नभ नक्षत्र देख जीवन का दङ्गा।
रोयी सब कुछ भूल परम शोकाकुल गङ्गा॥

(३६)

रोये विह्वल भाव उखड़ कर कविता रोयी।
रोया करुण वियोग व्यथा तज्जनिता रोयी॥
रोये जल जल प्राण विकल बन धीरज रोया।
रोया रक्त सशक्त पिता का तन मन रोया॥

(३७)

अचल हुयी जब नाव हृदय में हलचल जागी।
सब था नित्य अनित्य चित्त मचला अनुरागी॥
पाकर हाँ मँझधार सदा डूबा भव सारा।
कवि डूबा यह आज किन्तु जब मिला किनारा!

(३८)

नाविक सब चुपचाप उतर कर नीचे आये।
बाँधी नाव सयत्न हृदय में मौन जगाये।
दूना हुआ प्रकाश भभक कर उठीं मशालें।
व्यथित हृदय सब हाय! व्यथा क्यों आज सम्हालें॥

(३९)

उठे छिपाते हुए दुःख की दारुण गाथा।
यद्यपि जर्जर हृदय किन्तु सर्वोन्नत माथा॥
श्रीपण्डित तत्काल प्राप्त वह जान किनारा।
उतरे फिर बढ़ चले चला फिर दल बल सारा॥

(४०)

आया घर फिर अन्धकार में रोने वाला।
जीवन का दुख दैन्य अनिच्छित ढोने वाला॥
जहाँ पिता से तथा व्यथित माता से रोती।
रत्ना थी सन्तप्त पुत्र के दुख से होती॥

(४१)

दारुण व्यथा विभोर रात ने ली अँगड़ाई।
उठे भवन के लोग शोक ने आग लगाई॥
भूला सब कुछ हाय ! किन्तु क्यों भूले रोना ?
यही विश्व का भाग्य व्यथा से व्याकुल होना॥

(४२)

बन्धु दुखी हो मिले श्वसुर ने कण्ठ लगाया।
रोयी कलपी सास दुःख घर भर में छाया॥
दाहक शोकावेग विकल प्राणों से फूटा।
सचमुच तारक आज लगा इस घर से छूटा॥

(४३)

सारा घर सन्तप्त बढ़ी अन्तर की पीड़ा।
बनकर दुर्दमनीय काल की जागी क्रीड़ा॥
भभकी परम सरोष हृदय की दारुण ज्वाला।
लपटें ऊपर उठीं विपुल विह्वल विकराला॥

(४४)

मृत्यु ! पुत्र की मृत्यु ! दिखी आँखों के आगे।
पड़कर जिसमें प्राण हृदय की निधि ने त्यागे॥
छूटे उसके प्राण तथा छूटी प्रिय काया।
जिसने माँ का दूध सम्हलकर छोड़ न पाया।

(४५)

अकल विकल आवास निशा का नीरव रोदन।
करता भव में आज व्यथा का उठ अनुमोदन॥
व्यस्त तथा संत्रस्त महा करुणा में डूबे।
दीन हीन अति क्षीण सभी जीवन से ऊबे॥

(४६)

गिरने पड़ने लगे हृदय के दुख के मारे।
आँखों से बह चले शोक से क्षुब्ध पनारे॥
तारक का दुख आज रुलाने को फिर आया।
माँ को अपना लाल दिखा आँखों में छाया॥

(४७)

रत्ना रस की राशि प्रकृति के करों सवाँरी।
कल्पलता सी विकल पड़ी थी हिम की मारी॥
पाकर वह एकान्त फफक कर पति से रोयी।
माँ के मन की व्यथा न पड़कर भव में सोयी॥

(४८)

तन में करुणा भरी भरा था मन में रोना।
धरती का अभिशाप बना जीवन का ढोना॥
नयनों में सन्ताप हृदय में दारुण ज्वाला।
खोकर अपना प्यार बनी रत्ना विकराला॥

(४९)

बिखरे रूखे बाल कमल सा आनन रूखा।
माँ का पागल प्यार आज ममता का भूखा॥
उबला उर का रक्त आँसुओं में बह छाया।
सुन्दरता में आज सबल बन शोक समाया॥

(५०)

सम्हल रही थी नहीं मलिन सी तन की सारी।
दुख से जर्जर पड़ी निराभरणा सुकुमारी॥
सूखे मञ्जुल अधर निबल थी कञ्चन काया।
दारुण पुत्र वियोग जलाने माँ को आया॥

(५१)

जीवन से वह क्षीण क्षीण थी उसकी वाणी।
वह बल सम्बल हीन भाग्य की अकथ कहानी॥
जिला जिलाकर हाय उसे परिताप जलाता।
प्रबल भाग्य का दोष तड़पती जिससे माता॥

(५२)

उसे देख इस भाँति धैर्य की काया काँपी।
इस विधि का प्रतिघात अरे क्या इतना पापी!
कहाँ सरस सुख राशि कहाँ यह दुख की ज्वाला!
सुन्दरता पर बरस पड़ी बिपदा विकराला

(५३)

तल्प शीर्ष पर बैठ पाणि पल्लव के द्वारा।
प्रिय ने ऊपर उठा प्रिया को दिया सहारा॥
उनका दारुण दुःख अधिक अब बढ़कर फूटा।
जीवन का धन हाय! दैव ने उनका लूटा

(५४)

रोयी धीरज छोड़ विकल होकर अति माता।
माँ के मन का क्षोभ विश्व में कहाँ समाता?
ये आँसू जो व्यथित लोचनों से बह आये।
बस अपना संसार यही सर्वत्र बसाये।

(५५)

निज प्रियतम द्वारा बोधिता दुःखदग्धा।
वह करुण कथा की अञ्जना मूर्तिमाना॥
पति हृदय व्यथा के आँसुओं से भिगोती।
सिसक सिसक बोली शोक सन्तप्त रत्ना॥

(५६)

प्रियतम! तुम आये हाय! क्या देखने को?
यह मुझ दुखिया की गोद तो आज सूनी!
वह सुकृत अनोखा स्नेह सारा तुम्हारा!
इस मुझ अबला से खो गया नाथ मेरे!

(५७)

सुत हृदय दुलारा खो सदा सर्वदा को।
जल जल मरती हूँ छीजती हूँ न तो भी॥
बस व्यथित व्यथा से मन्द मैं भाग्यहीना।
झटपट मर जाऊँ कामना नाथ! मेरी॥

(५८)

उस दिन ज्वर से था लाल सन्तप्त मेरा।
घर पर न सकी मैं रोक देखो तुम्हें तो॥
असफल वह होगी पापिनी पुण्ययात्रा।
प्रियतम! बतला दो मैं न क्यों जान पायी?

(५९)

किस तरह भुला दूँ भूलती ही नहीं है।
अनुपम गति मेरे लाल के लोचनों की॥
विकसित छवि मेरे लाल की माधुरी की।
अब फिर न कभी क्या देख आँखें सकेंगी ?

(६०)

कुछ कह न सकी थी हाय! सङ्कोच से मैं।
तुम उस दिन जो यों छोड़ जाते नहीं तो॥
प्रियतम ! तुमको तो अन्त में देख लेता।
अतिशय मृदु जी का लाड़ला लाल मेरा॥

(६१)

वह कमल सरीखी कोमला कान्त काया।
किस तरह हुयी थी बेधिता शीतला से॥
वह निपट हठीली काल की क्रूर लीला।
प्रियतम ! सब देखी पातकी लोचनों ने॥

(६२)

पड़कर मतवाले काल के क्रूर हाथों।
घुल घुल कर मेरे लाल ने प्राण छोड़े॥
पर अब तक जीती जागती मैं अभागी।
प्रियतम ! यह मेरे दैव की घात देखो॥

(६३)

घर पर बहुतेरी औषधें यों पड़ी हैं।
यह चुभ उठती है चित्त में बात तीखी॥
पर निपट निराली लोक की ये प्रथायें।
प्रियतम ! उमड़ी थीं लाल के प्राण लेने॥

(६४)

वश चल न सका हा ! काल की वञ्चना से।
छिन सहज गया हा ! प्राण सा पुत्र मेरा॥
मुख अब तुमको मैं नाथ ! कैसे दिखाऊँ ?
निज प्रिय सुत हीना निर्बला रिक्तहस्ता॥

(६५)

बिलख बिलख मैंने पुत्र की चिन्तना से।
उस भव परितापी दैव को था पुकारा॥
पर निठुर सदा का वञ्चना का पुजारी।
अविकल वह आया लाल के प्राण लेने॥

(६६)

तुम प्रिय ! बतला दो मुक्ति की युक्ति कोई।
अब यह न मुझे है विश्व सारा सुहाता॥
निज हृदय दुलारे लाल के लोभ से मैं।
उस नरकपुरी की मृत्यु को चूम लूँगी॥

(६७)

घर भर अकुलाता घोर सन्ताप से था।
विचलित मुख प्यारे लाल का देख मेरे॥
पर वह मतवाला स्वर्गवाला विधाता।
उस दिन न किसी के आँसुओं से पसीजा॥

(६८)

यह भव उसकी ही कीर्ति के गीत गाता।
जिस जगत पिता से वेदना प्राप्त होती॥
किस तरह मुझे हा ! आज स्वीकार होवे।
उस परम प्रतापी दैव की छत्रछाया॥

(६९)

यह उर फटता है फूटता है कलेजा।
इस विपुल व्यथा से प्राण हैं पङ्गु मेरे॥
जल जल अकुलाती डूबती वेदना में।
किस तरह कहो मैं लाल को भूल जाऊँ॥

(७०)

किस किस युग के ये शोक सन्ताप फूटे!
सब अशुभ क्रियायें आज फूटी कहाँ की!
प्रतिफल किस मेरे पाप का हा मिला है!
बरबस चढ़ आया हाय! दुर्भाग्य मेरा!

(७१)

जब वह जननी है विह्वला आज रो रो।
प्रिय सुत जिसका है दैव ने मार डाला॥
तब फट पड़ती है क्यों नहीं हा! धरित्री।
प्रिय! यह दुखिया मैं पूछती हूँ बता दो!

(७२)

कब तक भटकेंगे दुःख में प्राण मेरे!
अब कब तक आँखें बावली काम देंगी!
कब तक यह छाती वज्र सी हो रहेगी!
कब तक प्रिय! रो रो और जीना पड़ेगा!

(७३)

बरबस जिसकी यों हाय! हो गोद सूनी।
हरदम नयनों के सूखते हों न आँसू॥
जिस विगलित माँ की दूध की धार सूखी।
अब बस उसकी तो मृत्यु ही में भलाई॥

(७४)

प्रिय ! यह सुतहीना निर्बला क्षीणपुण्या।
अब तलक तुम्हारी क्षुद्र वामाङ्गिनी थी॥
इस विरह व्यथा में माँगती नाथ! रो रो।
अब बस इसको दो मृत्यु की भीख माँगे॥

(७५)

बचपन सब बीता प्यार के पुण्य में ही।
पर व्यथित जवानी रो रही है व्यथा से॥
झुक झुक मुझको तो क्रूरता से जलाते।
इस निपट अभागे भाग्य के भोग मेरे॥

(७६)

अब विकल सदा की दुःख की सङ्गिनी मैं।
किस तरह व्यथा से दुर्दिनों में न रोऊँ॥
प्रिय ! तुम बतला दो धैर्य पावे कहाँ से!
अब वह जननी जो विश्व में भाग्यहीना!

(७७)

वह परम अभागी पाप की पुञ्ज माता।
सुत मरण खड़ी जो देखती और जीती॥
तिस पर उसको जो नाथ आवे न रोना।
बस प्रलय मचेगी नष्ट संसार होगा॥

(७८)

तुम मत अब रोको प्राण ! रोने मुझे दो।
इस तड़पन से ही प्राप्त होगी भलाई॥
इन जिन नयनों ने लाल की मौत देखी।
अब निलज बचें क्यों विश्व को देखने को॥

(७९)

बन विकल व्यथा से लाल के हेतु रोना।
तड़पन यह जी की वेदना जन्य ज्वाला ॥
यह अधम सदा का शोक सन्ताप मेरा।
प्रियतम! इस फूटे भाग्य का दोष ही तो ॥

(८०)

फिर किस मुहँ से हा! दैव को दोष दूँ मैं।
किस तरह बताऊँ विश्व को दुःखदायी ॥
घिर घिर जब मेरे भाग्य के दोष आये।
इस मुझ दुखिया को सर्वदा को रुलाने ॥

(८१)

यह कलक मिटेगी दुःख की हाय कैसे?
यह जलन बुझेगी शोक की क्यों बुझाये?
किस तरह रुकेगी धार हा! आँसुओं की?
यदि फिर न मिलेगा विश्व में लाल मेरा ॥

(८२)

अब बस जलना ही जन्म का धर्म मेरा।
यह इस विपदा की वेदना अन्तहीना ॥
बस हरदम रोना आँसुओं का बहाना।
प्रिय! यह इस मेरे भाग्य के लेख में है ॥

(८३)

अब इस करुणा का अन्त हो नाथ! कैसे?
जब यह उपजी है लाल को मार मेरे ॥
बस उचित सदा को हाँ जिये और जागे।
यह मुझ दुखिया की जन्म की सङ्गिनी हो ॥

(८४)

पर कुछ मुझको हे प्राण ! सन्तोष होता।
इस विपुल व्यथा के दुःख को पूजती मैं॥
यदि क्षण भर को भी प्राप्त हो लाल मेरा।
कहकर मुझको माँ झूल जाता गले से॥

(८५)

इस तरह व्यथा की तोड़ती तिक्त सीमा।
निज करुण कथा से यामिनी को रुलाती॥
फफक फफक रोयी क्षुब्धिता पुत्रहीना।
प्रियतम पति को पा शोक सन्तप्त रवा॥

(८६)

जल जल करुणा से क्षुब्ध हो प्राण रोये।
तड़प तड़प रोयी काव्य की कान्त धारा॥
हृदय सदय रोया विश्व में पीड़ितों का।
उस दिन अपघाती दैव की वञ्चना से॥

(८७)

अब प्रियतम की वे शोक सन्तप्त आँखें।
उस विकल निशा की दुःख की सङ्गिनी थीं॥
जब विरह व्यथा से प्राण से छोड़ती थी।
वह अपयशशीला वेदनाभुक्त माता॥

(८८)

यह हृदय भले ही खण्ड के खण्ड होवे।
जल जल कर सारी देह हो नष्ट चाहे॥
गल गल कर सारा स्नेह सौन्दर्य छीजे।
पर मत जननी का खो गया सो गया ही !

(८९)

इस दुखद घड़ी में रात की कालिमा में।
निज परम प्रिया को बोध सन्तोष देते॥
कुछ विचलित होते चित्त की प्रेरणा से।
प्रियतम निज जी का मान सा छोड़ बोले॥

(९०)

प्रिये! सदा को यह वेदना मिली।
सदैव को है उतरी विडम्बना॥
हमें सदा को यह दी विरञ्चि ने।
वियोग की भार भरी विभावरी॥

(९१)

प्रचण्ड हो मृत्यु समस्त लोक में।
विराजती है प्रलयङ्करी महा॥
भरी हुयी है भव में विडम्बना।
इसीलिए नित्य अनादि काल से॥

(९२)

मनुष्य होता निरुपाय है यहीं।
यही कहाता विधि का विधान है॥
सदैव संसार समस्त हारता।
सुखापहारी विकराल काल से॥

(९३)

व्यथा रुलाती सबको भयावनी!
स्वपुत्र की मृत्यु किसे खली नहीं!
परन्तु देखो वह व्यक्ति है कहाँ!
न झेलता हो भव में विपत्ति जो!

(९४)

प्रिये ! सदा दो परितोष चित्त को।
प्रवृत्ति भारी भव की व्यथा भरी॥
मनुष्य के भाग्य विभोर भोग में।
विपत्ति का अन्य विकल्प है नहीं॥

(९५)

यहाँ दृगों से तुम देखती रहीं।
भयङ्करी जीवन हानि पुत्र की॥
वहाँ बना मैं बहु भाँति व्यस्त था॥
लिये व्यथा शोकमयी अकल्पिता॥

(९६)

सदा कहाती जननी महोत्तमा।
सदैव होता असमर्थ सा पिता॥
परन्तु मेरी असमर्थता निरी।
बना रही है बस पङ्गु सा मुझे॥

(९७)

प्रिये ! बडी थीं तुम भाग्यशालिनी।
मिला तुम्हें जो अधिकार प्यार का॥
लगा गले से अपने सुपुत्र को।
सदुःख रो तो तुमने लिया यहाँ॥

(९८)

परन्तु मैं था किस भाँति का पिता !
कठोरकर्मा अयशी महादुखी !
अनन्त प्राणाधिक पुत्र के लिये !
न दे सका स्नेह न प्यार ले सका !

(९९)

विलोचनों के इस अश्रपात में।
प्रिये ! तुम्हारे मन की व्यथा भरी॥
परन्तु मेरी यह स्नेह भावना !
अकिञ्चना लुब्धमना पराजिता॥

(१००)

न तो समाती उर में दया मया।
न आँसुओं की यह धार सूखती॥
प्रिये ! तुम्हारी मन की भरी व्यथा।
हरी सदा को परितापदायिनी॥

(१०१)

दुरन्त हो दारुण मृत्यु लोक में।
प्रसिद्ध है घोर कथा विपत्ति की॥
अरे ! हमारा प्रिय पुत्र छीनने।
सदर्प आयी यम की करालता॥

(१०२)

मनुष्य का बन्धन विश्व है नहीं।
युगोपकारी उसका स्वभाव है॥
ममत्व सारा उसमें इसीलिये।
स्वदेश का जाति कुटुम्ब का भरा॥

(१०३)

कुटुम्ब होता जिससे प्रदीप्त है।
स्वजाति का जो धन है स्वदेश का॥
वही हमारा धन खोगया यहाँ।
सुपुत्र प्यारा हमसे सदैव को॥

(१०४)

परन्तु रोना फिर दुःख भोगना।
गिना गया निन्दित लोक में सदा॥
सदा व्यथा सिञ्चित विश्व में प्रिये!
अचिन्त्य है कर्म विपाक सर्वथा॥

(१०५)

विनाश की अग्नि महा भयावनी।
हमें जलाने उतरी प्रचण्ड हो॥
नहीं दिखानी अब पीठ चाहिये।
चलो चलें कूद पड़ें जलें मरें॥

(१०६)

मेरे बेटे पर मुझको ही खप जाने दो मर जाने दो।
प्रियतम! अपने इस जीवन की मुझको यह भेंट चढ़ाने दो॥
यह कह सहसा उठ खड़ी हुयी फिर गिरी विकल होकर माता।
उसके उन विह्वल प्राणों पर भव था आँसू ये बरसाता॥

(१०७)

धरती पर की वह सुन्दरता मूर्छित सी होकर मुरझायी।
ममता की नीरव भाषा थी माता के प्राणों पर छायी॥
उसके उस फटते अन्तर से वह प्यार उबलता जाता था।
यौवन की दारुण विपदा का जिससे हरदम का नाता था॥

(१०८)

वह शैब्या सी पाञ्चाली सी दुख से व्याकुल व्यथिता दीना।
जर्जर होकर थी पड़ी हुयी जीवन की छवि दैवाधीना॥
वह अचैतन्य सी—सोती सी पति की बलवती भुजाओं में।
कविता की करुणा बन फैली वह पावन पुण्य कथाओं में॥

(१०९)

पति की शोकाकुल आँखों में वैषम्य विषय सम्भव जागा !
दुख सुख में घर करने वाली जड़ता से कामद्रव जागा !
पीड़ा की व्याकुल घड़ियों में लघुता लेकर यह भव जागा !
जागा ! मानव के अन्तर का दुर्दम बनकर दानव जागा !

(११०)

विह्वल अधरों से अधर मिले पलकों पर आँखें झूम पड़ीं।
रता की इस करुणा में भी दुख की घड़ियाँ ये घूम पड़ीं॥
दुखिया आँखें उसने खोलीं अपने प्रिय के नहलाने को॥
पर आयी थी सन्तप्त निशा उसको अविराम सताने को॥

(१११)

उसने देखी अपने प्रिय में जलती कामुकता की ज्वाला।
बरसी यौवन के पापों से जिसमें भीषणता विकराला॥
उसने देखी अपने पन में भव की निर्बल दुर्बल नारी।
जिसको हरदम ठुकराती है धरती पर मानवता सारी॥

(११२)

अचरज से भर करके उसने पौरुष की कायरता देखी !
जीते जी मानव जीवन की उसने निर्मम जड़ता देखी !
उसने आँखों के खुलते ही नारी की परवशता देखी !
देखी ! उसने इस यौवन की निर्दयता कर्कशता देखी !

(११३)

वह बोली हे मेरे बेटे ! तू आ जा मुख दिखलाने को !
मैं तो बिलकुल तैयार खड़ी मर जाने को खप जाने को !
पर तुम इस भव के उद्धारक ! तुम देश जाति के कर्णधार !
तुम मानव की मर्य्यादा के बलवान परम रक्षक उदार.

(११४)

मेरा तुम सारा दुख भूले भूले मेरी ममता माया!
तुमको केवल प्यारी लगती मेरी जर्जर निर्बल काया!
लो! इसका सत्यानाश करो जी भर इससे खेलो खालो!
अपने इस निष्ठुर पौरुष को जितना चाहो तुम उकसा लो!

(११५)

यह कह उसने निज लज्जा के चट चट चट चट बन्धन तोड़े!
पति के अधरों पर उद्धत हो उसने निज शुष्काधर जोड़े!
साड़ी उसने अपनी फाड़ी नोचे अपने निज़ग्राण केश!
जागा नारी के जीवन का आवेश भरा दुर्द्धर्ष देश!

(११६)

लज्जा से सिर नीचा करके पति ने ली लम्बी एक साँस।
गूँजा उस नीरव रजनी में वह सर्वनाश का अट्टहास॥
गौरव की गुरु मर्यादा पर कवि की वीणा वह जाग उठी।
उसके जीवन ने आज यहाँ करवट बदली यह आग उठी॥

(११७)

चुपचाप उठा कवि अनुभव कर अपने को पत्नी के अयोग्य!
मन में बोला वह नारी को नर ने समझा क्यों महाभाग्य!
वह उठ झटपट बाहर आया उसने क्या खोया क्या पाया!
उसकी गूँगी जिज्ञासा का अब तक न यहाँ उत्तर पाया!

(११८)

यह महात्याग! वह महालाभ! संसार सदा इसको गाता।
इसकी महिमा से जीवन का इस कविता से जुड़ता नाता॥
रूठा तारक जैसा बेटा छूटी रत्ना जैसी जाया।
सब छोड़ आज इस गृहपति ने जनता के कवि का पद पाया॥

(११६)

यह वह पद जिसके प्राणों में माता की ममता लहराती !
यह वह पद जिसकी मर्य्यादा विह्वल बन बन दुनियाँ गाती !
यह वह पद जिसकी माया से निर्बल मानवता बल पाती !
रत्ना के जीवन की करुणा जिसका हरदम मङ्गल गाती !

द्वादश सर्ग

(१)

जगीं मनुष्य की प्रसिद्ध ऋद्धि सिद्धियाँ !
समस्त काव्य की अलौकिका समृद्धियाँ !
जगी व्यथा विभोर विश्व की व्यथा नयी !
चली कथा यहाँ नवीन कल्पनामयी !

(२)

सदैव दुःख से प्रमत्त लेखनी न रो !
महा विपन्न विश्व का मुखारविन्द धो !
जगे विशुद्ध अर्चना ! विशुद्ध वन्दना !
विशुद्ध सर्वथा तथा नवीन कल्पना !

(३)

अरक्षिता जहाँ सुयोग की परम्परा।
जहाँ समाज दीनता अधीनता भरा ॥
जहाँ बड़ी बढ़ी हुयी विरोध भावना।
बने उसी स्वदेश की प्रगल्भ कल्पना ॥

(४)

अचिन्त्य की जहाँ हुयी सदैव चिन्तना।
अभाव की बनी जहाँ प्रशस्त अर्चना॥
ढले वहीं विमुक्त भाव बन्दना ढले!
चले वहीं समृद्ध काव्य-कल्पना चले!

(५)

सदैव शेष है जहाँ स्वमर्म जानना।
सदैव शेष है जहाँ स्वकर्म जानना॥
सदैव शेष है जहाँ स्ववर्ग जानना।
सदैव शेष है जहाँ स्वधर्म जानना॥

(६)

वहीं कठोर लेखनी व्यथा सम्हाल ले!
वहीं स्वचिन्तना सुधा समुद्र ढाल दे!
वहीं जगा अरी! विशुभ्र भाव बन्दना!
अखण्ड विश्व की महान पुण्य कल्पना!

(७)

यही सदैव की अखण्डिता परम्परा।
बुरा भला सभी सम्हालती वसुन्धरा॥
स्वधर्म में स्वकर्म हो रहे बुरे भले।
विरक्त हो न लेखनी रुके चली चले॥

(८)

जहाँ ममत्व की प्रतीक माँ सदा जले।
जहाँ पिता समस्त स्नेह तोड़ता चले॥
वहीं बढ़ी अनन्त भार वाहिनी कथा।
लिये वियोग व्यग्रता भरी हुयी व्यथा॥

(९)

उठी स्वधर्म सङ्गिनी विहाल हो उठी !
उठी विपन्न वेदना विशाल हो उठी !
कठोर क्रूरता महा कराल हो उठी !
उठी विपत्ति आज तो निहाल हो उठी !

(१०)

प्रचण्ड अग्नि और भी सशक्त हो उठी !
समस्त विश्व की विपत्ति व्यक्त हो उठी !
अनन्त आत्मचिन्तना अशक्त हो उठी।
मनुष्य की स्वभक्ति थी विरक्त हो उठी !

(११)

मिटी उदारता तथा बढ़ी विपन्नता !
महानता घटी बढ़ी मलीन खिन्नता !
विपत्ति से विपन्न और हाँफता हुआ !
हिला समस्त काव्य आज काँपता हुआ !

(१२)

समीर काँपता नवीन देख आपदा।
सभीत काल देखता स्वभाग्य का बदा॥
बढ़ी विपत्ति में विपत्ति और वञ्चना।
स्वगेह देह से विरक्त था पिता बना॥

(१३)

विरक्ति आज की बने स्वभक्ति प्रारानुग।
प्रणम्य शब्द की यथा विभक्ति सर्वदा।
सदैव जो नवीन विश्व में प्रभा भरे।
उसे प्रणाम लौह लेखनी सदा करे॥

(१४)

स्वपुत्र की व्यथा भरी विपन्न योगिनी।
बनी सदैव के बियोग से वियोगिनी ॥
उसे सदैव के निमित्त वेदना मिली।
प्रचण्ड आत्मदाह युक्त चेतना मिली ॥

(१५)

उसे सदैव के निमित्त छोड़ता हुआ।
सदैव के निमित्त प्यार तोड़ता हुआ॥
चला गया विरक्त लोक पूज्य देवता।
अतृप्त विश्व के महान काव्य का पिता ॥

(१६)

अरे! वियोग की व्यथा अभी चुकी नहीं!
बनी समस्त सृष्टि नम्र वस्तु की नहीं!
कठोर सर्वनाश की कथा रुकी नहीं!
कराल काल की कठोरता झुकी नहीं!

(१७)

प्रचण्ड शक्ति की महा बलिष्ठता जगी।
अतीव दीन विश्व की कनिष्ठता जगी॥
उगी उषा विपन्न लोक रक्त रञ्जिता।
दिखी धरा समस्त स्नेह से अनावृता॥

(१८)

दिखी दुखी कलिन्द नन्दिनी पड़ी हुयी।
दुरन्त दुःख और धूम्र में गड़ी हुयी॥
प्रशस्त दक्षिणाग्र भाग में प्रयाग था।
महान धर्म भूमि का दुखी विभाग सा॥

(१६)

जिसे सशोक गोद में लिये हुये दिखी।
बड़ी दुखी सुरापगा स्वदेश की लिखी॥
अशक्त प्राण थे अशक्त रक्त होरहा।
अशक्त चित्त भी निरा विरक्त हो रहा॥

(२०)

ज्वलन्त दुःखपूर्ण आह छोड़ती हुयी।
स्वसार अङ्ग-अङ्ग का निचोड़ती हुयी॥
सखेद देह तोड़ती मरोड़ती हुयी।
स्वभावसिद्ध वेग नेग छोड़ती हुयी॥

(२१)

मिलीं सशोक जन्हुजा तथा कलिन्दजा।
यहाँ मिलाप था न पूर्व सा रजा पुजा॥
किसे न दुःख विश्व में कहो जला सका?
किसे न काल का प्रताप है गला सका?

(२२)

प्रभात की उपासना समाप्त थी हुयी।
सुषुप्त प्राणशक्ति स्वल्प प्राप्त थी हुयी॥
प्रबुद्ध बुद्धि थी नया प्रयत्न खोजती।
मनुष्य को मनुष्यता सयत्न खोजती॥

(२३)

खड़ा विरक्त साधु एक था निहारता।
समग्र लोकधर्म था उसे पुकारता॥
अशक्त चित्त लोक में सदैव हारता।
विरक्ति क्या कभी कहा सकी उदारता?

(३४)

अरे ! समस्त योग्यता अयोग्यता हुयी ।
समस्त व्यर्थ व्यस्त भाव भव्यता हुयी ॥
वृथा हुयी समस्त ज्ञान की उपासना ।
मिटी न काम की जहाँ बलिष्ठ वासना ॥

(३५)

स्वपुत्र की कठोर मृत्यु की कथा लिये ।
अनन्त कष्टदायिनी बड़ी व्यथा लिये ॥
विदग्ध माँ बनी जहाँ विरक्त हो रही ।
जहाँ समस्त सृष्टि प्राण शक्ति खो रही ॥

(३६)

वहीं जगी पशुत्व की अकाम्य कामना ।
वहीं जगी अक्षम्य पाप पूर्ण भावना ॥
अरे ! शरीर क्या इसी निमित्त है बना ?
कभी मिटे न काम की बलिष्ठ वासना !

(३७)

मुझे मिले भले सदैव को अयोग्यता ।
बने प्रिया सदैव के लिये महाव्रता ॥
परन्तु चित्त में यही विकार है बना ।
अजेय सिद्ध क्यों हुयी बलिष्ठ वासना !

(३८)

उसी अशिष्ट काम को पछाड़ता हुआ ।
अधर्म का पड़ा प्रभाव झाड़ता हुआ ॥
समस्त पाप और ताप फाड़ता हुआ ।
बढ़े मनुष्य क्यों न तू दहाड़ता हुआ ?

(३६)

स्वगेह देह की विसार आज चिन्तना।
समस्त विश्व की लिये यथार्थ अर्जना॥
लिये हुये विशुभ्र शुद्ध भाव वन्दना।
लिये उदारता प्रसूत पुण्य कल्पना॥

(४०)

चला विरक्त साधु पुण्य कल्पना लिये।
जिये! स्वशक्ति की समृद्ध रञ्जना जिये!
उसे धरा प्रसन्न हो निहारने लगी।
स्वभक्ति दे समान शक्ति वारने लगी॥

(४१)

प्रसन्न जाह्नवी मरीचि माल शोभिता।
हुयी विचित्रता लिये हुये तरङ्गिता॥
सुगन्ध दे समीर नीर था उछालता।
दिनेन्द्र रूप राशि से उसे सम्हालता॥

(४२)

मुखारविन्द में भरे अनन्य चिन्तना।
भरे दृगारविन्द में विराग वेदना॥
प्रशस्त वक्ष में भरे सस्नेह साधना।
चला वयस्क साधु धन्य भाव वन्दना॥

(४३)

प्रलम्ब बाहुदण्ड शक्तिधाम हो हिले।
सशक्त पाद पद्म पुण्यकाम हो खिले॥
युवा शरीर आज और गौर हो उठा।
मनुष्य आज तो सदर्प और हो उठा॥

(४४)

उसे यहाँ वसुन्धरा निहारने लगी।
समस्त सृष्टि आज पुण्य वारने लगी॥
दया तथा मया कृपा पसारने लगी।
विमुग्ध रूपराशि देख हारने लगीं॥

(४५)

स्वदेश का कटा फटा स्वरूप देखता!
मनुष्य को जहान में विरूप देखता!
चला विरक्त साधु श्रेष्ठ आज तो चला!
समस्त विश्व का इसी निमित्त हो भला!

(४६)

दिखी उसे उदारता गड़ी पड़ी हुयी।
तथा घरों घरों कृतघ्नता भरी हुयी॥
उसे दिखी समस्त विश्व में व्यथा जगी।
दिखी मनुष्य के स्वरूप की चिता लगी॥

(४७)

दिखी समस्त लोक में महान दीनता।
विभक्त विश्व में भरी हुयी अधीनता॥
भरी दिखी मनुष्य में अनन्त हीनता।
दिखी उसे सभी कहीं महा मलीनता॥

(४८)

समस्त सृष्टि का यथार्थ रूप था खुला।
मनुष्य को कराल स्वार्थ था रहा भुला॥
परार्थ स्वप्न था हुआ बढ़ी प्रवञ्चना।
अनीति भीति का प्रतीक विश्व था बना॥

(४९)

गिरा हुआ चरित्र पाप और धृष्टता।
दिखी समस्त देश जाति की निकृष्टता॥
मनुष्य के लिये मनुष्य की कुभावना।
समूह लोभ और लाभ का लुभावना॥

(५०)

विचार भेद जन्य आधि व्याधियाँ दिखीं।
अनन्त देश जाति की उपाधियाँ दिखीं॥
दिखी महान मातृभूमि आज जर्जरा।
विभक्त शक्ति हीन पुण्यदा वसुन्धरा॥

(५१)

थका नहीं शरीर किन्तु धारणा थकी।
न बुद्धि देख लोक की प्रताड़ना सकी।
मिटी विरक्ति और भक्ति वासना जगी।
भली महान राम की उपासना लगी॥

(५२)

यही उपासना अनन्त शक्ति दायिनी।
यथार्थ की विरक्ति और भक्तिदायिनी॥
प्रशस्त लोक की यही विमुक्ति वासना।
यही स्वदेश जाति की भली उपासना॥

(५३)

अलभ्य लाभ सा प्रकाश प्राप्त होगया।
समस्त क्षोभ साधु का समाप्त होगया॥
जगी सुबन्धु भाव भूमि लोकमङ्गला।
करें महान राम प्राणिमात्र का भला॥

(५४)

घरों घरों प्रबुद्ध राम का विकास हो।
सभी कहीं विशुद्ध स्नेह का निवास हो॥
विलीन त्रास हो तथा विलीन ह्रास हो।
समस्त पुण्यभूमि में भरा विकास हो॥

(५५)

परन्तु राम की यथोचिता उपासना।
स्वदेश की स्वजाति की समृद्धि साधना॥
सदैव लोक लाभ की पुनीत वासना।
तथा अनन्त स्नेह की सभक्ति वन्दना॥

(५६)

उसी पवित्र भूमि में सदैव सम्भवा।
बहे जहाँ यथार्थ भक्ति से भरी हवा॥
भरी हुयी जहाँ मनुष्य में मनुष्यता।
जहाँ विवेक से समन्विता स्वतन्त्रता॥

(५७)

इसीलिये सदा विशुद्ध शक्ति वन्दिता।
इसी निमित्त लोक पूजिता स्वतन्त्रता॥
इसी निमित्त धर्म धारिणी धरा बनी।
नृलोक की यशस्विनी परम्परा बनी॥

(५८)

यती महान यों विचारता हुआ चला।
करे विशुद्ध बोध सर्व लोक का भला॥
अजेय राम का स्वरूप आज था खुला।
चरित्र का पवित्र पुण्य रूप था धुला॥

(५९)

सदा समर्थ राम की चरित्र शुद्धता।
समस्त विश्व को मिले मिटे अशुद्धता॥
उपाय एक मात्र विश्व शान्ति का यही।
उपाय एक मात्र पूर्ण क्रान्ति का यही॥

(६०)

परन्तु राम के सदा समर्थ बोध में।
अतीव उग्र वर्तमान के विरोध में॥
समत्व सिद्धि का प्रयास ही न व्यर्थ हो।
अरे! कहीं यहाँ न अर्थ का अनर्थ हो॥

(६१)

विशुद्ध बोध की प्रतीक राम की कला।
परन्तु लौह लेखनी नितान्त निर्बला॥
कवित्व के विकास का उपाय खोजती।
अप्राप्य विश्व में परन्तु काव्य का व्रती॥

(६२)

इसीलिये समस्त लोक काव्य की कथा।
अपूर्ण ही कही गयी सदैव सर्वथा॥
परन्तु मैं बढ़ूँ सदा अपूर्णता लिये।
सदैव राम की महान पूर्णता जिये॥

(६३)

कला कवित्व की तुरन्त जाग सी उठी।
सरोजिनी सुहाग का पराग पी उठी॥
सुना प्रशस्त गीत पुण्यभूमि ने सुना।
जिसे लिये खिली विशिष्ट भाव व्यञ्जना॥

(६४)

अपूर्व स्नेह से प्रसन्न थी प्रसन्नता।
समस्त व्यस्त लोक की मिटी विपन्नता॥
विरक्ति थी यथार्थ भक्ति में प्रवर्तिता।
सहर्ष गा उठा प्रसिद्ध काव्य का पिता॥

(६५)

वर्णानामर्थसङ्घानां
रसानां छन्दसामपि
मङ्गलानांच कर्त्तारौ
वन्दे वाणी विनायकौ

(६६)

उदात्त लोक प्रेम को प्रधानता मिली।
अनन्त दिव्य ज्ञान को महानता मिली॥
समस्त विश्व को मिली उदात्त कल्पना।
उदात्त साधना उदात्त भाव व्यञ्जना॥

(६७)

चला यती स्वकाव्य की कथा विचारता॥
जहान की महान योजना सवाँरता॥
प्रसिद्ध काव्यतीर्थ साधु आज यों चला।
करें महान राम प्राणिमात्र का भला॥

(६८)

विभक्त भारतीयता अनन्य हो उठी।
विरक्त लोक शक्ति आज धन्य हो उठी॥
मनुष्यता सशक्त अग्रगण्य हो उठी।
विपन्नता समस्त थी नगण्य हो उठी॥

(६९)

स्वदेश के असाध्य रोग देखता हुआ।
विदेश के अबाध्य भोग देखता हुआ॥
चला यती नवीन पुण्य प्रेरणा लिये।
जिये प्रगल्भ ज्ञान की गवेषणा जिये॥

(७०)

जहाँ गया वहीं उसे अभिन्नता मिली।
घरों घरों भरी परन्तु खिन्नता मिली॥
स्वदेश में स्वजाति में विभिन्नता मिली।
विचार बोध हीन छिन्न भिन्नता मिली॥

(७१)

समग्र ग्राम था उसे निहार दौड़ता।
प्रसिद्ध शुद्ध भावना प्रधान प्रौढ़ता॥
सहर्ष स्वागतार्थ लोग एक हो चले।
विशुद्ध बोध की प्रगल्भ कल्पना ढले॥

(७२)

महान साधु की प्रसाद पूर्ण वक्तृता।
सशीघ्र गाँव गाँव में हुयी समादृता॥
नये विचार थे तथा नवीन बोध था।
प्रशोध सत्य का असत्य का विरोध था॥

(७३)

दया मया विभोर लोकमान्य भारती।
समग्र देश में समुच्चता पसारती॥
महान मुक्तिबोध की लिये उपासना।
उपस्थिता समस्त जाति की सुवासना॥

(७४)

उषा उसे निहार सम्पदा पसारती।
सुधा उसे अनन्त स्नेह दे सवाँरती॥
उसे अनन्त शक्ति भक्ति दे सुधारती।
उसे विलोक सृष्टि थी व्यथा बिसारती॥

(७५)

स्वदेश और जाति की लिये समर्चना।
विशुद्ध दिव्य ज्ञान की लिये समर्जना॥
यथार्थ भक्ति पुण्यकाम राम की लिये।
उपासना अनन्त शक्तिधाम की लिये॥

(७६)

चला विरक्त साधु गाँव गाँव घूमता।
समस्त लोक स्नेह से समीप भूमता॥
घरों घरों घुसा लिये स्वदेश की कथा।
गया सभी कहीं लिये स्वदेश की व्यथा॥

(७७)

अशक्त वृद्ध रोपड़े अचेत हो गये।
युवा सशक्त हो पड़े सचेत हो गये॥
किशोर स्नेह भक्ति से विभोर हो गये।
समस्त क्लेश और दुःख घोर खोगये॥

(७८)

जगी सस्नेह मातृ पितृ भावना जगी।
निगूढ़ प्रेमयुक्त भ्रातृभावना जगी॥
सप्रेम माँ उठी सभक्ति बेटियाँ उठीं।
स्वदेश की समृद्धि सी बधूटियाँ उठीं॥

(७९)

खुली हुयी उसे मिली किसान की कुटी।
कुबेर की समस्त सम्पदा मिली जुटी॥
उसे परन्तु सर्व श्रेष्ठ दीनता दिखी।
तदर्थ दीनबन्धु की गयी कथा लिखी॥

(८०)

विरक्त साधु देश को खड़ा बता रहा।
नवीन राग भाग्य का सदर्प गारहा॥
इसे सुनो स्वकर्म क्षेत्र में बढ़े चलो!
चलो! सदा स्वधर्म क्षेत्र में बढ़े चलो!

(८१)

घरों घरों प्रविष्ठ राम और जानकी।
भरी सभी कहीं दया दयानिधान की॥
स्वदेश का ममत्व और तत्व जान लो।
स्वजाति का प्रभुत्व और सत्व जान लो॥

(८२)

महान ब्राह्मणत्व देख लो मलीन है।
प्रसिद्ध क्षात्रधर्म क्षीण और हीन है॥
कुबेर का प्रसिद्ध कोश आज दीन है।
समस्त कार्यशक्ति देश की विलीन है॥

(८३)

यथार्थ ब्रह्मज्ञान की समर्चना करो!
बलिष्ठ क्षात्रधर्म की समर्जना करो!
यथार्थ लाभ की प्रभूत साधना भरो!
उठो स्वकृत्ति की सभक्ति वन्दना करो!

(८४)

सदैव स्वार्थ की समर्थ शक्ति से लड़ो!
स्वदेश में भरी हुयी विरक्ति से लड़ो!
लड़ो न पुण्य से न धर्म कर्म से लड़ो।
उठो! सदा अकर्म से अधर्म से लड़ो!

(८५)

यही यथार्थ ब्रह्मज्ञान की समर्चना।
यही समर्थ क्षात्रधर्म की समर्जना॥
यही अलभ्य लाभ की प्रशस्त साधना।
यही स्वकार्यशक्ति की सभक्ति बन्दना॥

(८६)

यही स्वशक्ति राम की महान भक्ति है।
यथार्थ में यही विवेक है विरक्ति है॥
यही परार्थ और स्वार्थ की विभक्ति है।
यही मनुष्य की सदा समर्थ शक्ति है॥

(८७)

इसीलिये विशुद्ध ब्राह्मणत्व मान्य है।
इसी निमित्त क्षात्रधर्म भी वदान्य है॥
इसीलिये धरा स्वभारवाहिनी बनी।
समस्त सृष्टि लोकशक्तिदायिनी बनी॥

(८८)

समस्त लोकशक्ति शूद्रता समन्विता।
समस्त वैश्य धर्म धारिणी धरा धृता॥
सशक्त क्षात्रधर्म में स्वशक्ति से उठो!
उठो! विशुद्ध ज्ञान और भक्ति से उठो!

(८९)

असत्य से बड़ा नहीं अधर्म है कहीं।
प्रशस्त सत्य से न धर्म कर्म है कहीं॥
परन्तु शक्ति का महा निरोध देखना।
खड़े-खड़े स्वदेश का विरोध देखना॥

(९०)

महान पाप है तथा महा अधर्म है।
नहीं निकृष्ट और निन्द्य अन्य कर्म है॥
महानता प्रधान दिव्य भावना भरो।
स्वधर्म की समर्थ शक्ति साधना करो॥

(९१)

जहाँ न धर्म-कर्म की क्रिया वदान्य है।
मनुष्य रूप देवता जहाँ न मान्य है॥
जहाँ अनन्त कष्ट भोगतीं महा सती।
जहाँ विहार भोग में सने व्रती यती॥

(९२)

जहाँ तिरस्कृता स्वदेश की परम्परा।
जहाँ मनुष्य रक्त से रँगी हुयी धरा॥
विरोध देश का जहाँ बली विचारते।
अवध्य धेनु भोजनार्थ लोग मारते॥

(९३)

वहाँ विरक्ति की उपासना अधर्म है।
प्रशस्त राम का वहाँ महान धर्म है॥
इसी महान धर्म की समर्चना करो।
जियो स्वधर्म में स्वधर्म के लिये मरो॥

(६४)

पड़े पड़े कभी न भक्ति सम्भवा हुयी।
खड़े खड़े नहीं अशक्ति की दवा हुयी॥
सभी सलक्ष्य धैर्य से स्वकर्म में जुटो।
समस्त लोक के लिये स्वधर्म में जुटो॥

(६५)

विशुद्ध स्नेह भक्ति ग्राम ग्राम में जगे।
प्रशस्त लोक-शक्ति धाम धाम में जगे॥
करो उपाय दिव्य पुण्य साधना चले।
स्वदेश का यथार्थ रूप लोक में ढले॥

(६६)

विशुद्ध स्नेह भक्ति व्यक्ति की न सम्पदा।
इसे मिली महान लोक मान्यता सदा॥
इसी निमित्त स्नेह भक्ति की समर्चना।
बनी समस्त लोक की यथार्थ अर्जना॥

(६७)

उठो! स्वकर्म धर्म को हरा भरा करो!
स्वदेश की अलंकृता परम्परा करो!
सशक्त लोकशक्ति हो विभिन्नता हटे।
समस्त पाप आपके प्रताप से कटे॥

(६८)

न भेद शक्ति में तथा विशुद्ध भक्ति में।
भरा समस्त खेद व्यर्थ की विरक्ति में॥
करो कृपा विचार जन्य भिन्नता तजो।
स्वशक्ति से सभक्ति राम को सदा भजो॥

(९९)

अभूतपूर्व वक्तृता विमुक्ति दायिनी।
महान राम की अनन्य भक्तिदायिनी॥
समस्त लोक की सही विरक्ति दायिनी।
वही समाज के निमित्त शक्तिदायिनी॥

(१००)

अनन्त सन्त की लिए हुये प्रसिद्धता।
हुयी समीर योग क्षेम की प्रवाहिता॥
चला इसी प्रकार घूमता हुआ यती।
विचार बोध व्यस्त झूमता हुआ व्रती॥

(१०१)

अनेक वर्ष बाद काशिकापुरी मिली।
जहाँ सदैव धर्म युक्त भावना खिली॥
जहाँ सभा विचारती समेत व्यस्तता।
महान लोक धर्म की पुनः प्रशस्तता॥

(१०२)

सबने देखा श्रीपण्डित में सन्यास अलौकिक था जागा।
भारत की वसुधा से उस दिन सबने देखा दुर्दिन भागा॥
परिषद् में हलचल डोल उठी जन-जन में था, विस्मय छाया।
कवि की भावुकता से छूटी जीवन की यह ममता माया॥

(१०३)

उससे उठकर गुरुदेव मिले आया था अद्भुत सन्यासी।
चिन्तामणि व्याकुल हो बोले ईश्वर घट घट का अधिवासी॥
परिषद् फिर से गम्भीर हुयी बढ़ चली विचारों की धारा।
जीवन की अनुपम गति विधि में बीता वह दिन का दिन सारा॥

(१०४)

सूरज की गिरती किरणों से मतवाली सन्ध्या मुसकायी।
मानव की इस अनुपमता में उत्फुल्ल पवन भी लहरायी॥
नीले नभ में चन्द्रोदय से धरती की मञ्जुलता जागी।
रजनी के पावन अञ्चल में अलबेली नीरवता जागी॥

(१०५)

पर्णकुटी में शेष सनातन वृद्ध बृहस्पति से आसीन।
निकट महापण्डित चिन्तामणि बैठे थे चिन्ता में लीन॥
श्रीपण्डित नय विनय विभूषित आये सुन गुरु का आदेश।
धन्य हुयी जिनसे यह धरती धन्य हुआ यह भारत देश॥

(१०६)

आदर देकर उनको गुरु ने स्नेहातुर होकर समझाया।
चिन्तामणि केवल मौन रहे उनका इतना जी भर आया॥
पर जिसका अन्तस्तल जागा जागा जिसका जीवन यौवन।
वह डिगता कब अपने पथ से जिसमें जागी क्षमता पावन॥

(१०७)

गौरवमय अचल हिमाचल सा गम्भीर सुधा सागर समान।
वह इस वसुधा का तपस्तेज वह वाणी का वैभव महान॥
वह दया मया का दिव्य रूप वह परम सत्य का नव प्रमाण।
वह नवजीवन का तन मन धन वह यौवन का कवि महाप्राण॥

(१०८)

बस अचल रहा, बस अटल रहा, बीता यों ही बस एक वर्ष।
वर्षोपरान्त परिषद बैठी तब उसने दीक्षा ली सहर्ष॥
बोले गुरु तुम सन्यासी हो साक्षी यह परिषद सर्व आज।
तुम पर आश्रित है धर्म कर्म तुम पर आश्रित मानव समाज॥

(१०९)

तुम देश जाति में जीवनमय साहित्य सृजन के हेतु जियो !
भारत माता के गौरव के तुम बनो विजय के केतु; जियो !
तुम युग स्रष्टा जीवन द्रष्टा तुम में विकसे भव की वाणी।
तुम पर हरदम रस बरसावे मङ्गलमय कविता कल्याणी॥

(११०)

इस परिषद् का आदेश तुम्हें मेरा बस यह उपदेश तुम्हें।
तुम अपने युग के कर्णधार ! भूले न कभी यह देश तुम्हें॥
तुम अजर अमर हो पुण्यमूर्ति ! तुमसे धरनी का सकल प्यार।
वाणी के मधुरामृत से तुम बन जाओ भव भर के विहार॥

(१११)

हे रामवचन ! हे श्रीपण्डित ! हों राम तुम्हारे उद्धारक !
तुम उनके मङ्गलमय यश के बिचरो बन करके विस्तारक !
तुम ऋषि मुनियों के जीवन के जीवित जाग्रत इतिहास बनो !
तुलसी सा आदर पाकर तुम भारत के तुलसीदास बनो !

(११२)

उगते रवि की हुयी घोषणा जय वाणी के पुण्य विलास !
विहगों ने मृदु स्वर से गाया जय जय जीवन के इतिहास !
उस परिषद् ने उस दिन देखा मानवता का दिव्य विकास !
भव की कविता मङ्गल गाती जीवें ! जागें ! तुलसीदास !

(११३)

जीवन जागा !
यौवन जागा !
भव में छायी !
सुकृति सुहायी !

(११४)

दीक्षा पाकर !
शीश झुकाकर !
कवि ने गाया !
सबने पाया !

(११५)

असतोमासद्गमय !
तमसोमाज्योतिर्गमय !
मृत्योर्माऽमृतंगमय !

त्रयोदश सर्ग

(१)

आज रोता दुःख के आवेग का विस्तार।
आज रोता सृष्टि के उद्वेग से भव भार॥
आज पागल प्राण रोते आज रोता प्यार।
आज माँ के लोचनों में आँसुओं की धार॥

(२)

आज भव का काव्य रोता व्यक्त बन्धन तोड़।
आज कवि के गीत रोते राग अपना छोड़॥
आज करुणा का व्यथा का विश्व पर है कोप।
धैर्य के धन का धरा से हो गया है लोप॥

(३)

बुद्ध की सहधर्मिणी रोती नहीं है आज।
उत्तरा को मारती है यह न दुख की गाज॥
आज रोती है न सीता ले हृदय का भार।
आज रत्ना रो रही है रो रहा संसार॥

(४)

रुग्ण सा तन क्षीण सा मन और जीवन दीन।
दुःखिनी यह वेदना में शोक में लवलीन॥
क्षीणपुण्या शर्वरी सी विश्व में निरुपाय।
शुष्क सरिता सी तिरस्कृत विह्वला असहाय॥

(५)

जीर्ण जर्जर और निर्बल विश्व का विद्रूप।
दैव द्वारा दण्डिता इस पण्डिता का रूप॥
था कभी आनन्द का—शृङ्गार का आधार।
किन्तु उसमें आज केवल वेदना का भार॥

(६)

विश्व ने है कब चुकाया आँसुओं का मोल?
दैव ने पीयूष में हरदम दिया विष घोल!
यों सदा रोता गया मिटता गया संसार।
किन्तु रोने का रुलाने का न वारापार॥

(७)

पर भरी इन लोचनों में वेदना कुछ और।
आज है संसार में माँ का न कोई ठौर॥
हाय! रमा सी जगत में दुःखदग्धा कौन?
अस्तु मेरी लेखनी तू रो न हो जा मौन॥

(८)

घायलों को छोड़कर इन घायलों का हाल।
और कोई जान करके क्यों बने बेहाल॥
इसलिये रो ले वही जिसके हृदय में घाव।
आज रोने का रुलाने का खुला प्रस्ताव॥

(९)

कह रही थी चन्द्रलेखा हाथ पर धर हाथ।
जन्म भर भाभी रहूँगी मैं तुम्हारे साथ॥
किन्तु रो रोकर व्यथा पीड़ित हृदय को तोड़।
और अपनी शोक से सन्तप्त आँखें फोड़॥

(१०)

तुम मुझे व्याकुल बनाती जारही हो हाय।
दुर्दिनों के साथ उतरा दुःख का समुदाय॥
किन्तु कुछ भी हो सम्हलना ही पड़ेगा आज।
आज अपने हाथ ही इन लोचनों की लाज॥

(११)

माँगती हूँ भीख इतनी हाथ तुमसे जोड़।
दुःख अपना मत बिसूरो तुम विकल जी तोड़।
फूल सी काया तुम्हारी और कोमल प्राण।
इस व्यथा में धैर्य ही से पा सकोगे त्राण।

(१२)

आज लो मुझको हृदय से तुम लगा जी खोल।
मैं तुम्हारी आपदा का स्नेह सिञ्चित मोल॥
गोद में ले लो मुझे बेटी बनाकर आज।
फैल जाने दो व्यथा का—वेदना का साज॥

(१३)

आज मुझको देखकर तुम मान लो सन्तोष।
मैं तुम्हारी वेदना में प्यार का परितोष॥
तुम मुझे भाभी! बनालो गोद का धन आज।
मैं तुम्हारे त्रस्त जीवन का पराजित साज॥

(१४)

तुम मुझे तारक समझ लो और मैं सविषाद।
स्वर्ग के उस दिव्य तारक की बनूँगी याद॥
और भइय्या वे न छोड़ेंगे हमारा मोह।
सर्वदा हम पर न होगा दुःख का आरोह॥

(१५)

रो उठी रत्ना विकल हो छोड़कर डिड़कार।
और बोली कब छिपाया हाय! मैंने प्यार॥
चाहती हूँ आज मैं इस ज़िन्दगी से त्राण।
आज मेरे प्राण निकलें बन तुम्हारे प्राण॥

(१६)

तुम सखी मेरी सहेली तुम हृदय का बोध।
आपदा में लोक में तुम स्नेह का अनुरोध॥
यह तुम्हारी मूर्ति आँखों का सहारा आज।
स्नेह की सद्भावना बनकर रही है राज॥

(१७)

प्यार मैंने है किया तुमको सदा जी खोल।
अब सखी दुर्भाव कैसा और कैसा मोल!
चाहती हूँ मैं तुम्हारी फूल सी यह देह।
सर्वदा सुख से रहे पाकर मधुरतम स्नेह॥

(१८)

पर न रोना छूटता है क्या करूँ मैं हाय!
जल रहा है चित्त होकर शोक में असहाय॥
चाहती हूँ बोध मैं मिलता नहीं पर बोध।
काल का मेरे लिए सम्पूर्ण उतरा क्रोध॥

(१९)

आज है यह शोक जीवन का भयङ्कर रोग।
व्यस्तता का—वेदनाओं का जुड़ा है योग॥
आज यह आपत्ति मुझ पर ढालता संसार।
आज रो रो कर तड़पता स्नेह का व्यापार॥

(२०)

फूटती आँखें नहीं हैं धैर्य मेरा फोड़।
टूटती आशा न जीवन और बन्धन तोड़॥
रूठते हैं; पर न मेरे छूटते हैं प्राण।
हाय! मैं तो माँगने पर भी न पाती त्राण॥

(२१)

चल दिया बेटा विकल मुझ विह्वला को छोड़।
काल के कौटिल्य ने मुझसे लगायी होड़॥
हाय! जीता काल पर मैं तो गयी सब हार।
हार के संसार पर धिक्कार सौ-सौ बार॥

(२२)

है भरी इस हार में माँ के हृदय की हार।
इस कुटिलतम हार से सन्तप्त है घरबार॥
यह कसकती हार प्राणों के उदय की हार।
हाय! मुझ से छिन गया मेरे हृदय का प्यार॥

(२३)

किन्तु मेरे दैव को अब भी नहीं सन्तोष।
वह दिखाता ही बराबर जा रहा है रोष॥
आज रोता देख कर दुर्भाग्य मेरी ओर।
आज मिलता है न मेरी वेदना का छोर॥

(२४)

मुक्त-जीवन की उषा पर काल का यह कोप।
स्नेह के सौन्दर्य में यह हानि का आरोप॥
पुण्य के आनन्द में यह पाप का परिताप।
विश्व के पीयूष में विष का भरा अभिशाप॥

(२५)

इस हृदय के देवता वे पुण्य पारावार।
स्नेह के सत्कार के आनन्द के आधार॥
छोड़कर मुझको यहाँ रोती कलपती हाय?
क्यों गये यों सोचती हूँ आज मैं असहाय?

(२६)

मैं मनाती आज उनके त्याग में आमोद।
दैव ने यदि लूट ली होती न मेरी गोद॥
किन्तु फटता है कलेजा फूटता है शोक।
आज आँखें हैं न पातीं आसुओं को रोक॥

(२७)

धैर्य मैं पाऊँ कहाँ मेरी बहन तू बोल?
दैव ने आपत्ति जब मेरे लिये दी खोल॥
इस व्यथा से मैं न पाऊँगी कभी निस्तार।
नित्य बढ़ता जायगा इसका महा विस्तार॥

(२८)

इस रुदन में इसलिये मेरा भरा कल्याण।
तू सखी मत रोक ये जल जायँ मेरे प्राण॥
हाय! मुझसी वज्रहृदया विश्व में है कौन?
लोक की करुणा कृपा मेरे लिये है मौन॥

(२६)

वेदना का भार जीवन के लिये है सार।
मैं सदा रोऊँ विकल हो देख ले संसार॥
आँसुओं की बाढ़ से बढ़ जाय मेरी आग।
सर्वदा गूँजे व्यथा सन्तप्त मेरा राग॥

(३०)

जानने के हेतु मेरी वेदना का भेद।
जानने को घोर मेरा ताप सञ्चित खेद॥
आज उतरा धूम से दुर्दैव का अभिशाप।
विश्व का आधार ही मेरा महा सन्ताप॥

(३१)

विश्व में सर्वस्व खोकर क्यों रहूँ मैं मौन?
मैं न रोऊँ तो सखी री! और रोवे कौन?
तू विकल मेरे लिये यों बन न आँखें फोड़।
मान ले बस बात मेरी चिन्तना दे छोड़॥

(३२)

रो पड़ी विधु, रो पड़े उसके नयन जलजात।
और बोली "कह रही हो इस तरह की बात"॥
भूल कर भी क्या तुम्हें जीती रहूँ मैं हाय!
स्नेह का संयोग जीवन में नरक बन जाय!

(३३)

यह तुम्हारी देखकर आपत्तिग्रस्ता देह।
देखकर इन नीरजों से लोचनों का मेह॥
मैं न मरती हूँ यही मेरा महा दुर्भाग्य।
आज है सङ्कीर्णता का सङ्कलन वैराग्य॥

(३४)

पर इस दुनियाँ में चिन्तना की चिता में।
जल जल मरने को मैं अकेली भली हूँ॥
असमय अपघाती काल की क्रूरता से।
बचकर विधु मेरी! तू मुझे सान्त्वना दे॥

(३५)

यह कह कर रोयी शोक सन्तप्त रत्ना।
गल गल नयनों से दुःख की धार फूटी॥
वह उर जननी का वेदना से व्यथा से।
फिर सदुख रुलाता विश्व को हाय रोया॥

(३६)

सहृदय विधु जैसी स्नेह की सङ्गिनी की।
अतिशय हितसिक्ता गोद में शीश डाले॥
निज प्रिय पति द्वारा विस्मृता पुत्रहीना।
विचलित यह माता रोदिता दृश्यमाना!

(३७)

यह विकल कला सी वेदना मूर्तिमाना।
सुरतरु लतिका सी सुन्दरी छिन्नमूला॥
विचलित बन रोयी और भी कूट छाती।
जब वह दिन डूबा रुग्ण सी साँझ आयी॥

(३८)

अतुलित बिपदा की दाबती क्लिष्ट पीड़ा।
वह रुक रुक ज्यों त्यों रोकती आँसुओं को॥
अतिशय मृदु जी की कोमला कान्त रत्ना।
निज सुहृद सखी से दुःख के साथ बोली॥

(३९)

अब बहिन यहाँ से पूर्व को देख तो ले।
वह निकल रहा है चन्द्र का बिम्ब पूरा॥
सब प्रकृति दिखेगी स्नेह का सार पीती।
पर सतत तुझे मैं दुःख देती रहूँगी॥

(४०)

इस गगन विहारी चन्द्रमा की कलायें।
प्रिय सुत तक जा जा नित्य ही लौटती हैं॥
पर निठुर बड़ी हैं रूप से गर्विता हैं।
कुछ कुशल न मेरे लाल की हैं बताती॥

(४१)

यह रजत प्रभा सी चन्द्रिका पूर्णिमा की।
यदि कुछ जननी की वेदना जानती है॥
सहृदय बन देती ला न क्यों लाल मेरा?
मुझ इस दुखिया की दुःख की सङ्गिनी हो॥

(४२)

छलकर जिसका हो दैव ने पुत्र छीना।
निज प्रियतम द्वारा लोक में वञ्चिता जो।
इस मुझ दुखिया से मित्रता क्यों निभावे!
विधु! यह मदमाती चन्द्रिका चन्द्रमा की॥

(४३)

यह जन मन हारी मञ्जुला चन्द्र ज्योत्स्ना।
उस दिन कितनी थी स्नेह शृङ्गार सिक्ता॥
जब प्रियतम मेरे लाल के साथ बैठे।
निज ललित कला की कौमुदी ढालते थे॥

(४४)

उस समय सखी री ! मुक्त थे भाग्य मेरे।
मुझ पर बलि जाती विश्व की माधुरी थी॥
पर उमड़ पड़े हैं आज तो दोष सारे।
सिर पर चढ़ बैठी यातना दुर्दिनों की॥

(४५)

जिस बिभव प्रदाता पुत्र की प्राप्ति द्वारा।
घर घर जननी है विश्व में वन्दनीया॥
उस हृदय दुलारे पुत्र को रो रही हूँ।
प्रियतम पति द्वारा त्यक्त मैं भाग्यहीना॥

(४६)

इस कुटिल सदा के दैव ने सर्वदा ही।
बनकर अपघाती नारियों को रुलाया॥
पर मुझ पर सारे रोष की तोड़ सीमा।
यह निठुर विधाता क्रूरता है दिखाता॥

(४७)

बन बन दमयन्ती शोक सन्तप्त रोयी।
निज दुखद कथा के कोप की क्रूरता से॥
पर पति सुत जैसी लोक की सम्पदा से।
वह कुछ दिन को ही विश्व में वञ्चिता थी॥

(४८)

पति पद परिणीता मङ्गलाधार सीता।
निज करुण कथा से आज हैं विश्ववन्द्या॥
पर वह मुझ सी तो भाग्यहीना नहीं थीं।
प्रिय सुत उनके दो गोद में खेलते थे॥

(४६)

व्रज जन जिनकी पा सम्पदा स्नेहसिक्ता।
अतिशय बड़भागी लोक में हैं कहाते॥
हरि चरण निमग्ना सुन्दरी राधिका भी।
इस मुझ दुखिया सी भाग्यहीना नहीं थी॥

(५०)

अति सरस सुधा से पुत्र के चुम्बनों से।
निज विरह व्यथा की वेदना जो भुलाती॥
वह सरल सलोनी बुद्ध की दिव्य जाया।
प्रिय विधु ! मुझ जैसी दुःखिनी तो नहीं थी॥

(५१)

किस तरह बता तो भाग्य को मैं न रोऊँ ?
किस तरह सुखाऊँ आँसुओं को सखी री ?
जब प्रबल बने हैं लोक में पाप मेरे।
जब जगत मुझे है निर्दयी हो जलाता॥

(५२)

सब कुछ सह लेती दुःख से मैं न रोती।
बन कर रह लेती पूर्ण सन्यासिनी मैं॥
यदि हृदय दुलारा लोचनों का उँजाला।
फिर वह मिल जाता फूल सा लाल मेरा॥

(५३)

विकसित बिपदा की सान्त्वना हीन पीड़ा।
झुक-झुक कर मेरा चीरती है कलेजा॥
प्रिय बहिन बता तो बन्द कैसे करूँ मैं।
इस निपट अभागे भाग्य के हेतु रोना॥

(५४)

बनकर धरती की चिन्तना की चिता सी।
जब भभक उठेगी ग्रीष्म की घोर बाधा॥
तब हृदय दुलारे पुत्र का सोच मेरे।
इन व्यथित वियोगी लोचनों में धँसेगा॥

(५५)

जब दुखद उषा भी शोक से हाय मेरा।
यह घर भर देगी रक्त प्रस्तार द्वारा॥
तब यह तड़पेंगे प्राण मेरे अभागे।
उस हृदय दुलारे पुत्र की चिन्तना में॥

(५६)

उन कठिन दिनों में काल सी क्रूर रातें।
जब उतर पड़ेंगी विश्व की व्यग्रता ले॥
तब बहिन बता क्या छोड़ देंगे न काया?
यह भव परितापी पङ्गु से प्राण मेरे।

(५७)

जब रवि किरणों की ताप की ताड़ना से।
बन सुहृद मिलेंगे सिंह भी हाथियों से॥
उस त्रिभुवनतापी ग्रीष्म की व्यग्रता में।
इस दुखद व्यथा से मुक्ति कैसे मिलेगी?

(५८)

अति विषधर नागों नेवलों को सदा ही।
जिन कठिन दिनों में द्वेष है भूल जाता॥
सखि! उन मतवाले काल से दुर्दिनों में
बढ़ बढ़ कर मेरी वेदना वैर लेगी॥

(५९)

जब दिन धरणी के पूर्ण उत्तप्त होंगे।
जब उर वसुधा का उष्णता से जलेगा॥
जब गहन बनों की दुर्दमा अग्निमाला।
उड़ उड़ निगलेगी विन्ध्य से पर्वतों को॥

(६०)

तब बहिन बसेगी चिन्तना लोचनों में।
यह हृदय व्यथा से और भी दग्ध होगा॥
बस प्रतिदिन मैं तो माँगती ही रहूँगी।
पर मिल न सकेगी मृत्यु भी हाय! माँगे॥

(६१)

जब सखि! बरसेगी व्योम से अग्निमाला।
जब ज्वलित तवे सी तप्त होगी धरित्री।
जब हृदय जलाती क्रुद्ध हो लू चलेगी।
तब मुझ दुखिया का हाय! क्या हाल होगा?

(६२)

कथित मृगशिरा की ताप की ताड़ना से।
जब बिलख उठेंगी उन्मना भैंस गायें॥
जब खग मृग होंगे त्रस्त रूखे वनों में।
जब शिशु झुलसेंगे सूखती ऊख होगी॥

(६३)

जब यह यमुना भी जीर्ण सङ्कीर्ण सी हो।
विकसित कर देगी दुर्दिनों के जवासे॥
जब सिहर उठेंगे नीरजों के कलेजे।
तब बहिन! बता मैं हाय कैसे जिऊँगी?

(६४)

गृहपति गृहिणी की गोद की सम्पदा को।
निज कलित प्रभा से चूमती स्नेहशीला ॥
जब छिटक पड़ेगी ग्रीष्म की चन्द्र ज्योत्स्ना।
उन कठिन दिनों में हाय! कैसे जिऊँगी?

(६५)

फिर जब इस मेरी दृष्टि के सामने ही।
सखि! उमड़ पड़ेगी व्योम में मेघमाला॥
इस विरह व्यथा की वेदना को बढ़ाते।
जब दल घुमड़ेंगे धूम से बादलों के॥

(६६)

फिर उन मतवाले और काले घनों में।
जब दमक उठेगी दामिनी चञ्चला हो॥
तब प्रिय सुत मेरा और सर्वस्व मेरे।
सखि! मुझ दुखिया से दूर ही क्या रहेंगे!

(६७)

जब सर सरितायें पूर्ण विस्तीर्ण होंगी।
जब सजल बनेगी मेदिनी मुग्धगन्धा॥
जब तृण तरु सारे भव्य होंगे हरे हो।
तब बहिन! जलूँगी और हा! मैं जिऊँगी!

(६८)

जब धन बरसेगा बादलों की कृपा से।
जब अवनि बनेगी उर्वरा धान्य द्वारा॥
जब जल थल दोनों लोक में धन्य होंगे।
तब यह उर मेरा दग्ध हो हो जलेगा॥

(६९)

जब घर घर भूले भूलते लोग होंगे।
घर घर बहिनें भी भाइयों से मिलेंगी ॥
जब लहर उठेंगे योग शृङ्गार डूबे।
तब बहिन छिपूँगी मैं कहाँ रिक्तहस्ता ?

(७०)

जब विकल पपीहा हाय पी पी रटेगा।
जब हहर उठेगी वायु भी वैरिणी हो ॥
जब घहर पड़ेगी वेदना वर्द्धमाना।
तब बहिन बता तो हाय मैं क्या करूँगी ?

(७१)

जिस सजल मघा में दुग्ध की धार द्वारा।
हुलसित महिलायें पुत्र को पूजती हैं ॥
वह जब इस मेरे गाँव में आ टिकेगा।
तब बहिन बता तो हाय मैं क्या करूँगी ?

(७२)

जब नव कलियों को स्नेह सम्मान दे दे।
हँस हँस कर कान्ता केतकी मुग्ध होगी ॥
जब हुलस उठेगी दिव्य सद्गन्ध द्वारा।
विकसित वदना हो यूथिका भाग्यमाना ॥

(७३)

जब विकच कदम्बों अर्जुनों को हिलाती।
यह मचल पड़ेगी वायु भी पुण्यशीला ॥
जब यह जग सारा स्नेह उन्मत्त होगा।
तब प्रखर बनेगा हाय ! दुर्भाग्य मेरा ॥

(७४)

जब सुर सरिता भी स्नेह संवृद्धि द्वारा।
हुलसित यमुना को भेटने को बढ़ेगी॥
तब बस बिलखूँगी दुःखिनी मैं सखी री!
यह कह कि कहाँ है बालगोपाल मेरा!

(७५)

फिर सुछवि धरा की शोभना शारदीया।
जब उतर पड़ेगी पर्वतों में वनों में॥
जब सब सरितायें निर्मला हो बहेंगी।
विलसित सर होंगे भाग्य से उत्पलों के॥

(७६)

जब कुछ कमलों की नीलिमा चित्रिता हो।
विकसित कर देगी साँवले लोचनों को॥
जब विकच गुलाबी पङ्कजों में बसेगी।
नव छवि अभिरामा पुण्यकामा धरा की॥

(७७)

जब मृग मृगियों के झुण्ड के झुण्ड आ आ।
मृदु छवि भर देंगे लोक के लोचनों में॥
जब सरल सवत्सा सुन्दरी दिव्य गायें।
प्रमुदित विचरेंगी मुग्ध हो हो चरेंगी॥

(७८)

फिर जब सखि! पीले और श्वेतोत्पलों से।
मधुमय कविता का चारु शृङ्गार होगा॥
तब मुझ दुखिया की दुर्दिनों की कथायें।
बढ़ बढ़ दुःख देंगी प्राण तो भी न लेंगी।

(७६)

जब सखि ! यह सारी भूमि निष्पङ्क होगी।
जब महक उठेंगे धान के खेत सारे॥
जब सुलभ सभी को स्नेह के भोग होंगे।
तब अधम बनेंगे प्राण मेरे अभागे॥

(८०)

जब बन मतवाले गूँजते भृङ्ग होंगे।
जब छवि सखि हंसों सारसों की बढ़ेगी॥
जब सकल दिशायें कास के हास द्वारा।
बस बिकस उठेंगी स्नेह उल्लास पा पा॥

(८१)

जब परम अनूठी व्योम की नीलिमा में।
उड़ धवल सुधा सी बादलों की लुनाई॥
सुख भर भर प्यारे खञ्जनों में शुकों में।
दिनकर किरणों का दिव्य शृङ्गार होगी॥

(८२)

तब परम अभागे भाग्य की चिन्तना में।
निज हृदय दुलारे पुत्र के शोक द्वारा॥
जल जल झुलसूँगी मृत्यु की ताड़ना से।
प्रियतम पति द्वारा त्यक्त मैं भाग्यहीना॥

(८३)

जब अनुपमना की मञ्जुला अर्चना से।
अभिनव गुरुता पा धन्य होगी धरित्री॥
जब सकल दिशायें सज्जिता हो उठेंगी।
जब पुलकित होगी शर्वरी मंत्रमुग्धा॥

(८४)

जब निखर पड़ेगी पूर्णिमा की कला में।
उस शरद् निशा की उज्ज्वला चन्द्र-ज्योत्स्ना ॥
जब रस उमड़ेगा व्योम का मेदिनी में।
तब बहिन जलूँगी और रो रो मरूँगी ॥

(८५)

फिर सखि जब सूनी रिक्त शेफालिका की।
वह विकच निकुञ्जें बञ्चिता दुःखदग्धा ॥
टप टप टपकेंगी रात की चाँदनी में।
तब अधम जलेंगे क्या न ये प्राण मेरे ?

(८६)

फिर जब इस मेरी वेदना में व्यथा में।
दिन उतर पड़ेंगे मन्द हेमन्त के वे ॥
जब कमल दलों के साथ सङ्कोच पाता।
यह हृदय जलेगा क्या न मेरा सखी री ?

(८७)

मृदु हरित सलोनी घास में मोतियों सा।
जब ढलक पड़ेगा ओस का कोश सारा ॥
जब नव छवि खेतों क्यारियों की बढ़ेगी।
जन मन परितोषी अन्न के अङ्कुरों से ॥

(८८)

सफलित परिपक्वा धान की बालियों से।
जब पुलकित होगी मञ्जुला मङ्गलाशा ॥
तब इस धरती को आँसुओं से भिगोती।
सिर पटक मरूँगी हाय ! मैं पुत्रहीना ॥

(८९)

जब उदित उषा भी धूम्र से त्रस्त होगी।
जब सखि बरसेंगी वेदनायें सवेरे॥
जब इस यमुना की शीतला वारि धारा।
प्रतिदिन उगलेगी आग उन्मादिनी हो॥

(९०)

तब सचमुच मेरी गोद की सम्पदा से।
मुझ इस दुखिया को तारते प्राण देते॥
बन सुहृद मिलेंगे आ न क्या वे सखी री!
प्रियतम परदेशी जीवनाधार मेरे॥

(९१)

जब मृग मृगियों के कूदने फाँदने से।
सहृदय धरणी हो लोध्र पुष्पाभिरामा॥
इन सुभग सरों के त्रस्त पीतोत्पलों को।
विकसित कर देगी सारसों की सुधा से॥

(९२)

तब यह मन मेरे साथ कैसे निभेगा?
किस तरह लगेगा लोचनों का ठिकाना?
सखि! हृदय बता तो हाय! क्यों साथ देगा?
इस मति गति हारी चिन्तना की चिता में॥

(९३)

यह हृदय कँपाती वेदना जो जगाती।
तिल तिल करके जो छाँटती प्राण मेरे॥
तब यह मुझको क्या चिन्तना बोध देगी?
बन सदय बता दे आज तू तो सखी री!

(६४)

हिम भरित निशायें पूर्ण हेमन्त वाली।
जब उतर पड़ेंगी शीत की आपदा ले॥
तब किस जननी की छातियों में छिपेगा?
वह सुघर सलोना बाल गोपाल मेरा॥

(६५)

जड़ समद बनाता स्थावरों जङ्गमों को।
भव पर बरसाता रात में घोर पाला॥
यह हृदय जलाता हाय! हेमन्त मेरा।
जब हहर उठेगा निर्दयी हो सखी री!

(६६)

तब रति जननी की दिव्य लोकाभिरामा।
मति गति गृहिणी की स्नेह सम्पत्तिशीला॥
इस विरह व्यथा का पुण्य कारुण्य मेरा।
कह सखि! मुझसे क्या छीन लेगा विधाता?

(६७)

फिर रस भरने को विश्व की सम्पदा में।
जब शिशिर लगेगा धूप भी मन्द होगी॥
जब दिन सिमटेंगे और सङ्कीर्ण होंगे।
मति गति नदियों की शृङ्खला-बद्ध होंगी॥

(६८)

जब बहिन सुधा के स्नेह का सार पा पा।
अति मधुर बनेगी ऊख माधुर्य द्वारा॥
जब भव विकसेगा धान्य की मान्यता से।
तब पिघल जलेगा स्नेह संसार मेरा॥

(९९)

जब दिन भर भारी शीत की भीति द्वारा।
विचलित मन होगा काँपते प्राण होंगे॥
तब विरह व्यथा की वर्द्धिता वेदना से।
बस बहिन जलूँगी हाय ! उन्मादिनी मैं॥

(१००)

जब हिम हहरेगा बन्द वातायनों में।
जब तन ठिठुरेंगे कम्बलों में लपेटे॥
जब हृदय हिलेंगे बैठकों में घरों में।
तब बहिन जलूँगी हाय! मैं वेदना से॥

(१०१)

जब घर घर माता लोक सम्पूज्य होगी।
जब सखि ! गृहिणी का धन्य वात्सल्य होगा॥
जब विकस उठेगी सम्पदा बालकों की।
तब बस कलपूँगी हाय! मैं भाग्यहीना॥

(१०२)

जब समद्ध जलेंगे उग्र हो हो अँगीठे।
पुर परिजन शोभी बैठकों में—घरों में।
तब मुझ दुखिया की सम्पदा को जलाती।
यह धधक उठेगी आग मेरी सखी री!

(१०३)

जब जब हिम द्वारा मण्डिता यामिनी में।
उठ उठ सिसकेगी पीत नक्षत्रमाला॥
जब जब निकलेगा शीत सन्तप्त होता।
यह विगत प्रभा सा चन्द्रमा रुग्ण जैसा॥

(१०४

तब तब सखि मेरी क्रुद्धिता यातनायें।
बस मचल पड़ेंगी और उन्मत्त होंगी॥
फिर इस दुनियाँ की रौरवा आपदा में।
किस तरह टिकेगा चित्त उद्भ्रान्त मेरा?

(१०५)

इस विपुल व्यथा की विस्तृता आपदा में।
इस शिशिर निमग्ना वेदना को बढ़ाती॥
बन सरस कभी जो सारसें बोल देंगी।
तब फिर सखि! मेरा हाय! क्या हाल होगा?

(१०६)

जब समय खुलेगा वैरिणी वेदना का।
जब नयन जलेंगे देख विस्तीर्ण रातें॥
तब बहिन! बता दे दुःख कैसे कटेंगे?
इस मुझ दुखिया के—पुत्र से वञ्चिता के॥

(१०७)

जिस नव धन द्वारा लोक है धन्य होता।
जिस पर बलि जाती सर्वदा मातृसत्ता॥
उस हृदय दुलारे पुत्र की चिन्तना में।
सखि! शिशिर कटेगा हाय कैसे बता दे?

(१०८)

फिर प्रणय सँजोती देवरों भाभियों के।
जब उतर पड़ेगी होलिका रागरूपा॥
जब अनुपमता की मञ्जुला अर्चना में।
रह रह बलखाती स्नेह मन्दाकिनी भी॥

(१०९)

तब अति मृदु जी के देवराराध्य मेरे।
इस गुरु बिपदा का झेलते दुःख सारा॥
कह कुछ मृदु बातें बोध देने लगेंगे।
जब मुझ दुखिया को—भाग्य की वञ्चिता को॥

(११०)

उस क्षण उनका मैं मन्द सौभाग्यहीना।
किस तरह करूँगी रूप शृङ्गार जी से?
यदि उमड़ पड़ेगी आँसुओं की नदी तो।
फिर तिलक करूँगी हाय! कैसे सखी री?

(१११)

फिर जब बिकसेगी स्नेह की दिव्य लीला।
जब सरस बसन्ती कल्पनायें बहेंगी॥
जब सहृदयता से भूषिता भूमि होगी।
जब प्रकृति बनेगी मङ्गला चारुशोभा॥

(११२)

उन सुखद दिनों की कल्पना भी चुभेगी।
इन परम अभागे पातकी लोचनों में॥
जब कह कह मइय्या भूलता था गले से।
वह कुँवर कन्हैया बालगोपाल मेरा॥

(११३)

जब ऋतुपति द्वारा स्नेह सम्मान पा पा।
कुसुमित बन होंगे बौरते आम होंगे॥
जब कुहुक उठेगी कोकिला कान्तकण्ठा।
तब हृदय फटेगा क्या न मेरा सखी री!

(११४)

जब नद नदियों की रम्यता दरसायेगी।
विकसित कर देगी लोचनों की पिपासा॥
जब कमल दलों के हास में आ बसेगी।
छवि जन मन भाती मञ्जुला कल्पना की॥

(११५)

जब पुलकित जी की पुण्यशीला लतायें।
प्रमुदित लिपटेंगी दिव्य देवद्रुमों से॥
तब मुझ दुखिया को आ न क्या बोध देंगे?
सखि! प्रियतम मेरे—पुण्य आलोक मेरे॥

(११६)

जब नव कलियों में स्नेह सञ्चार होगा।
ऋतुपति विहरेगा वाटिकाओं बनों में॥
जब अवनि बनेगी मङ्गला पुण्यगर्भा।
तब प्रबल बनेगा हाय! दुर्भाग्य मेरा॥

(११७)

सुरभित सुमनों के वेष विन्यास द्वारा।
जब पुलकित होगी मंत्रमुग्धा धरित्री॥
जब मधुकर माला पुष्प रागाविभूता।
रस पुलक पियेगी रूपशीला सुधा का॥

(११८)

जब बिखर पड़ेगा हास उल्लास सारा।
जब इस वसुधा का स्नेह शृङ्गार होगा॥
जब रस बरसेगा कण्ठ से पंछियों के।
तब सखि! घहरेगा घोर सन्ताप मेरा॥

(११९)

वह जल थल व्यापी चारुता दिव्यकामा।
जब उमड़ पड़ेगी लोकमाङ्गल्यमला॥
तब इस दुनियाँ में पुत्र की वेदना से।
बन विकल जिऊँगी हाय! मैं तो सखी री!

(१२०)

जिस ऋतुपति द्वारा स्नेह का सार पा पा।
विकसित तृण होते धूलि भी धन्य होती॥
जब बहिन कटीली भूमि की वेरियाँ भी।
मृदुतम बनती हैं पुण्य प्रस्तार द्वारा॥

(१२१)

सखि! मुझ पर वैसे दिव्यता के दिनों में।
जब बरस पड़ेंगी विश्व की वेदनायें॥
किस तरह जिऊँगी युक्ति कोई बता तो।
निज पति सुत हीना वञ्चिता मैं मलीना॥

(१२२)

इस तरह सदा ही प्राण थे फूट रोये।
इस दुखद व्यथा में शोक सन्तप्त माँ के॥
दिन बदल सके हा! वेदना के नहीं वे।
उस पति सुत हीना मोहमग्ना सती के॥

(१२३)

कब करुण कथा की वेदना क्षीण होती!
कब जल रुकता है विश्व में लोचनों का!
कब उस जननी के चित्त में शान्ति आती!
प्रिय सुत जिसका है छीन लेता विधाता!

(१२४)

जिस परम पुनीता काव्य की सम्पदा को।
बस हरदम रोना और जीना पड़ा था॥
हम सब उस माँ को आज की दुर्दशा में।
बन निठुर बिसारें विश्व में हाय! कैसे!

(१२५)

इस विरह व्यथा के शोक की वेदना में।
दिन जिस जननी के विश्व में बीतते थे॥
प्रतिपल उसका हा! दैव की क्रूरता से।
गल गल बहता था आँसुओं में कलेजा॥

चतुर्दश सर्ग

(१)

अपनी जिस अन्तर्पीड़ा से व्याकुल होकर भव रोता है।
जीवन जिससे पीड़ित होकर देवत्व हृदय का खोता है॥
युग युग से जिसकी ज्वाला से संहार भयङ्कर होता है।
मानव जिसके अपकारों का अभिशाप सदा से ढोता है॥

(२)

वह पीड़ा जो है फूट पड़ी धरती पर बनकर विकराला।
वह पीड़ा जिसने संसृति में सन्ताप भयङ्कर भर डाला॥
वह पीड़ा जो उपजी बनकर इस जीवन की अन्तर्ज्वाला।
जिसने इन अत्याचारों में मानव का पीड़ित मन ढाला॥

(३)

उसका जिसने प्रतिकार किया उसका जिसने उपचार किया।
धरती पर मानव के मन में जिसने नव बल सञ्चार किया॥
जिसने सर्वस्व गवाँकर भी जन जीवन का उद्धार किया।
जिसने भव के अभिशापों का अपने बल से संहार किया॥

(४)

कवि उसका मञ्जुल यश गाता कविता अब उसके गुण गाती।
जीवन की मङ्गलगाथा से जिसकी प्रतिभा थी बल पाती ॥
जिसके पौरुष से, यौवन से गर्वित मानवता की छाती।
अब तक घर घर में जलती है जिसके पुण्यार्जन की बाती ॥

(५)

जिसमें गङ्गा का गौरव था जिसमें सागर की मर्य्यादा।
अब तक तिरता कालिन्दी में जिसका जीवन यौवन सादा ॥
उत्तुङ्ग हिमालय सा अविचल जिसको तृण सी भव की बाधा।
अभ्युदय जगाकर जनता का निज धर्म सदा जिसने साधा ॥

(६)

जिसने इस सारे जीवन को निश्रेयस् का आलोक दिया।
जिसने अपने इन प्राणों को दुनियाँ के हित में झोंक दिया।
जिसने नव बल बलिदान भरा यह लोक दिया परलोक दिया।
मानवता का नैराश्य महा जिसने हरदम को रोक दिया ॥

(७)

वह सत्यकाम ! वह शक्तिधाम ! वह जनता का जीवन निदान !
वह मर्य्यादा का महाकाव्य ! धरणी भगिणी का पुण्यदान !
वह रस का अक्षय स्नेहसिन्धु ! अपनी माता का कीर्तिगान !
वह अपनी संस्कृति का प्रतीक ! अपने युग का सम्बल महान !

(८)

यौवन देता था शक्ति उसे जीवन देता था भक्ति उसे।
दुनियाँ का मोहक आकर्षण देता था पूर्ण विरक्ति उसे ॥
उठकर विचलित कर सकी नहीं इस भव की कोई युक्ति उसे।
सब कहते थे युग की दैवी मर्य्यादा की पुनरुक्ति उसे ॥

(९)

वह इस व्याकुल मानवता के अक्षय गौरव का अभिलाषी।
उसमें बसता था सत्य सरल शिव सुन्दर होकर मृदुभाषी॥
वह अपनी इच्छा का स्वामी वह इस धरती का अधिवासी।
भारत का तुलसीदास वही यह पुण्य पुरुष यह सन्यासी॥

(१०)

उसके मस्तक पर शोभित थी भारत माता की मर्यादा।
अपने ऊँचे कन्धों पर था तप तेज सदा उसने लादा॥
उसके चौड़े वक्षस्थल पर विधि ने अपना गौरव साधा।
उसने अपने हाथों मेटी सबके दुख दर्दों की बाधा॥

(११)

वह बिघ्नों से बाधाओं से जी भर कर था हँस खेल चुका।
अपने सारे जीवन में था जाने वह क्या क्या झेल चुका॥
गहरे विस्तृत भव सागर में तरणी अपनी वह ठेल चुका।
अपने प्रियतम के चरणों से वह तो अब था कर मेल चुका॥

(१२)

कुसुमाकर की मादकता में रह रह गङ्गा लहराती थी।
गङ्गा के तट सन्यासी की छोटी कुटिया छवि पाती थी॥
कुटियों में ऋषियों की श्रद्धा वाणी बनकर कुछ गाती थी।
इस वाणी में कवि की वीणा यह अनुपम रस बरसाती थी॥

(१३)

स्तुता मया वरदा वेदमाता
प्रचोदयन्तां पावमानी द्विजानाम्
आयुः प्राणं प्रजां पशुं मह्यम् दत्वा
व्रजत ब्रह्मलोकम्

(१४)

प्राची से रवि ने हुलस सुनी वेदों की यह मङ्गल गीता।
जिसकी आकर्षक किरणों में भव की गरिमा थी परिणीता॥
भृङ्गों के मञ्जुल गुञ्जन में यश की रसधारा अभिनीता।
गङ्गा गीता गायत्री से पुलकित थे राम तथा सीता॥

(१५)

अज इन्दुमती दशरथ कौशल्या के कारण सम्मान भरे।
वेदों की वाणी में जिनकी संस्कृति के सुन्दर के गान भरे॥
वह देश धन्य वह धर्म धन्य जिसमें पावन उत्थान भरे।
यह कवि की कविता आज धन्य अपने मन का अभिमान भरे॥

(१६)

अपनी मादक चञ्चलता से सद्गन्ध पवन ने फैलाया।
विहगों ने धरती माता का खुल-खुल कर मञ्जुल यश गाया॥
जल में थल में आनन्द भरा अम्बर में नवजीवन छाया।
हिमगिरि से सागर तक छायी भारत माता की मृदु माया॥

(१७)

बस ऐसी मङ्गल वेला में गङ्गा में हलचल सी छायी।
नावों के लम्बे बेड़े में सेना जैसी कुछ थी आयी॥
नाविक झट तट पर कूद पड़े बस नावों ने लङ्गर डाला।
ऊँचे पालों पर थी जिनके उड़ती मुगलों की जय माला॥

(१८)

सारा दल बल नीचे उतरा अस्त्रों शस्त्रों का वेग लिए।
अपने शासन पोषित बल में बर्बरता का उद्वेग लिए॥
बज उठा दिशायें चीर-चीर शाही सेना का विजय तूर्य।
गाँवों की जनता विकल हुयी ढक गया धूल से बाल सूर्य॥

(१६)

दानव काँपा मानव काँपा काँपी जीवन की मर्यादा।
गाँवों के इस आकम्पन में मानों सब पर टूटी बाधा॥
मेखें गड़ती थीं डेरों की धरती की छाती छेद-छेद।
किस पर कैसी आपत्ति पड़े बतला दे किसको कौन भेद॥

(२०)

उजले डेरों की पंक्ति लगी उजली थी गङ्गा की काया।
गाँवों खेड़ों की छाती पर छायी बर्बरता की माया॥
संन्यासी की उस कुटिया में जनता का अब दल बल छाया।
डूबे जीवन ने व्याकुल हो मानों कुछ सम्बल था पाया॥

(२१)

इस भय से निर्भय होने को एकत्रित थे सब नर नारी।
सब में साहस भरता बोला वह निर्भयता का व्रतधारी॥
तुम इस वसुधा के संरक्षक तुम पुण्य पुरुष तुम अवतारी।
क्यों मरने से तुम डरते हो तुमसे तो सब दुनियाँ हारी॥

(२२)

हम इस भारत के अधिवासी हम राम कृष्ण के पूर्ण भक्त।
हम में अब तक ज्यों का त्यों है ऋषियों मुनियों का शुद्ध रक्त॥
हम क्यों अपने मन से हारें क्यों समझें अपने को अशक्त।
हम अजर अमर हम पुण्यकाम अपने गुरु गौरव से सशक्त॥

(२३)

हम माँ बहिनों की लज्जा पर हँस हँस कर सब मरने वाले।
हम देवों की मर्यादा से जीवन पावन करने वाले॥
हम विघ्नों की बाधाओं की दारुणता को हरने वाले।
हम आज पराजित कैसे हैं प्राणों में गति भरने वाले॥

(२४)

यदि सेना करती भङ्ग यहाँ अस्त्रों शस्त्रों की मर्यादा।
हत्याओं से वह रँगती है यदि गाँवों का जीवन सादा॥
तो इस शासन का बस होगा दुनियाँ में बल विक्रम आधा।
असमय इसको खा जायेगी प्रलयङ्कर बनकर भव बाधा॥

(२५)

आओ! हम सब गौरव समझें हँसते हँसते मर जाने में।
लो देखो! मैं सबसे पहले अपना सिर आज कटाने में॥
हम महाभाग्य अपना समझें प्राणों की भेंट चढ़ाने में।
अपनी माताओं बहिनों पर मर जाने में—मिट जाने में॥

(२६)

हम पहले हैं कह जनता ने गङ्गा का जयजयकार किया।
गङ्गा ने अपनी लहरों से सबको जय का उपहार दिया॥
भारत की गुरु मर्य्यादा ने सबका उस दिन सत्कार किया।
उन्मुक्त पवन ने जन जन के जीवन में पुण्य प्रसार किया॥

(२७)

उस ओर जहाँ ऊँचा होकर मुग़लों का झण्डा फहराता।
जिसमें अपराजित भारत का अपमान पवन में हहराता॥
सहसा सब लोगों ने देखा उस ओर जहाँ गङ्गा माता।
घोड़े पर कोई राजपुरुष आगे को था बढ़ता आता॥

(२८)

कुछ अश्वारोही सैनिक भी गति थी जिनकी बल से ढाली।
धीरे धीरे पीछे चलकर करते थे उसकी रखवाली॥
वह देख इधर के लोगों की आँखों में दौड़ गयी लाली।
आगत भय की आशङ्का से जनता थी क्रोधित मतवाली।

(२९)

लोगों के इन दुर्भावों को तत्काल जिन्होंने पहिचाना ।
आगे वे तुलसीदास बढ़े, बोले मैंने सब कुछ जाना ॥
जीवन की ऐसी लघुता से कितना श्रेयस्कर मर जाना ।
यह हत्या का उन्माद नहीं पुरुषों का वीरोचित बाना ॥

(३०)

देखो हम सब कहलाते हैं उस पुण्यभूमि के अधिवासी ।
जिसमें घर घर पूजे जाते द्विज, देव, अतिथि, गुरु, सन्यासी ॥
हम युग युग से कहते आये ईश्वर है घट घट का वासी ।
सुख भी वैसा ही बन्धन है जैसी दारुण दुख की फाँसी ॥

(३१)

आने दो जो भी आता है वह हम सबका अभ्यागत है !
आने वाले का भारत की कुटियों में होता स्वागत है !
सत्कार सदा सबका करना यह हम सबका जीवन व्रत है !
बस अतिथि हमारा राम, कृष्ण इस युग का बुद्ध तथागत है ॥

(३२)

अब वह आने वाला आया उसने घोड़े को रोक दिया ।
लोगों ने उसका संवर्द्धन आँखों भर भर अवलोक लिया ॥
उससे जितनी मृदु शान्ति मिली, उसने जितना आलोक दिया ।
मन्जुल समीर के झोंकों ने वह सब प्राणों में झोंक दिया ॥

(३३)

ज्योंही वह घोड़े से उतरा सेवक ने बढ़ घोड़ा थामा ।
काली दाढ़ी मूँछों में था प्रत्यक्ष हुआ उसका जामा ॥
उसके पौरुष से फूट पड़ी सारी सुन्दरता अभिरामा ।
उसके स्वागत में कूक उठी आमों पर मदमाती श्यामा ॥

(३४)

ार ज्यों के त्यों खड़े रहे वह पैदल आगे बढ़ आया।
उस नव आगन्तुक का विस्मिति मन से दर्शन पाया॥
के सारे दुर्भाव मिटे अन्तर में मृदु मङ्गल छाया।
जन के मन के मङ्गल का कविता ने मञ्जुल यश गाया॥

(३५)

दिव्य अतिथि का वेष बसा आँखों में अतिशय मनभाया।
ा अनुपम नव संवर्द्धन सारा आकर्षण भर लाया॥
साफे में लगती थी महिमा मण्डित उसकी काया।
तेजस्वी मुख पर था वीरों का वर वैभव छाया॥

(३६)

नीली लम्बी अचकन सोने चाँदी से जड़ी हुयी।
में लम्बी तलवार बँधी मखमली कोष में पड़ी हुयी॥
अधोवस्त्र की उज्ज्वलता जूतों की छवि में अड़ी हुयी।
की अद्भुत सुन्दरता में सम्पत्ति स्वर्ण की मढ़ी हुयी॥

(३७)

के जीवन में यौवन का उल्लास छलकता जाता था।
की आकर्षक गति विधि में गाम्भीर्य झलकता जाता था॥
के विस्तृत वक्षस्थल में बल का वैभव लहराता था।
का सम्बल उठ उठ कर उसका गुण गौरव गाता था॥

(३८)

ानी कविता की छाया में जिसने न कभी विश्राम किया।
वन के मृदु उपभोगों में जिसने न कभी आराम किया॥
सन्यासी के सन्मुख जाकर झुक पूर्ण प्रणाम किया।
ानी वीरोचित वाणी से उसने अपना यों नाम लिया॥

(३९)

मैं इस भारत के अधिपति का सेनापति हूँ अब्दुर्रहीम।
म साधु श्रेष्ठ के दर्शन की रखता था अभिलाषा असीम॥
मेरी वाणी की मर्य्यादा जो अब तक रहती थी मलीन।
दर्शन पाकर कृतकृत्य हुयी वह आज नहीं है दीन हीन॥

(४०)

भारत का अनुपम गौरव बस गाती रहती मेरी भाषा।
बस राम रहीम हमारे हैं यह मेरे मन की परिभाषा॥
भगवन्! बस पूरी हो मेरी अपनी चिर सञ्चित अभिलाषा।
जीवन में बल पाती जावे मेरी वाणी मेरी भाषा॥

(४१)

सन्यासी ने इसके पहले उसको बाहों भर भेंट लिया।
राघव ने वीर विभीषण को मानों भर अङ्क समेट लिया॥
जीवन के तप ने पौरुष को छाती में आज लपेट लिया।
भाई ने बस विह्वल होकर अपने भाई को भेंट लिया॥

(४२)

बोले फिर तुलसीदास कहो कैसे दूँ तुमको धन्यवाद।
तुम भारत के सेनापति हो वाणी के मङ्गलमय प्रसाद॥
तुम धन्य! तुम्हारे भाव धन्य! कवि धन्य! तुम्हारा प्रगतिवाद।
वह सरस तुम्हारा काव्य धन्य! जिससे मिटता सारा प्रमाद॥

(४३)

मैं परिचित हूँ तुमसे सुन सुन वे दिव्य तुम्हारे लोकगीत।
इस विजित जाति के जीवन में छायी बनकर यह हार जीत॥
जिस वाणी की गङ्गा तुमने भर दी इस भूतल में पुनीत।
इससे प्रत्यक्ष भगीरथ से मुझको तुम होते हो प्रतीत॥

(४४)

सन्यासी के दर्भासन पर सेनापति ने आसन पाया !
सुरगुरु के घर में सुरपति का लौकिक स्वागत ! यह मन भाया !
जीवन के तप सञ्चित बल में आत्मा का शुभ दर्शन छाया !
गाया भव ने आनन्दित हो मानवता का नव यश गाया !

(४५)

वे दोनों हिन्दू मुसलमान वे दोनों धरती के सपूत।
वे धर्म कर्म के दिव्य रूप वे पुण्यपुञ्ज वे तपःपूत ॥
वे लोक वेद के वर वैभव उनसे सहिष्णुता थी प्रसूत।
वे मानव की मर्य्यादा के रक्षक भूतल के देवदूत ॥

(४६)

वे दोनों हिल मिल कर बैठे लोगों ने उनकी जय बोली !
भारत माता की महिमा भी जन जन में हो तन्मय डोली !
सबके मस्तक पर वीरोचित जय का कुङ्कुम, जय की रोली !
भव में वरदायक सिद्ध हुयी उस दिन सन्यासी की झोली !

(४७)

सन्यासी मुसकाकर बोले भिक्षुक सबके घर जाता है।
पर भिक्षुक की कुटिया में तो नारायण नर बन आता है ॥
यह जान पुलक मैं उठता हूँ मेरा अन्तर सुख पाता है।
भव में नर का नारायण का हरदम जुड़ता यह नाता है ॥

(४८)

इस नाते मैं सेवा कर लूँ जितनी भी वह सब थोड़ी है।
पर जीवन में सन्यासी की मर्य्यादा मैंने जोड़ी है ॥
मैंने अपनी दीक्षा लेकर सारी लौकिकता तोड़ी है।
मैंने भव की आदरणीया सम्पत्ति सदा को छोड़ी है ॥

(४६)

अपने आगत अभ्यागत का मैं फिर कैसे सत्कार करूँ ?
तुम मेरे नारायण बोलो ! मैं कैसे प्रत्युपकार करूँ ?
अपनी अभिलाषा का कैसे मैं आज सफल संसार करूँ ?
आतिथ्य हृदय में जाग उठा कैसे उसका उपचार करूँ ?

(५०)

यह सुनकर सेनापति बोले गद्गद हो दोनों हाथ जोड़ ।
भगवन् यह सब क्या कहते हैं मुझको लज्जा के मध्य छोड़ ।।
छूटी मेरी भव की बाधा टूटी माया की प्रबल होड़ ।
मेरी सारी जीवन धारा दी देव आपने आज मोड़ ।।

(५१)

मैं अब तक तो सेनापति था कहलाता था सत्ताशाली ।
मैं इतनी सारी दुनियाँ की करता था झूठी रखवाली ।।
पर मैंने अब इस जीवन की मङ्गलमय मर्य्यादा पा ली ।
भगवन् की मञ्जुल वाणी ने मेरी चिर अभिलाषा ढाली ।।

(५२)

सारे भारत भर का जीवन सारे भारत की अभिलाषा ।
जनता में जीवन जागृति बन भव में जागी जिसकी भाषा ।।
अभ्युदय तथा निःश्रेयस की जिसकी फैली यह परिभाषा ।
उसका यह शुभ दर्शन पाकर पूरी मेरी सब अभिलाषा ।।

(५३)

भगवान राम का नव दर्शन जो घर घर में बरसाता है ।
भव में जिसके मङ्गल यश का मीठा सागर लहराता है ।।
जो अपने कर्तव्यों द्वारा धरती को स्वर्ग बनाता है ।
जिसके जीवन से—यौवन से गर्वित यह भारत माता है ।।

(५४)

उस जगत्पिता की अनुकम्पा जिसके प्राणों में जाग उठी।
जिसके यौवन के चिन्तन से विष की संहारक आग उठी॥
जिसकी पावन आत्मोज्वलता भव की यह निद्रा त्याग उठी।
जिसका मञ्जुल सद्गन्ध लिये फूलों में बिखर पराग उठी॥

(५५)

उसकी कुटिया में त्रिभुवन का ऐश्वर्य महा सुख पाता है।
उसकी मङ्गलमय वाणी से संसार सुलझता जाता है॥
उसका नव आशीर्वाद सदा प्राणों में प्राण जगाता है।
मैं धन्य हुआ उससे मेरे जीवन का जागा नाता है॥

(५६)

सन्तों की मङ्गल गाथा से रस पाती है गङ्गा माता।
गङ्गा माता के यश में है सुख से पलता मेरा नाता॥
मेरे नाते का संवर्द्धन भगवन् से मर्य्यादा पाता।
उसकी मञ्जुल मर्य्यादा में मेरा मृदु अन्तर लहराता॥

(५७)

मेरे मानस की उत्सुकता हे साधु श्रेष्ठ! देखो जागी!
मैं आज गृही बन पूछ रहा मेरे वरदायक वैरागी!
हे देव! आपने जीवन की गार्हस्थिकता कैसे त्यागी!
क्यों कर वाणी के वैभव का वैरागी है यह अनुरागी!

(५८)

बोले महर्षि हे कवि पुङ्गव! मैं सन्तों का दासानुदास।
रघुपति की गौरव गाथा से पोषण पाता मेरा विकास॥
मुझमें, तुममें, सबमें रमता बस रातों दिन उनका विलास।
मैं और अधिक क्या बतला दूँ उनका ही सब कुछ आसपास॥

(५९)

पर आज पूछता है मुझसे तुम सा सहृदय मानव महान !
मेरे जीवन का आदिवृत्त जिसमें केवल करुणा प्रधान !
सुन लो कवि ! मेरे जीवन का वह राम नाम ! वह काव्य-गान !
सब देव सुनें ! ऋषि पितृ सुनें ! सुन ले यह धरती आसमान !

(६०)

अपने शैशव की छाया में जननी की पा ममता माया ।
मेरे जीवन ने कुछ ही दिन बेसुध बन कर खेला खाया ॥
भगवान कृपा करके रूठे माँ ने इस भव को ठुकराया ।
वे छोड़ मुझे गोलोक चलीं ऐसा मैंने बचपन पाया ॥

(६१)

फिर पिता छोड़ कर साथ चले यों दिन बीते मैं बड़ा हुआ ।
मेरे मालिक बस राम हुये मैं अपने पैरों खड़ा हुआ ॥
संसार दिखा सारा मुझको बस पूर्ण निराश्रित पड़ा हुआ ।
भव भर में बस मैंने देखा राघव का झण्डा गड़ा हुआ ॥

(६२)

अब मेरे आश्रयदाता थे बस पूज्य पिता के मित्र एक ।
वे महागृही ! आदर्श रूप ! जाग्रत मानव के वे विवेक !
उनके शिष्यों में भारत के विद्वान तथा पण्डित अनेक ।
उनके करतल गत वेदशास्त्र ! वे वाणी के राज्याभिषेक !

(६३)

उनकी भार्या करती थीं अब मेरी माता की स्थानपूर्ति ।
वे नारी की मर्यादा थीं वे दया मया की पुण्य मूर्ति ॥
मेरा शैशव अब पाता था उनकी गोदी में नवस्फूर्ति ।
उनको पाकर मैं भूल गया जीवन में माता की अपूर्ति ॥

(६४)

उनके संरक्षण में बीते मेरे बचपन के सात वर्ष।
करुणा करके भगवान बने मेरे निमित्त अब दुराधर्ष!
चाची की वातव्याधि बनी मेरे दुख में दवी अमर्ष!
दारुण जीवन सङ्घर्ष मचा संत्रस्त हृदय का मिटा हर्ष॥

(६५)

उनका चलना फिरना छूटा हिलना डुलना भी बन्द हुआ।
अपने शैशव में ही मेरा दुर्भाग्य निरा निर्द्वन्द्व हुआ॥
बस उमड़ी दुःखों की धारा कष्टों का दल स्वच्छन्द हुआ।
मेरे बचपन का सारा सुख निस्तेज हुआ फिर मन्द हुआ॥

(६६)

चाचा का कोमल चित्त नयी बिपदा से चिन्ताग्रस्त बना।
मेरे पालन पोषण को ले उनका मृदु जीवन व्यस्त बना॥
उनका खाना पीना छूटा उनका संयम संत्रस्त बना।
सेनापति! यों बचपन से ही मैं दुःखों का अभ्यस्त बना॥

(६७)

मेरे चाचा जिस दिन मुझको भोजन न समय पर दे पाते।
उस दिन केवल वे जल पीकर सारे दिन भूखे रह जाते॥
मेरा भूखा मुख देख देख चाची के लोचन भर आते।
मेरे जीवन में प्रेम पला सेनापति! बस उनके नाते॥

(६८)

रुग्णा चाची करती रहतीं नाहक मेरे सुख का प्रयास।
मेरी उनकी सुश्रुषा में चाचा रहते दिन भर उदास॥
उस बचपन में छायी रहती चिन्ता बस मेरे आसपास।
मेरा दारुण दुर्भाग्य बढ़ा पाकर यों प्रारम्भिक विकास॥

(६९)

पण्डित थे गङ्गापार एक जिनकी अतिशय विदुषी जाया।
जिनकी ममता की गाथा का मैंने सब दिन है यश गाया॥
अपनी स्नेहातुर आँखों में भर भर करके ममता माया।
चाचा चाची ने कुछ दिन को उनके घर मुझको पहुँचाया॥

(७०)

वे पूज्य पिता के सहपाठी चाचा के जीवित स्नेह चित्र।
इनसे जीवन की मर्य्यादा होती थी धरती पर पवित्र॥
निज संस्कृति का इतिहास जगा उनके अन्तस्तल में सचित्र।
वे धर्म कर्म के मूर्त रूप! वे मानवता के महामित्र!

(७१)

मुझको वे अपने घर लाये सब सम्भव सुख पहुँचाने को।
पर यह मेरा दुर्भाग्य चला मुझको सर्वत्र सताने को॥
बस लगी झड़ी पावस आया सारा यह देश डुबाने को।
गङ्गा यमुना मिल एक हुयीं मन को सन्तप्त बनाने को॥

(७२)

बिपदा छायी थी जीवन में सारी धरती में त्रास मचा!
बन भीम भयङ्कर शङ्कर ने भव में उद्धत परिहास रचा!
सारी धरती में जल उमड़ा जल का ही एक विकास बचा!
मृत्युञ्जय का आक्रोश महा सकता है कौन सहास पचा!

(७३)

भव की पीड़ा के उपशम में अपनी सब शक्ति लगाने को।
मानवता के मिटते युग में जीवन आलोक जगाने को॥
जीवन की व्याकुल करुणा में अपना अनुराग खपाने को।
मेरे ये काका चल डगरे लोगों के प्राण बचाने को॥

(७४)

अपने शिष्यों का दल बल ले लेकर के नावों का बेड़ा।
यम के उन अत्याचारों से सङ्घर्ष उन्होंने था छेड़ा॥
पौरुष ने अपने बल से था यमपुर का दरवाजा भेड़ा।
उबरे लोगों के दल से था ऊँचे पर एक बसा खेड़ा॥

(७५)

दिन भर की व्याकुल पीड़ा से जब रात विकल हो रोती थी।
मेरी यह काकी तब मुझको छाती से चिपका सोती थी॥
पीड़ित मानवता व्याकुल हो अपना धीरज धन खोती थी।
धरती माता के वैभव की दुर्दशा भयङ्कर होती थी॥

(७६)

बस मध्य निशा में गाँव बहा मैंने इतना ही सुन पाया।
अपनी उस काकी से चिपका मैं आँगन में बाहर आया॥
उस रिमझिम में बिजली कड़की फिर गाज गिरी नभ वहाराया।
मूर्छित माँ बेटे साथ गिरे जल यों जीवन लेने आया॥

(७७)

यह काका का इतिवृत्त तथा काकी छूटी फिर किस प्रकार।
बस सब अज्ञात रहस्य निरा भीषण विपत्ति का यह प्रहार॥
मैंने जब ये आँखें खोलीं करुणा वरुणालय को पुकार।
मुझको प्रभु की अनुभूति हुयी खुल गया हृदय का रुद्ध द्वार॥

(७८)

मैंने देखे कुछ साधु वहाँ अपनी काया के हितकारी।
मुझको था जीवन दान मिला उनसे मेरे वे उपकारी॥
कुछ दिन मैं उनके साथ रहा आयी फिर से विपदा भारी।
मैं उन्हें छोड़कर भाग चला सिर पर भव की करुणा सारी॥

(७९)

मैं सोच रहा था यहीं कहीं मेरा घर होगा आसपास।
मैंने बतलाया लोगों से निज वंश तथा निज आदिवास ॥
उत्तर में बस मैंने जाना वह दूर देश है नहीं पास।
उसमें केवल मेरे निमित्त आपत्ति उपस्थित क्रुद्ध त्रास ॥

(८०)

मैं क्या कहता किससे कहता सुनने वाला था कौन वहाँ?
देखे मेरी आपत्ति महा बैठा था मेरा कौन वहाँ?
मेरे उस शैशव को समझे ऐसा संरक्षक कौन वहाँ?
पीड़ा की निर्दय क्रीड़ा में मेरा शुभ शिक्षक कौन वहाँ?

(८१)

चुपचाप मन्दिरों में घुसकर प्रायः सदैव मैं सो जाता।
दिन के पहले बस उठकर मैं दुख की इस दुनियाँ में आता ॥
धरती पर था मेरा आश्रय मेरा था बस प्रभु से नाता।
रोटी के रूखे टुकड़ों का यश था फिर भी यह मन गाता ॥

(८२)

ज्यों ज्यों दिन ऊपर चढ़ता जा लगती थी त्यों त्यों भूख बड़ी।
हरदम केवल अपमान लिये सिर पर रहती आपत्ति खड़ी ॥
तन मन की दुर्बलता रहती निर्बल काया के साथ जड़ी।
गरमी में ताप जलाता था भीषण सरदी में शीत कड़ी ॥

(८३)

द्वार द्वार दीन हो ललाता बिललाता हुआ,
खाता हुआ ठोकरें विरुद्ध बलवानों की।
राजमन्दिरों की अनुदारता से हारकर,
कुटियों में देखता उदारता किसानों की ॥

भटक रहा था भूख की विडम्बना लिये मैं,
चिन्तना लिये हुये असह्य अपमानों की।
अर्थ धर्म काम मोक्ष के समान मानता था,
महिमा महान मैं चने के चार दानों की॥

(८४)

उन दुर्दिनों में मैंने जैसे कष्ट झेले और,
ठोकरें सहीं जो दुःख दर्द के चपेट की।
मैंने जिस भाँति के दुरन्त दृश्य देखे और,
झेलीं यातनायें जो विपत्ति के लपेट की॥
उनमें महान वरदान ढालने के हेतु,
राम ने कृपा जो निज करुणा समेट की।
उसके प्रभाव से सदैव कहता हूँ मैं कि,
घोर बाड़वाग्नि से बड़ी है आग पेट की॥

(८५)

जाति पाँति आदि के सभी प्रशस्त भेद भाव,
भस्म हुये पेट की महा प्रचण्ड आग में।
दीनता मलीनता से हीनता पनप उठी,
रूखी रोटियों के टुकड़ों के अनुराग में॥
गालियाँ कहीं मिलीं सरोष ठोकरों के साथ,
क्रूरता कहीं छिपी मिली मुझे विराग में।
सुनने अयोग्य शब्द सुन पड़ते थे कहीं,
देखने अयोग्य दिखता था दृश्य त्याग में॥

(८६)

विश्व की सशक्त वेदनाओं का प्रताप देख,
ज्योंही मैंने आर्त हो पुकारा भगवान को।
देवों दानवों के मानवों के प्रतिपालक को,
पाप पुण्य चालक को करुणानिधान को॥

त्योंही दीन जान दीनबन्धु ने उबार लिया,
मुझसे नगण्य शरणागत अज्ञान को।
जिनकी कृपा की गति धन्य करती है आज,
मैथिली के मान को—भरत से महान को॥

(८७)

मुझसे गुरु बन गोविन्द मिले मेरे ये प्राण बचाने को!
उनकी करुणा धारा बरसी मेरे सन्ताप मिटाने को!
जब यों करुणाकर राम मिले तब और बचा क्या पाने को!
मेरे सेनापति! तब क्या था फिर मेरे पास छिपाने को!

(८८)

धन था ही क्या? तन मन सारा मैंने निज गुरु को दे डाला।
मानव की काया में वे थे भगवान उन्होंने प्रतिपाला॥
मैं दुनियाँ का दुनियाँ मेरी मुझको क्या उजला! क्या काला!
प्रभु की करुणा से बन बैठा मैं राम रँगीला मतवाला॥

(८९)

जो कुछ मैंने सीखा साखा जो कुछ भी मैंने पढ़ पाया।
वह केवल गुरु की करुणा थी जिसने मुझको यों गढ़ पाया॥
मैं उनके चरणों में झुककर बैठा तब ऊपर चढ़ पाया।
पहले मैंने झुकना सीखा तब सिर ऊँचा कर बढ़ पाया॥

(९०)

मेरा बचपन कब बीत चला कैसे! मुझमें यौवन आया!
सब कुछ मुझको अज्ञात रहा मैंने क्या खेला! क्या खाया!
मुझमें जिसका विश्वास बढ़ा जिसके दर्शन मैं कर पाया!
अपने जीवन में उसका यश मैंने बस खुल खुल कर गाया!

(६१)

प्रभु की करुणा लहराती है आपत्ति भरे उत्थानों में।
नाहक सारा भव उलझ रहा अन्तर के तानों बानों में॥
देखो भव का वैभव छाया कोसल व्रज के मैदानों में।
सेनापति ये भगवान खड़े इन खेतों में—खलिहानों में॥

(६२)

काशी में मेरे चाचा जी मुझको बस एकाएक मिले।
मेरे मानस की वीणा के झंकृत हो तार अनेक हिले॥
अन्तर के उजले छाले बस पाकर करुणा की टेक छिले।
जीवन के भूले दुःख सभी आँखों का बन अभिषेक खिले॥

(६३)

यौवन का नव संवर्द्धन पा गुरु की पा करुणा की छाया।
चाचा का प्यार दुलार लिये अब मैं अपने घर को आया॥
चाची काकी दोनों ही अब एकत्रित थीं ममता माया।
मैं बेटा दो माताओं का उन दोनों ने मुझको पाया॥

(६४)

यद्यपि उनके कुल गोत्र भिन्न मेरे निमित्त वे किन्तु एक।
उनका अनुपम वात्सल्य सदा करता मेरा राज्याभिषेक॥
थीं एक परम सौभाग्यवती वैधव्य झेलतीं किन्तु एक।
मेरी स्वर्गीया माता की वे बोधमूर्ति—जाग्रत विवेक॥

(६५)

पहली माँ के भाग्योदय में विधु सी बेटी थी खेल रही।
श्रीहर्ष नाम का बेटा ले वैधव्य दूसरी झेल रही॥
अपने ये भाई बहिन लिये अब भी मेरी मति खेल रही।
अब भी मेरी मानव प्रज्ञा करती है उनका मेल सही॥

(९६)

श्रीहर्ष युवक की मर्य्यादा विधु थी कविता सी कमनीया।
बस एक सिन्धु सा पौरुष का अपरा वाणी सी वरणीया॥
इनकी यह मृदु मञ्जुल जोड़ी जन जन को थी आदरणीया।
इनकी सुन्दरता से बनती भव में सुन्दरता रमणीया॥

(९७)

मेरी इच्छा थी दोनों का बस वैवाहिक सम्बन्ध जुड़े।
इन दोनों की जीवन धारा पावन परिणय की ओर मुड़े॥
पर जिसका जीवन ही उखड़ा उसके कब हैं अरमान जुड़े।
भव में बस कोमल भावों के हरदम आदान प्रदान उड़े॥

(९८)

सेनापति मेरी गृहिणी थी गार्हस्थिकता की मर्य्यादा।
उसका अनुपम व्यक्तित्व भरा अब तक मेरे मन में सादा॥
उसके मङ्गलमय जीवन ने मुझ पर जितना सम्बल लादा।
उस पर मुझसे सन्यासी की अब भी मर्य्यादित मर्य्यादा॥

(९९)

वह मानवता की मृदु भाषा! वह मङ्गलमूर्ति जवानी सी!
मेरे परिवर्तित जीवन की उद्बोधक! वह ठकुरानी सी!
वह जीवन की अनुकम्पा सी धरती के धन की रानी सी!
मेरे इस कवि के अन्तर में छायी वह करुण कहानी सी!

(१००)

उसके बेटे को रुग्णा छोड़ मैं गया बनारस एक बार।
भारत की पण्डित परिषद् का मुझ पर निर्भर था कार्य भार॥
तारक उसकी गोदी का धन जीवन का मङ्गलमय प्रसार।
उसको हरदम को छोड़ गया सारी ममता माया बिसार॥

(१०१)

मैं यह सब सुनकर घर लौटा रत्ना को मुहँ दिखलाने को।
उसके वैसे दारुण दुख में आँसू दो चार बहाने को॥
वह गयी पिता के घर को थी सन्तोष तनिक सा पाने को।
अपने शोकाकुल जीवन के अन्तर की आग बुझाने को॥

(१०२)

दुख से व्याकुल अति शोकाकुल पत्नी का मैं अभिशाप बना!
मैं सहसा विषयोन्मुख होकर उसके मन का सन्ताप बना!
नारी की मृदु मर्य्यादा का घातक मैं अपने आप बना!
अपने जीवन का सेनापति मैं भीषणतम परिताप बना!

(१०३)

पत्नी का वह प्रतिरोध देख बदली मेरी जीवनधारा।
उसकी मर्मस्पर्शी वाणी सुनकर मैं तो उससे हारा॥
बस उस दिन से मैं और हुआ बदला बस मेरा क्रम सारा।
न्यारा मेरा घर बार हुआ संसार हुआ मेरा न्यारा॥

(१०४)

तब से मैं सारी दुनियाँ का सेवक पायक सन्यासी हूँ।
जन जन के जीवन यौवन का सम्बलदायक सन्यासी हूँ॥
मैं कुटियों का—झोपड़ियों का मङ्गलगायक सन्यासी हूँ।
इन खेतों का—खलिहानों का निर्धन नायक सन्यासी हूँ॥

(१०५)

अपने इन पाँवों से चल चल सारा भारत मैंने देखा!
मानवता की मर्य्यादा को घर घर आहत मैंने देखा!
बस पापों का—परितापों का आगत स्वागत मैंने देखा!
अपनी इस सारी धरती को तृष्णा में रत मैंने देखा!

(१०६)

मैंने देखा इन आँखों से दानवता का दुर्दान्त योग !
मैंने देखा इस भारत के जीवन में फैला राजरोग !
मैंने देखा निर्बल जन पर बलवानों द्वारा बल प्रयोग !
मैंने सत्ता के मतवाले लोगों का देखा महाभोग !

(१०७)

मैंने देखी धनपतियों के जीवन की लीला मतवाली !
मैंने घर घर आकर देखी भूखी जनता की कङ्काली !
मैंने भव की पीड़ा देखी जिसमें है निर्बलता ढाली !
मैंने कितनों की मार सही सादर हँसकर सुन ली गाली !

(१०८)

इन आँखों से ब्राह्मण मैंने वेदों के विद्रोही देखे !
इन आँखों से क्षत्रिय कितने मैंने देशद्रोही देखे !
वैश्यों के दल के दल मैंने माया के आरोही देखे !
आँखों से मैंने शूद्र निरे जीवन के निर्मोही देखे !

(१०९)

मैंने मुग़लों के शासन का भारत भर में कौशल देखा !
मैंने जीवन में तुम जैसे सेनापतियों का बल देखा !
मैंने पहले ही वह देखा ! दुनियाँ ने जिसको कल देखा !
मैंने जीवन में तृष्णा की व्यापकता का कल छल देखा !

(११०)

मैंने देखी है शासन की नङ्गी तलवारों की लीला !
देखा मैंने इन आँखों से मानवता का जीवन ढीला !
माँ बहिनों की गीली आँखें बच्चों का भोलापन गीला !
जनता के जीवन का यौवन मैंने देखा पीला पीला !

(१११)

मेरी आँखों में सेनापति ! सारा यह राज समाज छली !
फैले हैं बन कर भूमिचोर इस धरती पर अधिराज बली !
इनकी आँखों में मानव की मर्य्यादा बस दिन रात खली !
इनके दारुण दुष्कर्मों से सारी दुनियाँ है आज जली !

(११२)

मेरा प्रयत्न है मानव से मानवता का संहार रुके !
मेरी इच्छा है धरती पर छल छन्दों का व्यापार रुके !
मेरा भव को सन्देश यही पापों का प्रत्यासार रुके !
नर का वह नारायण जागे जड़ता का यह विस्तार रुके !

(११३)

धरती भर में हो रामराज्य मिट जाय जगत का दुःख दोष !
दारिद्रय मिटे जन जीवन का जागे पौरुष का पद्म कोष !
जनता में सुख ही सुख व्यापे हो नष्ट काल का उग्र रोष !
जीवन के पावन यौवन से पावे यह सारी सृष्टि तोष !

(११४)

जागे भव भर का धर्म तथा जागे कर्मों का दिव्य योग !
मानवता का मस्तिष्क खुले मिट जाय विश्व का राज रोग !
धरती के रक्षक पैदा हो बल का हो बस सच्चा प्रयोग !
भव में सच्चा उद्यम जागे जागे सेवा का सदुपयोग !

(११५)

नस नस में बल भरने वाली सुनकर सन्यासी की वाणी।
सादर सेनापति बोल उठे मैं ही हूँ वह पामर प्राणी॥
जो औरों की बलि लेकर भी कहता अपने को बलिदानी।
जीवन की दाहक ज्वाला से जिसका अन्तस्तल अभिमानी॥

(११६)

माना मैंने हे पूज्यपाद ! मुझमें जीवन का लोभ भरा।
मेरे मानस में शासन की सत्ता का वह विक्षोभ भरा॥
मुझमें वह वैर विरोध भरा जिसमें केवल प्रतिशोध भरा।
दुनियाँ को खा जाने वाला मेरे मन में दुर्बोध भरा॥

(११७)

अपने को घोषित करता हूँ मैं रामराज्य का पूर्ण भक्त।
उसके मङ्गलमय शासन का मैं एक नागरिक हूँ सशक्त॥
होकर इन सारे पापों से—सारे परितापों से विरक्त।
प्रभु की इच्छा पर निर्भर हो मेरा यह जीवन अनासक्त॥

(११८)

बस रामराज्य का धरती में अम्बर में जयजयकार हुआ!
बन मुक्त दिशायें मुसकायीं मानवता का सत्कार हुआ!
पौरुष की प्रतिभा का जग में जब आदर अपरम्पार हुआ!
तब सब संसार पुकार उठा उसके यश का विस्तार हुआ!
वह देश धन्य! वह जाति धन्य! वह धर्म धन्य सबसे महान!
तुलसी से हिन्दू सन्त जहाँ खानानखान से मुसलमान!

(११९)

गङ्गा जागी! गीता जागी! जागी गायत्री की काया!
ऋषियों मुनियों की श्रद्धा भी जागी लेकर ममता माया!
सागर की ऊँची लहरों में भारत का गुरु गौरव छाया!
विन्ध्याचल और हिमाचल ने आनन्दित होकर यह गाया!
वह देश धन्य! वह जाति धन्य! वह धर्म धन्य सबसे महान!
तुलसी से हिन्दू सन्त जहाँ खानानखान से मुसलमान!

(१२०)

गिरिजा का प्यार दुलार लिये सुख से विधिजा लहराती थी!
अपनी मञ्जुल महिमा के बल सुजला हो सिन्धु सुहाती थी!
सरयू के स्वर में स्वर भर भर कालिन्दी केलि मचाती थी!
माँ बहिनों की मङ्गलगाथा अपना गौरव यों गाती थी!
वह देश धन्य! वह जाति धन्य! वह धर्म धन्य सबसे महान!
तुलसी से हिन्दू सन्त जहाँ खानाखान से मुसलमान!

(१२१)

सीता के यश की छाया सी बहती है गोदावरी जहाँ!
नर्मदा जहाँ पूजी जाती कृष्णा कावेरी भरी जहाँ!
बस रामराज्य के वैभव से सारी धरती हो हरी जहाँ!
गरजे सुख से हनुमान वहाँ सबला बन शबरी तरी जहाँ!
वह देश धन्य! वह जाति धन्य! वह धर्म धन्य सबसे महान!
तुलसी से हिन्दू सन्त जहाँ खानाखान से मुसलमान!



पञ्चदश सर्ग

(१)

धरित्री प्रसन्नानना चारुशीला।
महापुण्य संयुक्त लावण्य लीला॥
हटी व्योम से वारिदा मेघमाला।
बनी भूमि आकाश की चित्रशाला॥

(२)

बही दिव्य सद्गन्ध लोकाभिरामा।
दिखी पुष्पिता यौवनश्री ललामा॥
घरों में भरी दिव्यता वन्दनीया।
बनी सृष्टि थी पूर्ण आनन्दनीया॥

(३)

सजी भूमि निष्पङ्क नेत्रोपहारी।
बसी लोक में स्नेह सम्पत्ति सारी॥
उड़े नील आकाश में व्योमचारी।
खिले कास काया कुशों ने सवाँरी॥

(४)

हँसी पद्मजा लोक की राजरानी।
बसी मञ्जला नीरजों में जवानी॥
लगी गूँजने मञ्जुला भृङ्गमाला।
सुधा स्नेह की अर्चना ले विशाला॥

(५)

उड़े हंस निष्पङ्क नीले सरों से।
शुकों ने नयी प्रेरणा ली घरों से॥
नयी सृष्टि थी खञ्जनों ने बनायी।
धरा धाम में शाम थी आज छायी॥

(६)

झरी निर्झरों में भरी स्नेहधारा।
कला चञ्चला बाँटती पुण्य सारा॥
नया आज कन्दर्प ने गीत छेड़ा।
रस में बसा पुण्य का पूर्ण बेड़ा॥

(७)

बही दिव्य देवापगा पुण्ययुक्ता।
महादेव की साधना रीतिमुक्ता॥
चली अर्कजा नीलिमा ढालने को।
शुभा सृष्टि को देखने भालने को॥

(८)

हँसी लोचनों में घटा शारदीया।
धँसी लोचनों में कटा शारदीया॥
फँसी लोचनों में अटा शारदीया।
बसी लोचनों में छटा शारदीया॥

(९)

धरा धन्य हो देखती विश्ववन्द्या।
मनोरञ्जना पूर्णिमा पूर्ण सन्ध्या॥
दिशायें सभी सुन्दरी थीं समाना।
सुधा सङ्कुला मञ्जुला भाग्यमाना॥

(१०)

बढ़ी लोक की लालिमा स्नेहकामा।
चढ़ी पर्वतों के शिरों में ललामा॥
खड़ी मोहिता भूमि में कामकामा।
सुखी सृष्टि सन्तुष्ट लोकाभिरामा॥

(११)

महापुण्य था साँझ ने आ सकेला।
दिशायें सुखी प्राप्त गोधूलि वेला॥
उड़ी धूलि से व्योम ने मान पाया।
मची धूम थी लोक उल्लास छाया॥

(१२)

सवत्सा चली धेनुओं की प्रणाली।
महा कामरूपा बड़े भाग्यवाली॥
थनों में भरे दूध की मञ्जु माया।
सदा विश्व की पोषिका दिव्य काया॥

(१३)

जिन्हें कृष्ण भी थे सुखी हो चराते।
जिन्हें राम थे लोकमाता बताते॥
जिन्हें प्राप्त थी स्नेह की छत्रछाया।
घरों को वही जारहीं लोकमाया॥

(१४)

लिये क्रुद्ध हुङ्कार में शक्ति सारी।
चले साँड़ भी गोड़ते भूमि भारी ॥
चले बैल भी विक्रमी वीर्यधारी।
सदा शौर्य सम्भूत लोकोपकारी ॥

(१५)

जिन्होंने नहीं विश्व में मान पाया।
जिन्होंने सदा भार दूना उठाया ॥
बली विक्रमी रुद्र के दूत जैसे।
चले रोष से नोचते भूमि भैंसे ॥

(१६)

चलीं मत्तगा दीर्घ शृङ्गोपधाना।
कसी कज्जलाकार भैंसें महाना ॥
महाभार से डोलतीं स्निग्ध दुग्धा।
यथा लोक की कलिका मंत्रमुग्धा ॥

(१७)

जनों ने उन्हें नाम ले ले पुकारा।
मिला धाम आराम का काम सारा ॥
घरों में बही दूध की दिव्य धारा।
महा पुण्य यों लोक ने था पसारा ॥

(१८)

जिन्हें देख सन्ध्या हुयी स्नेहसिक्ता।
बनाया जिन्हें देश ने मंत्ररिक्ता ॥
करों में लिये नीर की गागरी वे।
घरों को चलीं मङ्गला नागरी वे ॥

(१६)

उमा से जिन्हें प्राप्त सौभाग्य सारा।
जिन्हें पद्मजा ने दिया था सहारा॥
जिन्हें शारदा से मिली प्राणधारा।
जिन्हें साँझ की दिव्यता ने सवाँरा॥

(२०)

पिता की भली पुत्रियाँ वे दुलारी।
सदा भाइयों को बड़ी प्राणप्यारी॥
लिये बाल गोपाल प्राणोपकारी।
दिखीं देवियाँ अर्चना तुल्य सारी॥

(२१)

उन्हें दिव्यता ने गले से लगाया।
उन्हें देख संसार ने मान पाया॥
उन्हीं में दिखा लोक लावण्य छाया।
उन्हीं में सदा स्नेह सारा समाया॥

(२२)

उन्हीं से बनी लालिमा भी ललामा।
वनश्री हुयी पत्र पुष्पाभिरामा॥
हुआ अस्त आरक्त हो अंशुमाली।
बिछी भूमि आकाश में दिव्य लाली॥

(२३)

उन्हीं के खगों ने यहाँ गीत गाये।
उन्हीं में सदा स्नेह सङ्गीत छाये॥
उन्हीं की छटा थी निशा ने सम्हाली।
विभा ने नयी मोहिनी मौन डाली॥

(२४)

किसे है नहीं चन्द्र ज्योत्स्ना सुहाती !
भला वल्लभा भी किसी को न भाती !
कहाँ शारदीया छटा जा समाती !
उसे पूर्णिमा क्यों भला भूल जाती !

(२५)

उगा चन्द्र का बिम्ब सम्पूर्ण देखो।
हुआ गर्व सौन्दर्य का चूर्ण देखो॥
बिखेरा उसे मञ्जुला यामिनी ने।
धरा धामिनी काम की कामिनी ने॥

(२६)

उगे चन्द्र से दिव्य सौन्दर्य फूटा !
सुधा में सधा सार था आज छूटा !
उमा शम्भु का स्नेह उल्लास फूटा !
जिसे लालची लोक ने दौड़ लूटा !

(२७)

धसी चन्द्रिका विश्व में चारुकाया।
बसी लोचनों में महामान्य माया॥
लताओं द्रुमों में फँसी कामजाया।
सुधा सार संसार ने था लुटाया॥

(२८)

खड़ी स्वर्ग में पुण्य पीयूष स्नाता।
उमा दिव्य दुग्धाम्बरा लोकमाता॥
धरा में भरा दिव्य उल्लास जाता।
सुखी विश्व था स्नेह के गीत गाता॥

(२६)

दिखी चन्द्र की चन्द्रिका यों पुनीता ।
हँसी हो यथा शारदा लोक गीता ॥
यथा राम के नाम से हो विनीता ।
खड़ी ढालती लोक लावण्य सीता ॥

(३०)

सधी स्नेह संवर्द्धना की समस्या ।
हुयी पुण्य की सिद्ध सारी तपस्या ॥
महाकाव्य ने हो सुखी आज देखा ।
खड़ी चारु चन्द्रानना चन्द्रलेखा ॥

(३१)

उसे कोश कौमार्य का छोड़ भागा ।
महाभाग सौभाग्य शृङ्गार जागा ॥
दिखी सुन्दरी दिव्य सौन्दर्यधामा ।
यथा लोकलक्ष्मी खड़ी हो ललामा ॥

(३२)

कलाकार की भाग्यमाना कला सी ।
महा पद्मजा की प्रभा निर्मला सी ॥
भली भामिनी रूप लावण्य लीला ।
सती सुन्दरी चन्द्रलेखा सुशीला ॥

(३३)

बड़ी सन्मना स्नेह की व्यञ्जना सी ।
धरा धाम की मोहिनी रञ्जना सी ॥
सजी स्वर्ग की दिव्य देवाङ्गना सी ।
खड़ी चन्द्रलेखा शुभा कल्पना सी ॥

(३४)

इसीकी प्रभा से निशा दीप्यमाना ।
इसीसे बनी थीं दिशायें महाना ॥
इसीसे बनी पूर्णिमा भाग्यमाना ।
उसे पा बनी कल्पना भी निधाना ॥

(३५)

उसे सृष्टि की दिव्यता ने सजाया ।
उसे काव्य की कल्पना ने बनाया ॥
उसे पुण्य लावण्य ने था रिझाया ।
खड़ी चन्द्रलेखा यथा लोकमाया ॥

(३६)

सती सुन्दरी रूप शृङ्गार शोभा ।
जिसे देख सौन्दर्य का चित्त लोभा ॥
चलो चन्द्रलेखा यथा मूर्तमाया ।
तपोराशि रवा जहाँ क्षीण काया ॥

(३७)

उसे देख भाभी हुयी यों प्रसन्ना ।
सुखी हो यथा लोकमाता विपन्ना ॥
बिठाया उसे प्यार से और बोली ।
सखी आज तो चित्त की वृत्ति डोली ॥

(३८)

मुझे याद आता सखी लाल मेरा ।
दुलारा बड़ा बालगोपल मेरा ॥
सुधा माधुरी की सिता की लुनाई ।
सखी थी सुखी हो उसी में समाई ॥

(३९)

झुकाता बली भाग्य का भोग माथा।
सखी मैं सनाथा, बनी हूँ अनाथा॥
उन्हें मैं नहीं सोचती हूँ मलीना।
बनी हूँ सदा मैं उन्हीं की अधीना॥

(४०)

सदा चित्त मेरा यही है मनाता।
सदा भाग्य रोता यही और गाता॥
जहाँ वे रहें लोक सन्तोष पावे।
सखी री! न मेरी उन्हें याद आवे॥

(४१)

नहीं किन्तु मैं पुत्र को भूल पाती।
मुझे सर्वदा मातृसत्ता सताती॥
सलोना बड़ा लाड़ला प्राणप्यारा।
कहाँ लोक में आज मेरा दुलारा॥

(४२)

सखी क्रूर कैसे हुआ यों विधाता?
मुझे व्यर्थ को क्यों भला है रुलाता?
नहीं मर्म क्या जानता लोक त्राता?
बिना पुत्र के विश्व में व्यर्थ माता?

(४३)

सखी प्राण मेरे कभी छूट जाते।
न तेरा भरा भाग्य ये देख पाते॥
बनें हों न जो देवराराध्य मेरे।
महाभाग हों जीवनाराध्य तेरे॥

(४४)

नयी दृष्टि दे दे मुझे ज्योतियुक्ता।
उन्हीं की कृपा यों हुयी है प्रयुक्ता॥
उन्हीं से निरी पापिनी मैं अयुक्ता।
बनी जा रही हूँ सखी लोकमुक्ता॥

(४५)

सखा शील सौजन्य के वे सदा ही।
उन्होंने बड़ी बात मेरी निबाही॥
महापुण्य संयुक्त सौभाग्य तेरा।
सखी देखता आज मातृत्व मेरा॥

(४६)

दुखी लोचनों से बही वारिधारा।
सिता ने जिसे दुःखिता हो पसारा॥
सदा दुःख की बाढ़ से विश्व हारा।
उसे सृष्टि ने क्या कभी है बिसारा ?

(४७)

कथा आँसुओं की व्यथा ढालती जो।
महा वेदना सर्वथा पालती जो॥
उसे आज का काव्य कैसे सुनावे !
कहाँ से महा अर्थ सामर्थ्य पावे !

(४८)

बनी कष्ट कारुण्य से धैर्यरिक्ता।
शुभा चन्द्रलेखा महा स्नेहसिक्ता॥
निराधार हो शोक से हार बोली।
रसा ने व्यथा सर्वथा आज खोली॥

(४९)

हमें किन्तु भाभी सदा भार ढोना।
बना भार संसार का सार रोना॥
हमें दुःख ही काटना और बोना।
हमें है सदा शोक सन्तप्त होना॥

(५०)

कहाँ नारियाँ लोक में ठौर पावें।
सदा प्राण रोवें यहाँ और गावें॥
बने चिन्तना चारु प्राणोपकारी।
जियें ! और जागें ! व्यथायें हमारी॥

(५१)

भली चिन्तना है हमें जो जलावे !
हमें दुःख दे दे हिलावे डुलावे !
हमारी व्यथा सर्वथा यों मनावे !
भला हो उसीका हमें जो सतावे !

(५२)

इसी वेदना में भरा स्नेह सारा।
इसीका हमें लोक में है सहारा॥
यही है हमारी नयी प्राणधारा।
जिसे विश्व में आँसुओं ने पसारा॥

(५३)

मुझे भोग के योग में है न जीना।
न मैं लोक की लालसा से मलीना॥
तुम्हारी बनी मैं सदा से अधीना।
तुम्हारे लिए मैं सदा बीच हीना॥

(५४)

जलाती मुझे वेदना है तुम्हारी।
सताती मुझे चिन्तना है तुम्हारी॥
हिलाती व्यथा व्यञ्जना है तुम्हारी।
रुलाती मुझे रञ्जना है तुम्हारी॥

(५५)

हुयी जर्जरा देख लो देह सारी।
दशा चिन्तनीया हुयी है तुम्हारी॥
तुम्हें दुःख की घोर ज्वाला जलाती।
नहीं किन्तु मेरे लिए मौत आती॥

(५६)

सदा मैं तुम्हारे लिए बैठ रोती।
तुम्हें है नयी वेदना नित्य होती॥
बना विश्व में व्यर्थ उल्लास सारा।
नहीं पीड़ितों का कहीं है सहारा॥

(५७)

भले नष्ट हो आज तारुण्य मेरा।
जले देह का दिव्य आरुण्य मेरा॥
न भाभी मिटे किन्तु कारुण्य मेरा।
तुम्हारे लिये ही खपे पुण्य मेरा॥

(५८)

दबा शोक संवेदना प्राप्ति द्वारा।
घटी वेदना स्नेह की व्याप्ति द्वारा॥
नया दिव्य सा स्नेह सन्देश लाये।
अकस्मात ही प्राप्त श्रीहर्ष आये॥

(५९)

सयत्ना शुकों की सखी सारिका भी।
उन्हीं के लगी बोलने बोल 'भाभी' !
उठी रुग्ण रत्ना निरी क्षीण काया।
जिसे दैव ने विश्व में था सताया॥

(६०)

व्यथा ने यहाँ आप ही आप देखा।
तटस्था हुयी लाज से चन्द्रलेखा॥
रुकी आँसुओं की बड़ी तीव्र धारा।
रुका वेदना जन्य संवाद सारा॥

(६१)

उन्हें स्नेह से मान सम्मान देती
बनी क्षीण कारुण्य का दान देती॥
व्यथा दाब भाभी व्यथा मूर्ति बोली।
गयी याद में स्निग्धता आज घोली॥

(६२)

बड़े स्नेह के साथ श्रीहर्ष बोले।
व्यथा से भरे वेदना से न डोले॥
भला याद की बात ही क्यों चलाती ?
मुझे क्या तुम्हारी नहीं याद आती ?

(६३)

तुम्हें विश्व की वञ्चना ने सताया !
तुम्हें पुत्र की चिन्तना ने रुलाया !
तुम्हें दुःख की यंत्रणा ने जलाया !
कहीं किन्तु भाभी न मैं काम आया !

(६४)

मुझे प्राप्त है जो नयी ज्ञानकारी।
उसीने दशा आज मेरी सुधारी॥
जगी स्नेह की साधना है हमरी।
हमारी व्यथा दिव्य लोकोपकारी॥

(६५)

बने तात मेरे सही लोकत्राता।
जगा लोक के लाभ का सत्य नाता॥
उन्हींसे यहाँ राम का नाम जागा।
धरा में भरा दुःख दारिद्रय भागा॥

(६६)

नये लोक साहित्य की सृष्टि द्वारा।
उन्होंने घरों को करों से सवाँरा॥
बसी लोक में राम की प्राणधारा।
नया जन्म संसार में है हमारा॥

(६७)

उन्हें राम के नाम के हेतु छोड़ो!
उन्हें धर्म के सेतु के हेतु छोड़ो!
उन्हें कर्म के केतु के हेतु छोड़ो!
उन्हें देश आसेतु के हेतु छोड़ो!

(६८)

वहाँ देश सारा उन्हें है बुलाता।
जहाँ है घरों में घुसा भी न जाता॥
जहाँ दैव भी वेदनायें बसाता।
जहाँ विश्व है कष्ट ही कष्ट पाता॥

(६९)

जहाँ विज्ञता का नहीं मान होता।
जहाँ शौर्य का है न सम्मान होता॥
जहाँ स्नेह का है नहीं दान होता।
जहाँ है नहीं लोक सम्मान होता॥

(७०)

जहाँ एक व्यापार है लोक सेवा।
जहाँ हो रहा प्राणियों का कलेवा॥
जहाँ जर्जरा देश की है किसानी।
घरों में नहीं है जहाँ अन्न पानी॥

(७१)

प्रजा को जहाँ राजसत्ता सताती।
जहाँ निर्बलों को महत्ता रुलाती॥
जहाँ भीख हैं माँगते लोग भूखे।
जहाँ दुष्ट हैं साधु श्रीमन्त रूखे॥

(७२)

जहाँ है सदा शत्रुता से सगाई।
जहाँ दीनता हीनता है समाई॥
जहाँ लोभ की लालसा घोर छाई।
जहाँ है सगे भाइयों में लड़ाई॥

(७३)

जहाँ पुण्य पाखण्ड से हार जाता।
जहाँ पाप संसार को है सताता॥
जहाँ पुत्र का स्वार्थ सम्पन्न नाता।
जहाँ दुःख पाते पिता और माता॥

(७४)

जहाँ सम्पदा स्नेह को तौलती है।
व्यथा वेदना की नदी खौलती है॥
जहाँ व्यर्थ ही घोर संग्राम होते।
जहाँ शान्ति से हैं नहीं लोग सोते॥

(७५)

जहाँ भावजें काटने दौड़ती हैं।
बनी कालिका डाटने दौड़ती हैं॥
भरे स्नेह को पाटने दौड़ती हैं।
सदा सम्पदा बाँटने दौड़ती हैं॥

(७६)

गृहस्थी जहाँ सर्वथा है अ[illegible]त्या।
बहू सास में भी मची हा[illegible]ा॥
हिलातीं घरों को घरों की [illegible]वानी।
जहाँ कर्कशा देवरानी जिठानी॥

(७७)

उसी देश को आज जो हैं जगाते।
उसे जो दया से—मया से उठाते॥
उसे सत्य सन्मार्ग जो हैं दिखाते।
हमारे सगे विश्व में वे कहाते॥

(७८)

उन्हें आज भाभी यही क्षेत्र भाया।
उन्होंने इसी में महातत्व पाया॥
भले वे जगायें निराली तपस्या।
भले भूल जायें हमारी समस्या॥

(७९)

तुम्हीं आज भाभी महा भाग्यमाना।
सती सुन्दरी इन्दिरा सी महाना॥
तुम्हारी बनी है नयी पुण्यगीता।
तुम्हीं से सुखी लोक में राम सीता॥

(८०)

नये प्राण पा दिव्य विज्ञप्ति द्वारा।
सतायी हुयी लोक सन्तप्ति द्वारा॥
महाभाग रत्ना महा क्षीण-काया।
व्यथा दाब बोली यथा लोक माया॥

(८१)

उन्हें मैं कभी भी नहीं बैठ रोती।
सदा चिन्तिता पुत्र के हेतु होती॥
उन्हें लोक में राम की प्राप्ति होवे।
भले विश्व में शान्ति की व्यप्ति होवे॥

(८२)

जियें और जागें सदा नाथ मेरे।
तपस्या उन्हीं की जगे तात मेरे॥
उन्हीं की रहे प्रेरणा साथ मेरे।
लगे लोक का लाभ ही हाथ मेरे॥

(८३)

उन्हें था सदा लोक का लाभ प्यारा।
वही आज आदर्श होवे हमारा॥
मिले लोक को राम का जो सहारा।
मुझे शोक सन्ताप स्वीकार सारा॥

(८४)

कहाँ से यहाँ है समाचार आया ?
किसी ने उन्हें क्या हीं क देख पाया ?
कहो कौन है बात सन्देश लाया ?
कहाँ राम ने है उन्हें जा छिपाया ?

(८५)

बड़े स्नेह के साथ श्रीहर्ष बोले।
महा हर्ष का पूर्ण उत्कर्ष खोले।
कलाध्यक्ष साम्राज्य के थे सिधारे।
उन्हें हैं बड़े बात प्यारे हमारे॥

(८६)

उन्होंने हमारा छिपा मर्म जाना।
यशस्वी कलाकार वे खानखाना॥
सदा काव्य के मर्म के पूर्ण ज्ञाता।
महा लोक साहित्य के वे विधाता॥

(८७)

उन्होंने मुझे आज है पत्र भेजा।
जिसे बाँच है तृप्त होता कलेजा॥
उन्हीं के यहाँ से समाचार आया।
उन्होंने व्रती बात को देख पाया॥

(८८)

जहाँ चारु वाराणसी पुण्यधामा।
जहाँ दिव्य देवापगा है ललामा॥
उसीके समीपस्थ हो ग्रामवासी।
बसे बात मेरे यथा हो उदासी॥

(८६)

दिया पत्र श्रीहर्ष ने भामिनी को।
महामङ्गला काव्य की स्वामिनी को॥
सबी था उसे होगयी मोहमग्ना।
यथा जीवनाधार से हो सलग्ना॥

(६०)

शुभा अल्प सी देर के बाद बोली।
व्यथा ने कथा की नयी दृष्टि खोली॥
यहाँ मैं पुरानी प्रथा से अड़ूँगी।
नहीं मैं लिखा दूसरे का पढ़ूँगी॥

(६१)

कही बात श्रीहर्ष ने ज्ञान सारा।
यथा काव्य साहित्य विज्ञान सारा॥
सभी के न क्या दूसरे हैं प्रणेता?
उन्हीं से सदा ज्ञान संसार लेता॥

(६२)

तुम्हें भी सदा सर्वदा वे सुहाते।
बताओ कहाँ मूढ़ता वे सिखाते!
भला बाँचना कौन सा दोष भारी!
मिला पत्र तो आज प्राणोपकारी॥

(६३)

सती ने कहा मैं अड़ी हूँ, अड़ूँगी!
नहीं दूसरे का लिखा मैं पढ़ूँगी॥
बताना वृथा पुस्तकों का बहाना।
लिखा पत्र है तात आया बिराना॥

(६४)

हुयी जानकारी मुझे प्राप्त सारी।
जहाँ भी रहें वे सदा हों सुखारी॥
सदा देश के जाति के काम आवें।
जहाँ भी बसें राम के गीत गावें॥

(६५)

न कोई मुझे दूसरी कामना है।
उन्हीं की भरी मङ्गला भावना है॥
यही प्रार्थना देव से आज मेरी।
बचे स्नेह की लोक में लाज मेरी॥

(६६)

सदा पाप का नष्ट साम्राज्य होवे!
सदा लोक में राम का राज्य होवे!
धरित्री बने सर्वदा पुण्यकामा!
बने सृष्टि सन्तुष्ट लोकाभिरामा!

(६७)

बनें लोक में वे बड़े कीर्तिशाली!
उन्हीं से नयी ज्योति ले अंशुमाली!
उन्हीं से नयी स्नेह सम्पत्ति पाती!
बहें भानुजा और गङ्गा सुहाती!

(६८)

भला तात मैं हूँ न क्या आर्य नारी!
सहें धर्म के हेतु जो कष्ट भारी!
करे किन्तु क्या हाय! माता बिचारी!
गयी जो सदा वञ्चना को सवाँरी!

(९९)

निरे निर्दयी दैव ने पुत्र छीना !
सदा सर्वदा को हुयी मैं मलीना !
कहाँ तात मैं आँसुओं को छिपाऊँ !
कहाँ जा छिपूँ मैं कहाँ जा समाऊँ !

(१००)

सभी पुत्र की याद में फूट रोये !
धरा व्योम थे आँसुओं से सँजोये !
धँसी चाँदनी रात में शोक ज्वाला !
हरे ! रो पड़ी चारु नक्षत्र माला !

(१०१)

छिपे शोक का तीव्र विस्तार फूटा !
बड़ी वेदना से बड़ा भार फूटा !
दुखी लोचनों से बही अश्रुधारा !
व्यथा कोश कारुण्य ने था पसारा !

(१०२)

इन्हीं आँसुओं से भरा काव्य सारा !
इन्हें सृष्टि की वेदना ने सवाँरा !
इन्हीं से मिला लोक को भी सहारा !
इन्ही में भरा स्नेह सारा हमारा !

(१०३)

सुखी कौन है लोक में जो न रोता !
किसे है नहीं दुःख में दुःख होता !
कहाँ हाय ! माँ की व्यथा जा समाती !
बड़ी पुत्र की चिन्तना मर्मघाती !

षोडश सर्ग

(१)

धन धरती माता क्षत्राणी ।
हिलमिल सुख पावें सब प्राणी ॥
बरसा दे रस भव की वाणी ।
गा उठकर कविता कल्याणी ॥

(२)

तेरे गाने के दिन आये ।
भव ने नव शृङ्गार सजाये ॥
क्यों न अरी तू खुल खुल गाये ।
जिससे रसधारा लहराये ॥

(३)

बन जा तू मानव की भाषा ।
पुण्यमयी तेरी परिभाषा ॥
सफल बने तेरी यह आशा ।
भय भागे मिट जाय निराशा ॥

(४)

जागा धरती का कवि जागा।
बीती रात सुखद रवि जागा॥
अन्धकार व्याकुल हो भागा।
जागा जीवन यौवन जागा॥

(५)

गाता है वह गानेवाला।
मधुरामृत बरसानेवाले॥
भव की भ्रान्ति भगानेवाला।
घर घर शान्ति जगानेवाला॥

(६)

उसके रस की पावन गङ्गा।
फैली भव में तरल तरङ्गा॥
मति गति रति का मिटा अड़ङ्गा।
तृप्त हुआ भव भूखा नङ्गा॥

(७)

इस कवि ने जो कुछ भी गाया।
उससे धरती ने रस पाया॥
हृदयों में उपकार समाया।
घर घर जीवन यौवन छाया॥

(८)

राम राज्य का यह अभिलाषी।
यह वह जो जन मन का भाषी॥
सुन्दर छन्द प्रबन्ध विलासी।
यह मङ्गल गायक सन्यासी॥

(९)

आज उसीके यश की धारा।
बहती है लेकर सुख सारा॥
पाकर जिसका स्नेह सहारा।
आज सुखी संसार हमारा॥

(१०)

यह मानवता का अनुगामी।
उसमें भव की मति गति जामी॥
पुरुष पुरातन सा नर नामी।
काव्य कला कविता का स्वामी॥

(११)

वह अपने युग का अवतारी।
भावों का स्वच्छन्द बिहारी॥
उसकी अनुपम गाथा सारी।
उस पर है प्रतिभा बलिहारी॥

(१२)

स्वीकृत कर घर का निर्वासन।
पा अपने गुरु का अनुशासन॥
धरती पर बैठा ले आसन।
इसका मङ्गलमूल प्रकाशन॥

(१३)

इसका है साहित्य निराला।
राम रँगीला यह मतवाला॥
इसने भव में जो रस ढाला।
उससे कविता आज विशाला॥

(१४)

इसने जीवन का रस पाया।
इसने धरती का यश गाया॥
पाकर इसकी मङ्गल माया।
नर भी नारायण कहलाया॥

(१५)

यह इस धरती का अधिवासी।
यह भारत का आदि निवासी॥
मेट रहा सब ओर उदासी।
यह इन कुटियों का सन्यासी॥

(१६)

यह हरदम उसका यश गाता।
जो सारा संसार बनाता॥
इसका केवल उससे नाता।
जिसको प्यारी धरती माता॥

(१७)

इसकी है मति गति अभिरामा।
इसकी रति है लोक ललामा॥
इसकी वर वाणी सुखधामा।
फैली भव में जन मन कामा॥

(१८)

यह अपनी धरती का नेता।
ममतामय संसार विजेता॥
बस सबको केवल सुख देता।

(१९)

जब इसकी कविता लहरायी।
भव में सुख सम्पत्ति समायी॥
इसने जो नव ज्योति जगायी।
वह जीवन यौवन बन छायी॥

(२०)

यह धरती पर चलने वाला।
प्रभु के पास मचलने वाला॥
व्रत पर जल जल गलने वाला।
राम कृपा पर पलने वाला॥

(२१)

इसने घर घर जाकर देखा।
जन जीवन की दुर्बल रेखा॥
इसने माँ बहिनों में देखा।
घर घर की रक्षा विधुलेखा।

(२२)

देखो यह है चलता जाता।
यौवन इसका ढलता जाता॥
होकर सजग सम्हलता जाता।
धर्म कर्म का गौरव गाता॥

(२३)

इसको प्यारी भारत माता।
यह है उसकी कीर्ति जगाता॥
हरदम हरि से इसका नाता।
यह धरती का भाग्य विधाता॥

(२४)

इसने धरती की रज छानी।
इसने सबकी कीर्ति बखानी॥
शङ्कर का सेवक विज्ञानी।
इस पर परम प्रसन्न भवानी॥

(२५)

काशी का वासी सन्यासी।
अवधपुरी का पुण्य विलासी॥
ब्रज कोशल का यह अधिवासी।
राम कृष्ण का यह विश्वासी॥

(२६)

दक्षिण में सागर की सीमा।
करती इसका ध्यान न धीमा॥
भक्ति भाव इसकी परिसीमा।
राम कृपा ही इसका खीमा॥

(२७)

इसने सारे तीर्थ मँझाये।
भारत माता के गुण गाये॥
जन जन के मानस में छाये।
इसने प्रभु के दर्शन पाये॥

(२८)

यह प्राची का पढ़ने वाला।
भव भर में सुख मढ़ने वाला॥
यह हिमगिरि पर चढ़ने वाला।
कर्मभूमि में बढ़ने वाला॥

(२९)

इसने खींची भव की रेखा ।
मानस सर आँखों से देखा ॥
भक्ति भाव का पाकर लेखा ।
छोड़ा इसने मान परेखा ॥

(३०)

मानसरोवर की पा छाया ।
गौरीशङ्कर की पा माया ॥
यह अपनी धरती पर आया ।
फिर इसने जो खुल खुल गाया ॥

(३१)

वह स्वर भारत का सुखदाता ।
वह मानव जीवन का त्राता ॥
जो धरती को स्वर्ग बनाता ।
रामचरितमानस कहलाता ॥

(३२)

इसके प्रभु बैकुण्ठ विलासी ।
बने अवध के मूल निवासी ॥
वे मर्य्यादा धाम उदासी ।
लोक वेद के वे विश्वासी ॥

(३३)

इसके राम जगत में आये ।
उनमें सारे स्नेह समाये ॥
लोक लाभ की वृत्ति जगाये ।
सदा उन्होंने कष्ट उठाये ॥

(३४)

युद्ध जहाँ जग में घहराता ।
विग्रह का झण्डा फहराता ॥
दुर्बल को बलवान सताता ।
मानव को दानव खा जाता ॥

(३५)

करते जिसमें भाई भाई ।
अधिकारों के हेतु लड़ाई ॥
जिसमें सारी स्नेह सगाई ।
स्वार्थ साधना बन कर छाई ॥

(३६)

भव ऐसे संयोग जगाता ।
धन धरती का लोभ समाता ॥
तृष्णा का सागर लहराता ।
मानव को मानव ठुकराता ॥

(३७)

यह निर्बल संसार हमारा ।
जिसमें धन ही सार हमारा ॥
धन आदर सत्कार हमारा ।
धन ही है आधार हमारा ॥

(३८)

इस धन की लीला मतवाली ।
मेट रही है प्रीति प्रणाली ॥
इससे सारी दुनियाँ काली ।
भरता यह भव में कङ्काली ॥

(३६)

इसके हरदम नयन उनींदे ।
इसने बस अधिकार खरीदे ॥
इसके परितापों ने सीधे ।
जन जन के अन्तस्तल बींधे ॥

(४०)

इसमें सब अपकार समाते ।
इससे केवल दुर्गुण आते ॥
इसकी महिमा गाते गाते ।
सीधे भी टेढ़े हो जाते ॥

(४१)

धन केवल अधिकार बढ़ाता ।
मानव के कर्तव्य मिटाता ॥
सबको स्वप्नों में भटकाता ।
बस केवल पीड़ा पहुँचाता ॥

(४२)

धन में सब दुर्भाव समाते ।
पाप पुण्य सब घुल मिल जाते ॥
बिपदा के बादल मड़राते ।
रक्षक भी भक्षक बन जाते ॥

(४३)

धन केवल विग्रह करवाता ।
पिता पुत्र में बैर बढ़ाता ॥
जीवन से सद्भाव मिटाता ।
सारे भव को शत्रु बनाता ॥

(४४)

धन की लिप्सा पाप कमाती।
भौतिकता इसमें हहराती॥
अत्याचारों से इठलाती।
प्रलयङ्कर साम्राज्य बढ़ाती॥

(४५)

जब धन लिप्सा से मतवाला।
विश्व बना विष पीने वाला॥
बनकर प्रलयङ्कर विकराला।
नाच उठी धरती पर ज्वाला॥

(४६)

जीवन ने पुरुषार्थ बिसारा।
बस अधर्म ने राज्य पसारा।
भौतिकता से जब भव हारा।
उमड़ी जब पापों की धारा॥

(४७)

मानव में दानवता छायी।
देवों में दुर्बलता आयी॥
स्वार्थ सिद्धि की हुयी लड़ाई।
शत्रु बने जब भाई भाई॥

(४८)

भिक्षुक थी ब्राह्मण की काया।
क्षात्र-धर्म ने मुँह फैलाया॥
पोषक शोषक बनकर छाया।
सदा गया शूद्रत्व सताया॥

(४६)

परदेशी शासन की सत्ता।
पाती थी जब पूर्ण महत्ता॥
हिलता था न कहीं पर पत्ता।
जाहिर थी उसकी बलवत्ता॥

(५०)

सोमनाथ का मन्दिर टूटा।
गरज ग़ज़नवी ने चढ़ लूटा॥
ग़ोरी ने गाड़ा जब खूँटा।
धीरज धर्म सभी कुछ छूटा॥

(५१)

जब ग़ुलाम खिलजी बन बीते।
तुग़लक सैय्यद लोदी रीते॥
तिमिरलङ्ग बाबर चढ़ जीते।
रक्त सबल निर्बल का पीते॥

(५२)

बढ़ा हुमायूँ का बल भारी।
शेरशाह की बढ़ी सवारी॥
अकबर ने नव नीति पसारी।
बदली प्रीति प्रतीति हमारी॥

(५३)

तब जिसकी उद्बोधक वाणी।
बरस पड़ी बनकर कल्याणी॥
जिसने भर दी नयी जवानी।
उसकी हरदम अमर कहानी॥

(५४)

उसका ही गुरु गौरव सारा।
आज देश के हेतु सहारा॥
लेकर नव सन्यास पधारा।
यह वह तुलसीदास हमारा॥

(५५)

इसने वह नव रीति चलायी।
जिसने भव की भीति भगायी॥
सबमें पुण्य प्रतीति बसायी।
इस धरती पर प्रीति जगायी॥

(५६)

इसने जोड़े साधन सारे।
जिससे भव में राम पधारे॥
पुण्य प्रगति ने प्राण पसारे।
धरती ने सब कष्ट बिसारे॥

(५७)

इसके राम सदा सुखदायी।
उनमें जीवन-शक्ति समायी॥
भव ने उनके बल मन भायी।
सब सात्विक सम्पत्ति जगायी॥

(५८)

राज्य उन्होंने तृण सा छोड़ा।
तृष्णा से नाता सब तोड़ा॥
केवल दुनियाँ का हित जोड़ा।
नित्य सत्य पर सबको मोड़ा॥

(५९)

केवल धर्म उन्होंने साधा।
जीवन भर शिव को आराधा॥
मेटी सारी भव की बाधा।
उनकी रस सम्पत्ति अगाधा॥

(६०)

लोक लाभ पर कष्ट उठाया।
जीवन भर संसार जगाया॥
सदा परिग्रह को ठुकराया।
इस धरती को स्वर्ग बनाया॥

(६१)

ऐसे राम जगत हितकारी।
ऋषियों मुनियों के उपकारी॥
बनकर पुण्य पुरुष अवतारी।
उतरे भारत भूमि विहारी॥

(६२)

दीनों दुखियों के प्रतिपालक।
वे वैदिक युग के सञ्चालक॥
भव की मर्य्यादा के पालक।
सज्जन रञ्जन खल दल घालक॥

(६३)

राम सदा भक्तों के त्राता।
भव के अभिनव बुद्धि प्रदाता॥
भारत भर इनका यश गाता।
इनकी मति गति भव विख्याता॥

(६४)

गुरु जन इनको अतिशय प्यारे।
बालक इनके हृदय दुलारे॥
प्रेम इन्हीं के सदा सहारे।
जीवन में परितोष पसारे॥

(६५)

पूज्य पिता माता वरणीया।
इनकी ममता आदरणीया॥
ऋजुता भव बाधा हरणीया।
छवि इनकी मङ्गल करणीया॥

(६६)

इनकी पावन स्नेह सगाई।
भरत शत्रुसूदन से भाई॥
लक्ष्मण की इन पर ठकुराई।
स्वीकृत शवरी की पहुनाई॥

(६७)

इनका चारु चरित्र सुहाता।
राम चरित मानस छवि पाता॥
तुलसी सा कवि मङ्गल गाता।
पिता राम सीता सी माता॥

(६८)

तुझको जगत बुलाता आ जा!
आँखों में युग पुरुष समा जा!
एक बार फिर और दिखा जा!
सुख साम्राज्य राम सा राजा!

(६९)

पुण्यकाम वे राम हमारे।
जिनसे सफल मनोरथ सारे॥
जिनसे लड़ लड़ दानव हारे।
जो युग का बल सम्बल भारे॥

(७०)

उनका रस जीवन बरसाता।
यौवन उनकी विजय मनाता॥
उनके कारण सब सुखदाता।
भाई पर भाई बलि जाता॥

(७१)

वे दलितों पतितों के साथी।
उनको क्या चींटी क्या हाथी॥
उनके गुण गण दुनियाँ गाती।
ऊँचा सिर कर चौड़ी छाती॥

(७२)

सती शिरोमणि सीता माता।
जिसको सारा जगत मनाता॥
जिसका यश है पूजा पाता।
जो भूतल भर में विख्याता॥

(७३)

बन को उनके साथ सिधारी।
ऋद्धि सिद्धि जिस पर बलिहारी॥
लक्ष्मण से भ्राता सुखकारी।
करते भव का मङ्गल भारी॥

(७४)

हरदम निर्भय बाने वाले।
बिगड़ी बात बनाने वाले॥
सबकी शक्ति बढ़ाने वाले।
भव की भक्ति जगाने वाले॥

(७५)

महावीर से सेनानायक।
जिनके थे सुग्रीव सहायक॥
जांम्बवन्त से मन्त्र प्रदायक।
अङ्गद से योद्धा सब लायक॥

(७६)

जिनसे बने विभीषण राजा।
गुह निषाद भी साथ विराजा॥
कवि उनके यश में तू छा जा!
पावन रामचरित्र जगा जा!

(७७)

राम राज्य की मङ्गल गीता।
जागे घर घर परम पुनीता॥
भारत ने नव यौवन जीता।
इसमें राम इसी में सीता॥

(७८)

बस केवल मानस के नाते।
घर घर तुलसीदास समाते॥
वे मानवता का यश गाते।
वे सबका कल्याण मनाते॥

(७६)

मानस मञ्जुल चित्र हमारा।
मानस मङ्गल मित्र हमारा।
मानस चारु चरित्र हमारा॥
इससे विश्व पवित्र हमारा॥

(८०)

इसकी प्रीति प्रतीति बिराजे।
जनता घर घर मङ्गल साजे॥
भ्रातृभाव हृदयों में राजे।
धर्म कर्म धरती पर छाजे॥

(८१)

दशरथ पिता महा सुखदाता।
कौशल्या जैसी मृदु माता॥
गुरु वसिष्ठ से भव के त्राता।
उपजें भव में सदा त्रिधाता॥

(८२)

पुरुष राम जैसे व्रत धारी।
महा सती सीता सी नारी॥
लक्ष्मण जैसे प्रेम पुजारी।
अनुज शत्रुसूदन शुभकारी॥

(८३)

यह जन जीवन मङ्गलमय हो!
भव में भक्ति भरी अक्षय हो!
गाते तुलसीदास अभय हो!
भारत और भरत की जय हो!

सप्तदश सर्ग

(१)

गति है भव की रुकती न कभी।
रति है भव की झुकती न कभी।।
चलता जग है गतिमान सदा।
सुख सन्मुख हो अथवा विपदा।।

(२)

दिन जीवन के ढलते रहते।
अविराम सदा चलते रहते।।
मति भी बदली गति भी बदली।
गति से मति से रति भी बदली।।

(३)

मृदु शैशव भी जग में न रुका।
नव यौवन भी निरुपाय झुका।।
बस जीवन जर्जर जीर्ण हुआ।
परिवर्तन ही अवतीर्ण हुआ।।

(४)

जिसमें भव का अभिषेक बसा।
सुख स्नेह समेत विवेक बसा॥
जिसने पुरुषार्थ प्रदान किया।
जिसने बल का बलिदान किया॥

(५)

वह जो भव का वरदायक था।
गुरु गौरव धाम सहायक था॥
वह जो बस मङ्गल गायक था।
सबका सुख पुञ्ज विनायक था॥

(६)

जिसमें नवयौवन था मचला।
जिसके यश की सरिता सजला॥
वह जो जग का अभिमान बना।
मन मानस का मृदु गान बना॥

(७)

जिसमें विलसे वरदान सभी।
जिसमें हुलसे अरमान सभी॥
जिसके यह दिव्य विधान सभी।
जिसके गुण गान महान सभी॥

(८)

वह भी दिन देख समृद्ध हुआ।
वह भी अब वृद्ध प्रसिद्ध हुआ॥
कुछ खाल हिली कुछ बाल पके।
बन जर्जर अङ्ग विहाल थके।

(६)

वर जो परिपूर्ण यशोधन है।
जिसका बस प्रेम प्रयोजन है॥
जिसका न कहीं अपना धन है।
बन ही घर है घर ही बन है॥

(१०)

उसको इसकी परवाह कहाँ!
भरता भव में वह आह कहाँ
वह है युग की गति सा चलता!
वह किन्तु नहीं दिन सा ढलता!

(११)

जिसमें प्रभु का अनुराग भरा।
जिसमें परिपूर्ण विराग भरा॥
जिसमें कवि का रस राग भरा।
जिसमें बस पुण्य पराग भरा॥

(१२)

भव में वह क्यों भयभीत रहे!
उसकी सब में बस जीत रहे!
वह क्यों न सदैव पुनीत रहे!
जिसके अब भी बन गीत रहे!

(१३)

भव में उसकी ममता बरसी।
सब में उसकी समता बरसी॥
उसके यश से बसती धरती।
उसके रस से हँसती धरती॥

(१४)

अपना रस सिद्ध प्रयोग लिये।
जप का तप का विनियोग लिये॥
सुख शान्ति प्रदायक योग लिये।
वह जीवन का उपयोग लिये॥

(१५)

इस भारत में वह डोल रहा!
अपनी करुणा वह घोल रहा!
सबके वह लोचन खोल रहा!
सबके हित में वह बोल रहा!

(१६)

उसको यह आग जला न सकी!
उसको यह शीत गला न सकी!
उसकी सुखधाम कला न रुकी!
उसकी कविता विमला न रुकी!

(१७)

उसके मन में बस राम बसे।
वरदायक लोक ललाम बसे॥
बन भाव सभी अविराम बसे।
उसमें भव के गुण ग्राम बसे॥

(१८)

सुख सिञ्चित आज उषा अरुणा।
करुणा वरुणालय की करुणा॥
उसमें नव ज्योति पसार रही।
करती उसका अधिकार सही॥

(१६)

बस वर्ष पचीस व्यतीत हुये।
दिन वे सब बीत अतीत हुये॥
सुख दुःख अभिन्न प्रतीत हुये।
करुणामय ये रस गीत हुये॥

(२०)

लोक अब संयोग सारा साज!
मुक्त सन्यासी हमारा आज!
जा रहा है देख घर की ओर!
राम की पाकर कृपा की कोर!

(२१)

आज इसका वेष मङ्गलमूल!
देख ले हे देश मत कर भूल!
यह अलौकिक सम्पदा सम्पन्न!
लोक भर के लाभ से व्युत्पन्न!

(२२)

देह में है जगमगाती कान्ति!
मुख कमल में राजती है शान्ति!
तेज तप से दीप्त इसका भाल!
कण्ठ में सुन्दर तुलसिका माल!

(२३)

कुछ पलित से और लम्बे केश!
किन्तु चौड़े वक्ष में आवेश!
चारु लम्बे श्मश्रु से सम्पूर्ण!
दिव्यता इसमें भरी परिपूर्ण!

(२४)

उच्च कन्धों पर पड़ा उपवीत।
और कटि में वस्त्र शोभित पीत॥
चारु चरणों में प्रगति का साज।
मुक्त सन्यासी हमारा आज॥

(२५)

दण्ड भिक्षापात्र से संयुक्त।
गौर लम्बे गात्र में मन मुक्त॥
दिव्य भावों का भरा अवतार।
पुण्य पौरुष का प्रकट विस्तार॥

(२६)

विश्व की सुख शान्ति का आधार!
लोक का सौन्दर्य अपरम्पार!
विश्व की नव भावनायें साज!
मुक्त सन्यासी चला घर आज!

(२७)

बस शिक्षामय सूत्रमय विन्यास!
प्राप्त कर इसका सफल सन्यास!
लोक कहता हो भले कुछ और!
किन्तु सन्यासी यही सिरमौर!

(२८)

यह यती योगी यही सुखधाम।
ब्रह्मचारी भी यही निष्काम॥
आज इसका ही सफल सन्यास।
हो भले विपरीत कुछ विन्यास॥

(२९)

वेष की सब चिन्तनायें छोड़।
राम से सम्बन्ध अपना जोड़॥
विघ्न बाधायें भुवन की तोड़।
विश्व भर को पुण्य पथ में मोड़॥

(३०)

आज सन्यासी हमारा मुक्त।
जारहा है आत्मबल संयुक्त॥
आज बनते जारहे हैं गीत।
है खुला संसार का सङ्गीत॥

(३१)

कर रहा है यह यती विश्राम।
बाग के उस पार उसका ग्राम॥
व्यग्रता से दूर वह निष्काम।
बैठ कर है जप रहा हरि नाम॥

(३२)

चिन्तना से मुक्त हलचल हीन।
है हृदय उसका सुखी स्वाधीन॥
हर्ष शोकावेग का क्या काम!
जब कि अन्तर में रमे हैं राम!

(३३)

साधु उठकर अब चला चुपचाप!
पूर्ण वह सन्तुष्ट अपने आप!
राम की पाकर कृपा की कोर!
जा रहा यह साधु घर की ओर!

(३४)

सत्य का नर रूप यह आधार।
पुण्य का प्रतिरूप यह साकार॥
भव्यता का दिव्य सा आकार।
लोक का आलोक अपरम्पार॥

(३५)

जा रहा है; आ गया वह ग्राम।
जो कभी था पूर्ण मङ्गल धाम॥
किन्तु सारी सम्पदा से हीन।
आज है यह गाँव सारा दीन॥

(३६)

दिन ढलकता जा रहा यह व्यर्थ!
आज सन्ध्या में भरा कुछ अर्थ!
बौरते हैं आम; है मधुमास!
बोलती है कोकिला भी पास!

(३७)

सम्पदा फैली प्रकृति की आज!
जुड़ गये सम्पूर्ण मङ्गल साज!
राम की जिस पर कृपा की कोर!
जा रहा वह साधु घर की ओर!

(३८)

फूलते हैं उपवनों में फूल।
चित्त में सौन्दर्य उटता भूल॥
नाचते हैं शोर करके मोर।
गूँजते हैं भृङ्ग चारों ओर॥

(३९)

कोपलें निकलीं लिये ऋतुरङ्ग।
द्रुम लताओं के सुवासित अङ्ग॥
योजना ऋतुराज की निष्काम।
दे रही है लोक को आराम॥

(४०)

खेत सूने थे; भरे खलिहान।
भूमि भूषित अन्न का आदान॥
सम्पदा का स्नेह का गुणगान।
आज गाते थे कृषक मतिमान॥

(४१)

आगया वह साधु घर के पास!
रिक्त सन्ध्या शून्य सा मधुमास!
रिक्त सा था सामने आवास!
था नहीं रुकता जहाँ उल्लास!

(४२)

राम की पाकर कृपा की कोर!
दीप्त मुख कर शून्य घर की ओर!
बोल वह बस यों उठा सुख साज!
मुक्त सन्यासी हमारा आज!

नारायण!

नारायण!

नारायण!

(४३)

किन्तु घर में बोलना ही कौन ?
घर स्वतः ज्यों होरहा था मौन ॥
आज थे श्रीहर्ष घर से दूर।
और विधु ज्वर में पड़ी थी चूर ॥

(४४)

राम की पाकर कृपा की कोर !
कुछ तनिक बढ़ और घर की ओर !
दिव्य दैवी सम्पदा का सार !
कह उठा वह साधु फिर इस बार !

नारायण !
नारायण !
नारायण !

(४५)

साधु का होता सदा आतिथ्य।
साधु क्या आता कभी है नित्य ?
साधु का आतिथ्य मङ्गल मूल।
साधना की पूर्ति सा अनुकूल ॥

(४६)

चल पड़ी रत्ना व्यथा ले साथ !
साधु का भिक्षान्न लेकर हाथ !
लोक की माता वही यह धन्य !
धन्य ! इसकी सृष्टि का पर्जन्य !

(४७)

क्षीणता से जीर्ण माँ की देह।
जल गयी थी पूर्ण बन निस्नेह॥
दिव्य मुख दुर्बल तपस्या युक्त।
मानिनी माँ तेज से संयुक्त॥

(४८)

श्वेत सारी और रूखे केश।
भाल का सिन्दूर शोभित देश॥
आभरण हीना व्यथा की मूर्ति।
लोकमाता की अलौकिक पूर्ति॥

(४६)

निर्बला माँ जारही है आज।
है जहाँ आगे खड़ा यतिराज॥
देखकर उसको महा मति धाम।
साधु ने यों फिर लिया हरिनाम॥

नारायण !

नारायण !

नारायण !

(५०)

भीख कैसी ! साधु कैसा ! कौन !
भीख दे, ले, हाय ! ऐसा कौन !
गिर पड़ा भिक्षान्न पूरित पात्र !
काँप उठे सस्वेद जर्जर गात्र !

(५१)

सामने माँ बाप दोनों आज !
तेज तप उनमें रहा है राज !
क्या कहे कविता न हो क्यों मौन !
भाव खोले विश्व का कवि कौन !

(५२)

रो पड़ी माँ व्यग्र कह हा ! राम !
आगये तुम पूज्यपद निष्काम !
किन्तु मेरे आज दोनों हाथ !
रिक्त हैं तुम देख लो हे नाथ !

(५३)

तत्वदर्शी होगये तुम आज !
हाय ! मेरी अब बचालो लाज !
आज तारक ला मुझे दो देव !
पूर्ण माँ मैं बन सकूँ स्वयमेव !

(५४)

तुम गये यों दूर मुझको छोड़ !
लोक की संवेदनायें तोड़ !
राम से सम्बन्ध अपना जोड़ !
आ गये मुझसे लगाने होड़ !

(५६)

फूल से तुमको हुये हैं शूल !
विश्व के बन्धन हुये अनुकूल !
किन्तु मैं हूँ बोझ तुमको हाय !
बोल दो मैं क्या करूँ असहाय !

(५७)

आज हलका है तुम्हें संसार !
आज हलका मुक्ति का व्यापार !
वस्तुयें हलकी सभी लीं खोज !
एक दुखिया मैं तुम्हारा बोझ !

(५८)

खुल पड़ा निष्काम हो सन्यास !
साधु का आनन्दमय विन्यास !
वह उठा उद्वेग से यह बोल !
मुग्ध हो उन्मुक्त मानस खोल !
रघुपति राघव राजा राम !
पतित पावन सीताराम !

(५९)

चल पड़ा बस साधु फिर चुपचाप !
पूर्ण हो सन्तुष्ट अपने आप !
माँ रही निस्तब्ध होकर देख !
भाग्य का अपना अलौकिक लेख !

(६०)

इस अलौकिक लेख का विस्तार !
आज के इस काव्य का आधार !
आज इसके आँसुओं का सार !
भर रहा उद्वेग अपरम्पार !

(६१)

आज माँ के आँसुओं का मोल !
दे सकेगा कौन ! रे ! कवि बोल !
आज माँ का देखकर सन्ताप !
लेखनी रो सर्वदा चुपचाप !

卐 卐 卐